तंत्र की दृष्टि

(सरहा के पदों पर दिए गए ओशो के अंग्रेजी प्रवचनों Tantra Vision का दिनांक 21 अप्रैल, 1977 ओशो सभागार, पूना में दिये गए बीस अमृत प्रवचनों में से पहले दस प्रवचनों तथा शिष्यों द्वारा प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तरों का हिंदी अनुवाद)

अनुक्रम

1. जिसका एक तीर नीशाने पर....2
2. हंस बाहर है....21
3. मधु तुम्हारा है....39
4. प्रेम एक मृत्यु है....59
5. मनुष्य एक कल्पना है....76
6. मैं एक विध्वंसक हूं....97
7. सत्य न पवित्र है न अपवित्र....117
8. प्रेम के प्रति सच्चे रहो....137
9. अपने में थिर निष्कलंक मन....158
10. हिंगल डे जिबिटी डांगली जी....177

तंत्र की दृष्टि

पहला प्रवचन

जिसका एक तीर नीशाने पर

(दिनांक 21 अप्रैल 1977 ओशो आश्रम पूना।)

सूत्र:

महान मंजुश्री को मेरा प्रणाम,

प्रणाम हैं उन्हें

जिन्होंने किया सीमित को अधीन

जैसे पवन के आघात से

शांत जल में उभर आती है, उतंग तरंगें,

ऐसे ही देखते हो सरहा

अनेक रूपों में, हे राजन!

यद्यपि है वह एक ही व्यक्ति।

भेंगा है जो मूढ़

दिखते उसे एक नहीं, दो दीप,

जहां दृश्य और द्रष्टा नहीं दो,

अहा! मन करता संचालन

दोनों ही पदार्थगत सत्ता का।

गृहदीप यद्यपि प्रज्वलित, जीते अंधेरे में नेत्रहिन,

सहजता से परिव्याप्त सभी,

निकट वह सभी के,

पर रहती सब परे मोहग्रस्त के लिए।

सहजता से परिव्याप्त सभी, निकट वह सभी के,

पर रहती सदा परे मोहग्रस्त के लिए।

सरिताएं हो अनेक, यद्यपि,

सागर मे मिल होती है एक,

हों झूठ अनेक परंतु

होगा सत्य एक, विजयी सभी पर।

मिटेगा अंधकार, कितना ही हो गहन,

उदित होने पर एक ही सूर्य के।

इस प्रथ्वी पर जितने भी सदगुरु हुए हैं उनमें गौतम बुद्ध सर्वश्रेष्ठ हैं। ईसा क्राइस्ट, महावीर, मोहम्मद और अन्य कई महान सदगुरु हुए परंतु बुद्ध फिर भी इन सबमें श्रेष्ठ हैं। ऐसा नहीं है कि बुद्ध की ज्ञानोपलब्धि किसी अन्य की ज्ञानोपलब्धि से अधिक है–ज्ञान की उपलब्धि न कम होती है न ज्यादा। वस्तुतः गुणात्मक दृष्टि से तो बुद्ध भी उसी चेतना को प्राप्त हुए जिस चेतना को महावीर, क्राइस्ट, जरथुस्त्रा तथा लाओत्सु प्राप्त हुए। अतः यह सवाल ही नहीं है कि कौन किससे अधिक ज्ञानोपलब्धि को प्राप्त हुआ। परंतु जहां तक सदगुरु होने का प्रश्न

है, बुद्ध अतुलनीय हैं, क्योंकि उनके द्वारा हजारों व्यक्तियों को ज्ञान उपलब्ध हुआ। परंतु जहां तक सदगुरु होने का प्रश्न है, बुद्ध अतुलनीय हैं क्योंकि उनके द्वारा हजारों व्यक्तियों को ज्ञान उपलब्ध हुआ। यह घटना किसी अन्य गुरु के साथ कभी नहीं हुई। बुद्ध की परंपरा सबसे अधिक फलदायी रही है। आज तक बुद्ध का परिवार सर्वाधिक सृजनात्मक परिवार रहा है। बुद्ध एक विशाल वृक्ष की तरह हैं जिसकी अनेक शाखाएं हैं, और प्रत्येक शाखा फलवती रही है, फूलों से लदी हुई है।

महावीर एक तरह से अधिक आंचलिक या स्थानीय घटना के रूप में रहे। कृष्ण की दुर्गति पंडितों और शास्त्रज्ञों के हाथों हुई। क्राइस्ट को पुरोहितों ने पूरी तरह नष्ट कर दिया। बहुत कुछ संभव था परंतु न हो पाया। बुद्ध इस दृष्टि से अत्यंत भाग्यशाली सिद्ध हुए। ऐसा नहीं कि पुरोहितों और पंडितों ने बुद्ध पर भा अपने हथकंडे नहीं आजमाए, उन्होंने जो कुछ किया जा सकता था किया। परंतु बुद्ध ने अपनी शिक्षा कुछ इस ढंग निर्मित की थी कि उसका नष्ट होना असंभव था। इसलिए वह अभी तक जीवत है। पच्चीस सौ वर्ष बीत जाने पर भा कुछ फूल इस वृक्ष पर अभी भी खिल उठते है। बुद्ध का वृक्ष अभी भी हरा-भरा है। अभी भी जब बसंत आता है तो यह वृक्ष अपनी सुगंध फैला देता है, अभी भी उसमें फूल खिलते है।

सरहा इसी वृक्ष का एक फूल है। सरहा का जन्म बुद्ध के कोई दो सौ वर्ष बाद हुआ था। वे एक दूसरी ही शाखा से उदभूत परंपरा के अंग थे। एक शाखा चलती है महाकश्यप से बोधिधर्म तक, जिसमें से झेन का जन्म हुआ और जो अभी तक फूलों से भरी है। दूसरी शाखा निकलती है बुद्ध से उनके पुत्र राहुलभद्र, राहुलभद्र से श्री कीर्ति, श्री कीर्ति से सरहा, और सरहा से नागार्जुन तक यह तंत्र की शाखा तिब्बत में आज भी फूल दे रही है।

तंत्र ने तिब्बत को बदल दिया, और जिस प्रकार बोधिधर्म झेन के जनक हैं उसी प्रकार सरहा तंत्र के जनक हैं। उसी प्रकार सरहा तंत्र के जनक हैं। बोधिधर्मा ने चीन, कोरिया तथा जापान पर विजय पायी, सरहा ने तिब्बत को विजय किया।

सरहा के ये पद अति सूंदर हैं। वे तंत्र का मूल आधार हैं। लेकिन पहले तुम्हें यह समझना होगा कि तंत्र का जीवन के प्रति दृष्टिकोण क्या हैं, जीवन दर्शन क्या हैं।

तंत्र का बिलकुल आधारभूत–परंतु अत्यंत विद्रोहात्मक, अत्यंत क्रांतिकारी दर्शन यह है कि संसार ऊंच और नीच में बंटा हुआ नहीं है, वह एक है, संयुक्त है। इस संसार में उत्कृष्ट और निकृष्ट दोनों हाथ में हाथ डाले हुए हैं। अच्छे में बुरा समाहित है और बुरे में अच्छा मिला हुआ है। चूंकि क्षण में भी निकृष्ट छिपा हुआ है, इसलिए जो निकृष्ट है उसका इंकार नहीं किया जाना चाहिए। उसकी निंदा नहीं करनी चाहिए, उसे मार डालना चाहिए। जो निकृष्ट है उसका रूपांतरण होना चाहिए। जो निकृष्ट है उसे यदि ऊपर उठने का मौका दिया जाए तो वह भी श्रेष्ठ बन सकता है। भगवान और शैतान के बीच ऐसी कोई खाई नहीं है जिस पर सेतु न बनाया जा सके। शैतान के हृदय की गहराई में भी परमात्मा छिपा हुआ है। एक बार हृदय धड़कना शुरू हो जाए तो शैतान परमात्मा बन जाता है।

यही कारण है कि शैतान के लिए अंग्रेजी में दिया गया शब्द 'डेविल' जिस धातु से बना है उसका भी वही अर्थ होता है जो भगवान के लिए दिए गए शब्द 'डिवाइन' से होता है। 'डेविल' शब्द ही 'डिवाइन' से बना है। शैतान का मतलब तो इतना है कि जो अभी परमात्मा नहीं हुआ। शैतान न तो परमात्मा के विरोध में है, न वह परमात्मा को नष्ट करने के प्रयास में है, वस्तुतः शैतान तो परमात्मा की खोज में है। शैतान तो परमात्मा बनने के मार्ग पर है, शत्रु कहां, वह तो बीज है। परमात्मा अपने पुरजोश में खिला हुआ वृक्ष है, जब कि शैतान अभी बीज है। परंतु बीज में ही वृक्ष छिपा है, और बीज वृक्ष का दुश्मन नहीं है। असलियत तो यह है कि बिना बीज के वृक्ष हो ही नहीं सकता। बीज वृक्ष विरोधी नहीं है, बड़ी घनी मित्रता है दोनों में, दोनों एक साथ जुड़े हैं।

जहर और अमृत दोनों एक ही शक्ति के दो रूप हैं, वैसे ही जैसे जीवन और मृत्यु, दिन और रात, प्रेम और घृणा, संभोग और समाधि।

तंत्र कहता है: किसी चीज की निंदा न करो, निंदा करने की वृत्ति ही मूढ़तापूर्ण है। निंदा करने से तुम अपने विकास की पूरी संभावना रोक देते हो। कीचड़ की निंदा न करो, क्योंकि उसी में कमल छिपा है। कमल पैदा करने के लिए कीचड़ का उपयोग करो। माना कि कीचड़ अभी तक कीचड़ है कमल नहीं बना है, लेकिन वह बन सकता है। जो भी व्यक्ति सृजनात्मक है, धार्मिक है, वह कमल को जन्म देने में कीचड़ की सहायता करेगा, जिससे कि कमल की कीचड़ से मुक्ति हो सके।

सरहा तंत्र-दर्शन के प्रस्थापक हैं। मानव-जाति के इतिहास की इस वर्तमान घड़ी में जब कि एक नया मनुष्य जन्म लेने के लिए तत्पर है, जब कि एक नई चेतना द्वार पर दस्तक दे रही है, सरहा का तंत्र-दर्शन एक विशेष अर्थवत्ता रखता है। और यह निश्चित है कि भविष्य तंत्र का है, क्योंकि द्वंदात्मक वृत्तियां अब और अधिक मनुष्य के मन पर कब्जा नहीं रखा सकतीं। इन्हीं वृत्तियों ने सदियों से मनुष्य को अपंग और अपराध-भाव से पीड़ित बनाए रखा है। इनकी वजह से मनुष्य स्वतंत्र नहीं, कैदी बना हुआ है। सुख या आनंद तो दूर इन वृत्तियों के कारण मनुष्य सर्वाधिक दुखी है। इनके कारण भोजन से लेकर संभोग तक और आत्मीयता से लेकर मित्रता तक सभी कुछ निंदित हुआ है। प्रेम निंदित हुआ, शरीर निंदित हुआ, एक इंच जगह तुम्हारे खड़े रहने के लिए नहीं छोड़ी है। सब-कुछ छीन लिया है और मनुष्य को मात्र त्रिशंकु की तरह लटकता छोड़ दिया है ।

मनुष्य की यह स्थिति अब और नहीं सही जा सकती। तंत्र तुम्हें एक नई दृष्टि दे सकता है, इसीलिए मैंने सरहा को चुना है। मुझे जिससे बहुत प्रेम है सरहा उनमें से एक है, यह मेरा उनके साथ बड़ा पुराना प्रेम-संबंध है। तुमने शायद सरहा का नाम भी न सुना हो, परंतु वे उन व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने जगत का बड़ा कल्याण किया हो ऐसे अंगुलियों पर गिने जाने वाले दस व्यक्तियों में मैं सरहा का नाम लूंगा, यदि पांच भी ऐसे व्यक्ति गिनने हों तो भी मैं सरहा को नहीं छोड़ पाऊंगा।

सरहा के इन पदों में प्रवेश करने से पहले कुछ बातें सरहा के जीवन के विषय में जान लेनी आवश्यक हैं। सरहा का जन्म विदर्भ महाराष्ट्र...का ही अंग है, पूना के बहुत नजदीक। राजा महापाल के शासनकाल में सरहा का जन्म हुआ। उनके पिता बड़े विद्वान ब्राह्मण थे और राजा महापाल के दरबार में थे। पिता के साथ उनका जवान बेटा भी दरबार में था। सरहा के चार और भाई थे, वे सबसे छोटे परंतु सबसे अधिक तेजस्वी थे। उनकी ख्याति पूरे देश में फैलने लगी और राजा तो उनकी प्रखर बुद्धिमत्ता पर मोहित सा हो गया था।

चारों भाई भी बड़े पंड़ित थे परंतु सरहा के मुकाबले में कुछ भी नहीं। जब वे पांचों बड़े हुए तो चार भाइयों की तो शादी हो गई, सरहा के साथ राजा अपनी बेटी का विवाह रचाना चाहता था। परंतु सरहा सब छोड़-छाड़ कर संन्यास लेना चाहते थे। राजा को बड़ी चोट पहुंची, उसने बड़ी कोशिश की सरहा को समझाने की–वे थे ही इतने प्रतिभाशाली और इतने सुंदर युवक। जैसे-जैसे सरहा की ख्याति फैलने लगी वैसे राजा महापाल के दरबार की भी ख्याति सारे देश में फैलने लगी। राजा को बड़ी चिंता हुई, वह इस युवक को संन्यासी बनते नहीं देखना चाहता था। वह सरहा के लिए सब-कुछ करने को तैयार था। परंतु सरहा ने अपनी जिद न छोड़ी और उसे अनुमति देनी पड़ी। वह संन्यासी बन गया, श्री कीर्ति का शिष्य बन गया।

श्री कीर्ति बुद्ध की सीधी परंपरा में आते हैं, गौतम बुद्ध, फिर अनके पुत्र राहुल भद्र, और फिर आते हैं श्री कीर्ति। सरहा और बुद्ध के बीच सिर्फ दो ही गुरु हैं, बुद्ध से वे बहुत दूर नहीं हैं। वृक्ष अभी बहुत ही हरा-भरा रहा होगा; उसकी तरंगें अभी बहुत ताजी-ताजी रही होंगी। बुद्ध अभी-अभी जा चुके थे, वातावरण उनकी सुगंध से भरा रहा होगा।

राजा को और धक्का तब लगा जब उसे पता चला कि ब्राह्मण होते हुए भी सरहा ने हिंदू संन्यासी बनना छोड़ एक बौद्ध को अपना गुरु चुना। इस घटना से सरहा का परिवार भी बहुत चिंतित हुआ। वे सब सरहा के दुश्मन हो गए, क्योंकि यह तो ठीक नहीं हुआ था। और बाद में तो हालत और भी बिगड़ गई जिसको हम आगे चल कर देखेंगे।

सरहा का असली नाम था राहुल जो उनके पिता ने रखा था। वे राहुल से सरहा कैसे बने यह हम आगे देखेंगे, वह बड़ी प्रतिकर कथा है। तो जब सरहा श्री कीर्ति के पास पहुंचे, पहली बात जो श्री कीर्ति ने उनसे कही वह थी: 'भूल जाओ तुम्हारे वेदों को, और तुम्हारा सारा ज्ञान, और वह सारी बकवास' सरहा के लिए यह बड़ा कठिन था, परंतु वे सब-कुछ करने के लिए तैयार थे। श्री कीर्ति के व्यक्तित्व में बड़ा अनूठा आकर्षण था। सरहा ने अपना सारा ज्ञान छोड़ दिया, वे पुनः अज्ञानी हो गए।

यह त्याग बड़े से बड़े त्यागों में से एक था; धन छोड़ना आसान है, बड़ा राज्य छोड़ना आसान है, परंतु ज्ञान छोड़ना बड़ा कठिन है इस संसार में। पहली बात तो यह कि उसे कैसे छोड़ा जाए? वह तो भीतर है तुम्हारे। तुम अपना राज्य छोड़ सकते हो, तुम हिमालय जा सकते हो, तुम अपना पूरा धन बांट सकते हो, परंतु तुम अपना ज्ञान कैसे छोड़ोगे?

और फिर पुनः सीखे को अनसीखा करना, फिर बच्चे की तरह भोला बनना....परंतु सरहा इसके लिए तैयार थे।

साल पर साल बीतते गए और धीरे-धीरे सरहा ने अपना सारा ज्ञान पोंछ डाला, वे बड़े ध्यानी बन गए। जैसे पहले उनकी ख्याति महा पंड़ित के रूप में फैली थी वैसे अब उनकी ख्याति महान साधक के रूप में फैलने लगी। लोग दूर-दूर से इस नवयुवक की झलक पाने के लिए आने लगे जिससे एक नये पत्ते सा या घास पर पड़े ओस के बिंदुओं सा भोलापन आ गया था।

एक दिन अचानक सरहा को ध्यान में यह दिखाई दिया कि बाजार में एक स्त्री बैठी हुई है जो उनकी सच्ची गुरु बनने वाली है। श्री कीर्ति ने तो केवल उन्हें मार्ग पर लगा दिया है, असली शिक्षा तो उन्हें स्त्री से ही मिलने वाली है। अब यह जरा समझने जैसी बात है। एक तंत्र ही है जिसने कभी कट्टर पुरुषत्व नहीं दिखाया। सच तो यह है कि बिना किसी ज्ञानी स्त्री का सहयोग से तंत्र के अटपटे जगत में प्रवेश करना ही असंभव है।

सरहा को बाजार में बैठी हुई स्त्री दिखाई दी। पहली बात तो स्त्री और फिर बाजार में! तंत्र बाजार में ही फलता-फूलता है, बिलकुल जीवन की सघनता में। उसका दृष्टिकोण नितांत विधायक है, नकारात्मक है ही नहीं। तो सरहा खड़े हो गए, श्री कीर्ति ने पूछा: 'कहां जा रहे हो?' सरहा ने कहा: 'आपने मुझे मार्ग दिखाया। आपने मेरा ज्ञान छीना। आपने आधा काम पूरा किया, आपने मेरी स्लेट पोंछ डाली। अब मैं बचा हुआ पूरा करने को तैयार हूं। श्री कीर्ति हंसे, उन्होंने आशीर्वाद दिया और सरहा ने विदा ली।

सरहा बाजार पहुंचे। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, सचमुच वही स्त्री दिखाई दी जिसे उन्होंने ध्यान में देखा था। वह स्त्री तीर बना रही थी, तीर बनाने वाली थी।

तंत्र के बारे में जो तीसरी बात खयाल में रखनी चाहिए वह यह कि तंत्र के अनुसार कोई व्यक्ति जितना ही सुसंस्कृत, जितना सभ्य होगा उतनी ही उसके तांत्रिक रूपांतरण की संभावना कम होगी। जितना ही व्यक्ति कम सभ्य और अधिक आदिम होगा उतना ही अधिक जानदार होगा। जितने ही तुम सभ्य बनते हो उतने ही तुम प्लास्टिक के बन जाते हो, तुम कृत्रिम बन जाते हो, जरूरत से ज्यादा परिष्कृत बन जाते हो, तुम्हारी जड़ें धरती में ही खो जाती हैं। तुम्हें संसार की गंदगी से डर लगता है इसलिए तुम उससे हट कर जीने लगते हो, तुम ऐसा दिखावा करने लगते हो जैसे तुम इस संसार के ही नहीं हो। तंत्र कहता है: जो अभी भी असभ्य हैं, असंस्कृत

हैं, वे अधिक जानदार हैं, उनमें अधिक तेजस्वीता है। और यही आधुनिक मनस्विदों का भी कहना है। एक नीग्रो किसी अमरीकन की तुलना में अधिक जानदार है और इसी बात से अमरीकी डरता है। अमरीकन नीग्रो से बहुत डरता है। डर इस बात का है कि अमरीकन तो बन गया है बिलकुल प्लास्टिक, जब कि नीग्रो अभी भा जानदार है, अभी भा पार्थिव है।

अमरीका में काले और गोरों का संघर्ष सच में काले और गोरे का नहीं है, यह संघर्ष असली और नकली के बीच है। और गोरा अमरीकन मूलतः बड़ा घबड़ाया हुआ है, उसे यह डर है कि अगर नीग्रो को रोका न गया तो वह एक न एक दिन अमरीकन अपनी स्त्री खो बैठेगा। नीग्रो अधिक प्राणवान है, उसमें अधिक काम-शक्ति है, वह अधिक सजीव है, उसकी ऊर्जा में अभी भी उद्याम आवेग है। और सभ्य जातियों में एक डर यह समाया हुआ है कि कहीं वे अपनी स्त्रियां न खो बैठें। वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि अगर बहुत सारे ऐसे प्राणवान व्यक्ति उपलब्ध हो गए तो वे अपनी स्त्रियों को वश में न रखा पाएंगे।

तंत्र कहता है: अदिवासियों में तंत्र के विकास की पूरी संभावना है। तुम्हारा विकास गलत दिशा में हुआ है। उनका अभी विकास नहीं हुआ, वे अभी भी सही दिशा चुन सकते हैं, उनमें संभावनाएं अधिक हैं। और उनके पास अनकिया करने के लिए कुछ भी नहीं है, इसलिए वे सीधे बढ़ सकते हैं। एक तो तीर बनाने वाली स्त्री के पास जाना प्रतीकात्मक है। जो पंडित हैं उसे प्राणवान के पास जाना ही होगा, नकली को असली के पास जाना ही पड़ेगा।

सरहा ने उस स्त्री को देखा, जवान थी, उत्यंत तेजस्वी और प्राणवान। तीर का फल बना रही थी, न दाहिने देखा रही थी न बाएं, बस तीन बनाने में तल्लीन थी। सरहा को तत्काल उस स्त्री के सान्निध्य में एक असाधारण अनुभूति हुई, ऐसी अनुभूति उन्हें पहले कभी नहीं हुई थी। यहां तक कि उनके गुरु श्री कीर्ति भी उस स्त्री के आगे फीके पड़ गए। उसमें एक अदभुत ताजगी थी।

श्री कीर्ति बड़े दार्शनिक थे, और यद्यपि उन्होंने सरहा से अपना सारा ज्ञान छोड़ देने के लिए कहा था, फिर भी वे स्वयं अभी तक ज्ञानी थे। उन्होंने सरहा से सारे वेद और शास्त्र छोड़ देने के लिए कहा था, परंतु उनके अपने शास्त्र थे और अपने वेद थे। यद्यपि वे दर्शन विरोधी थे लेकिन उनका दर्शन-विरोध भी एक तरह का दर्शन ही था। अब यह स्त्री न तो दार्शनिक है और न ही दर्शन-विरोधी, जो यह तक नहीं जानती कि दर्शन क्या चीज है, जो अपनी आनंदमग्नता में दर्शन और विचार के जगत से बिलकुल बेखबर है। यह एक ऐसी स्त्री है जो कर्मनिष्ठ है और जो अपने काम में पूरी तरह डूबी हुई है।

सरहा ने बड़े गौर से देखा, तीर तैयार था, स्त्री ने एक आंख बंद कर एक अदृश्य लक्ष्य का भेद करने की मुद्रा बना ली थी। सरहा ने जरा और नजदीक से देखा। अब असल में वहां कोई लक्ष्य वगैरह कुछ नहीं था, उसने सिर्फ एक मुद्रा बना ली थी। उसकी एक आंख बंद और दूसरी आंख खुली हुई थी और वह किसी अदृश्य निशान को ताक रही थी जो वहां था ही नहीं। सरहा को इसमें कोई संकेत दिखाई देने लगा। मुद्रा प्रतिकात्मक थी, उन्हें धुंधली सी प्रतीति होने लगी थी परंतु स्पष्ट कुछ नहीं हो रहा था।

तो सरहा ने उस स्त्री से पूछा कि क्या तीर बनाना तेरा व्यवसाय है, यह सुन कर उस स्त्री को बड़े जोर की उद्याम हंसी आई और उसने कहा: 'अरे मूढ़ ब्राह्मण! तूने वेदों को तो छोड़ दिया परंतु अब बुद्ध के बचन धम्मपद को पूजना शुरू कर दिया है, तो फर्क क्या हुआ? तूने किताबें बदल ली हैं, दर्शन बदल लिया है, परंतु अरे मूढ़ तू तो यह सारा समय वैसा का वैसा ही रहा।'

सरहा को यह सुन कर बड़ा धक्का लगा, इस तरह से उनके साथ पहले किसी ने बात नहीं की थी। एक असंस्कृत स्त्री ही इस प्रकार बोल सकती थी। और जिस तरह वह हंसी थी वह इतना असभ्य था, इतना आदिम,

परंतु फिर भी उसमें ऐसा कुछ था जो बहुत ही प्राणवान था और सरहा उस स्त्री के प्रति ऐसे खिंचे जा रहे थे जैसे लोहा चुंबक के प्रति खिंचता है।

उस स्त्री ने फिर कहा, 'क्या तुम अपने आप को बौद्ध मानते हो?' सरहा ने बौद्ध साधुओं के पीले वस्त्र पहन रखे होंगे। वह स्त्री फिर हंसी, और कहने लगी, 'बुद्ध जो कहते हैं उसका अर्थ सिर्फ कर्म द्वारा जाना जा सकता है, न शब्दों द्वारा और न पुस्तकों द्वारा। क्या अभी तक तुम्हारा जी नहीं भरा? क्या अभी तक तुम्हें इनसे ऊब पैदा नहीं हुई? अब इस तरह की खोज में और ज्यादा समय बरबाद मत करो, चलो मेरे साथ।'

और एकाएक कुछ हुआ, एक भीतरी संवाद जैसा कुछ घट गया। सरहा को इस प्रकार की अनुभुति पहले कभी नहीं हुई थी। उस घड़ी में वह स्त्री जो कर रही थी उसका आध्यात्मिक अर्थ उन्हें एकाएक स्पष्ट हुआ। सरहा ने देखा कि न वह बाएं देख रही थी न दाएं; उसकी दृष्टि मध्य में ग़ढ़ी हुई थी।

पहली बार उनकी समझ में आया कि बुद्ध जिसे मध्य में होना कहते हैं उसका अर्थ हैं: अति से बचना। पहले वे दार्शनिक थे, अब वे दर्शन-विरोधी बन गए है–एक अति से दूसरी अति। पहल वे एक चीज की पूजा करते थे, अब वे उसके बिलकुल विरोधी वस्तु की पूजा कर रहे हैं–परंतु पूजा जारी है। तुम बाएं से दाएं जा सकते हो या दाएं से बाएं परंतु इससे तुम्हारा कोई फायदा नहीं होगा। तुम सिर्फ एक घड़ी के पेंडूलम कि तरह बाएं से दाएं और दाएं से बाएं घूमते रहोगे।

और क्या तुमने ध्यान से देखा है?–जब पेंडुलम दाहिने जाता है तब वह केवल बाएं जाने के लिए गति पैदा कर रहा होता है, और जब वह बाएं जाता हैं तब दाएं जाने के लिए गति पैदा कर रहा होता है। और इस तरह घड़ी चलती रहती है। और संसार चलता रहता है। मध्य में होने का अर्थ है कि पेंडुलम बस मध्य में लटका हुआ है, न दाएं जाता हैं न बाएं। तब घड़ी थम जाती हैं, तब संसार थम जाता है, तब कोई समय नहीं रहता–तब एक समयरहितता होती है।

यह सब सरहा ने श्री कीर्ति के मुंह से कई बार सुना था; उन्होंने इसके विषय में पढ़ा भी था, उस पर विचार किया था, मनन किया था; इस विषय में औरों से चर्चा भी की थी कि मध्य में होना ही सबसे अधिक उचित हैं। परंतु यहां पहली बार उन्होंने इस सत्य को घटते हुए देखा: वह स्त्री न बाएं देख रही थी न दाएं, वह सिर्फ मध्य में देख रही थी, उसका पूरा ध्यान मध्य में केंद्रित था।

मध्य ही वह बिंदु हैं जहां से अतिक्रम होता है। इस बात पर जरा विचार करो, जरा मनन करो, अपने जीवन में देखो। आदमी धन के पीछे भाग रहा हैं, पागल की तरह, धन ही उसका परमात्मा है.....

एक स्त्री ने दूसरी स्त्री से पूछा: 'तुमने अपने प्रेमी को क्यों छोड़ दिया क्या बात हुई? मुझे तो लगा था कि तुम्हारी सगाई हो चुकी है और अब तुम्हारा विवाह होने वाला है–हुआ क्या?'

दूसरी स्त्री ने जवाब दिया: 'हमारे संबंध टूटने का कारण यह है कि हमारे धर्म अलग-अलग हैं।'

पूछने वाली जरा हैरान हुई, क्योंकि वह जानती थी दोनों कैथोलिक हैं, तो उसने कहा, 'तुम्हारे धर्म अलग-अलग है इससे तुम्हारा क्या मतलब हैं?'

स्त्री ने कहा: 'मैं धन की पूजा करती हूं, और उसकी जेब खाली है।'

ऐसे लोग हैं जिनके लिए धन ही परमात्मा है। एक न एक दिन यह परमात्मा बेकार साबित हो जाता है–वह बेकार साबित होकर रहेगा। धन कभी परमात्मा बन नहीं सकता। वह मात्र तुम्हारा भ्रम था, तुम्हारा प्रक्षिप्तिकरण था। एक न एक दिन तुम ऐसी जगह पहुंच जाते हो जहा से तुम्हें दिखाई देने लगता है कि उसमें परमात्मा है ही नहीं, कि उसमें कुछ भी नहीं है, कि तुम सिर्फ अपना जीवन गंवा रहे थे। तब तुम उसके विरोध में हो जाते हो, तब तुम एक विरोधी रूप अपना लेते हो, तुम धन-विरोधी बन जाते हो। तब तुम धन छोड़ने

लगते हो, तुम उसे छूते भी नहीं। तुम निरंतर उसकी पकड़ में रहते हो, अब तुम धन के विरुद्ध हो जाते हो, परंतु उसकी पकड़ फिर भा बनी रहती है। तुम बाएं से दाएं हट गए, परंतु तुम्हारी चेतना का केंद्र अभी भी धन ही है।

तुम एक इच्छा छोड़ कर दूसरी पकड़ सकते हो। पहले तुम बहुत सांसारिक थे, किसी दिन तुम अध्यात्मवादी बन सकते हो–परंतु रहते तुम वही के वही हो, तुम्हारा रोग बना रहता है। बुद्ध कहते हैं: 'संसार में होना तो सांसारिक होना है ही, परंतु अध्यात्मवादी होना भी सांसारिक होना है। धन कमाने के लिए जीना तो धन के लिए पागल होना है ही, लेकिन धन के विरुद्ध होना भी धन के प्रति पागल होना है; सत्ता की खोज तो मूर्खता है ही, परंतु उससे भागना भी मूर्खता है। विवेक का मतलब ही है दो अतियों के मध्य होना।

पहली बार सरहा ने वह घटते हुए देखा जो उन्होंने श्री कीर्ति में भी नहीं देखा था। सच में वह घट रहा था, और उस स्त्री ने ठीक ही कहा था, 'तुम केवल कर्म द्वारा सीख सकते हो।' और वह इतनी तल्लीन थी कि उसने सरहा को देखा तक नहीं जो उसे वहां खड़े-खड़े देख रहे थे। वह इतनी तल्लीन थी, अपने काम में इतनी डूबी हुई थी–यही बुद्ध का संदेश है: कम में पूरे डूबो जिससे कर्म से ही मुक्ति मिल जाए।

कर्म बनता ही इसलिए है क्योंकि तुम उसमें उतरते नहीं हो। अगर तुम कर्म में पूरे उतर जाते तो उसका कोई निशान नहीं बचता। कोई भी काम अगर पूरा कर लो तो वह हमेशा के लिए खत्म हो जाता है, फिर उसकी कोई स्मृति नहीं बचती। अधूरा काम पीछा करता ही रहता है, और मन उसे पूरा किए बिना छोड़ना नहीं चाहता।

मन सदा चीजें पूरी करने के लिए तत्पर रहता है, कोई भी चीज पूरी कर लो और मन विसर्जित हो जाता है। अगर तुम अपने काम पूरे करते रहो तो एक दिन तुम पाओगे कि मन रहा ही नहीं। मन भूतकाल में घटे अधूरे कर्मो का संग्रह हैं।

तुम्हें किसी स्त्री को प्रेम करना था और तुमने नहीं किया; अब वह स्त्री मर चुकी है। तुम्हें अपनी गलतियों के लिये पिता से क्षमा मांगनी थी, अब वे जिंदा नहीं है।

अब उसकी पीड़ा बनी रहेगी, वह बात भूत की तरह पीछा करेगी। अब तुम असहाय–क्या करूं? अब किसके पास जाकर क्षमा मांगूं? तुम्हें किसी मित्र के साथ भलाई करनी थी परंतु फिर तुम उसके प्रति संकुचित हो गए। तुम्हारे मन में अपराध-भाव बन गया, तुम पश्चाताप करने लगे। और इस तरह चलता रहता है।

कोई भी काम पूरी तरह कर लो और तुम उससे मुक्त हो जाते हो, फिर तुम लौट कर नहीं देखते। असली आदमी पीछे लौट कर नहीं देखता, क्योंकि वहां देखाने के लिए कुछ है ही नहीं। उसके सर पर कुछ हावी नहीं रहता, वह केवल आगे बढ़ता चलता है। उसकी आंखों पर भूतकाल का पर्दा नहीं गिरा होता, उसकी दृष्टि में धुंधलापन नहीं होता। उस स्पष्टता में किसी को वास्तविकता को बोध होता है।

तुम अपने अधूरे किए हुए कर्मों से इतने चिंतित रहते हो, तुम जैसे एक कबाड़खाना हो। एक चीज अधूरी यहा, एक चीज अधूरी वहा–कोई चीज पूरी नहीं। क्या कभी तुमने इस बात पर ध्यान दिया है? क्या तुमने कभी कोई चीज पूरी की है? या सब अधूरा-अधूरा? अभी एक काम पूरा हुआ नहीं और दूसरा शुरू कर देते हो, और अभी वह पूरा हुआ नहीं कि तीसरा शुरू कर देते हो। इस तरह तुम अधूरे कर्मों के बोझ के नीचे दबते चलते हो। इसी को कर्म कहते हैं–कर्म का मतलब है अधूरा कृत्य।

पूर्ण बनते ही तुम मुक्त हो जाते हो।

वह स्त्री पूर्णतः डूबी हुई थी। इसीलिए वह इतनी तेजस्वी और सुदंर लग रही थी। वैसे तो वह एक साधारण स्त्री ही थी, परंतु उसका सौंदर्य अलौकिक था। उसका सौंदर्य इसीलिए खिला हुआ था क्योंकि वह अपने काम में पूरी तरह डूबी हुई थी, क्योंकि वह अतिवादी नहीं थी। उस

का सौंदर्य निखर रहा था इसीलिए क्योंकि वह मध्य में थी, संतुलित थी। सतुंलन से शोभा आती है।

पहली बार सरहा को एक ऐसी स्त्री मिली थी जिसने न केवल शारीरिक बल्कि आध्यात्मिक सौंदर्य था। स्वभावतः वे समर्पित हो गए। कहना चाहिए समर्पण हो गया। वह स्त्री जो भी कर रह थी उसमें सरहा पूरा डूब गए, और उसे देख कर वे पहली बार समझे कि इसे कहते हैं ध्यान। ध्यान का यह अर्थ नहीं है कि तुम किसी खास समय पर बैठ कर राम-राम जपो, या कि तुम चर्च जाओ, या मंदिर, मस्जिद जाओ। ध्यान का अर्थ है जीवन में पूरी तरह संलग्न होना, साधारण सा काम भी इतनी तन्यमता से करना कि काम में से गहराई झलकने लगे।

पहली बार सरहा की समझ में आया कि ध्यान क्या है? ध्यान तो वह भी करते थे, बड़ी मेहनत करते थे, लेकिन यहा पहली बार ध्यान वस्तुतः घटित हुआ था, एक दम सजीव। वे उसे अनुभूत कर सकते थे, छू सकते थे, ध्यान जैसे साकार हो उठा था। और तब उन्हें याद आया कि एक आंख बंद और दूसरी आंख खुली रखना यह एक बौद्ध प्रतीक है।

बुद्ध कहते हैं–और आज के मनस्विद उनसे सहमत होंगे; पच्चीस सौ साल बाद मनोविज्ञान उस नतीजे पर पहुंचा है जहां बुद्ध इतने पहले पहुंच चुके थे। बुद्ध कहते हैं, हमारा आधा मस्तिष्क तर्क करता है और आधा मस्तिष्क अंतर्बोध (संप्रेषण) करता है। हमारा मस्तिष्क दो भागों में या दो क्षेत्रों में बंटा हुआ है। बायां हिस्सा सोचता है, तर्क करता है, तर्कबद्ध दलील करता है, विश्लेषण करता है। वह दर्शन और धर्मशास्त्र का क्षेत्र है, जिसमें शब्द ही शब्द भरे पड़े हैं, जिसमें दलीलें ही दलीलें हैं। तर्क और निष्कर्ष है वह बायां मस्तिष्क बिलकुल अरस्तु जैसा है।

दाहिना मस्तिष्क अंतर्बोध करता है, वह काव्यात्मक प्रेरणा का स्रोत है, वह द्रष्टा है; वह पूर्व-चेतना, पूर्व-बोध का केंद्र है। तुम बहस नहीं करते, तुम बस जान जाते हो। तुम अनुमान नहीं लगाते, तुम्हें बस बोध हो जाता है। पूर्व-बोध की स्थिति का अर्थ ही यह है, वह बस होता है।

सत्य की प्रतीति दाहिने मस्तिष्क द्वारा होती है जबकि सत्य का अनुमान बाएं मस्तिष्क द्वारा। लेकिन अनुमान-अनुमान है, वह अनुभव नहीं है।

एकाएक सरहा को ख्याल आया कि उस स्त्री ने प्रतिकात्मक रूप में तर्क की आंख बंद कर ली थी और दूसरी आंख प्रेम, आत्मज्ञान और बोध के प्रतिक के रूप में खोल रखी थी। और फिर उन्हें वह जिस मुद्रा में थी उसका ध्यान आया।

अज्ञात और अदृश्य को लक्ष्य बनाकर हम एक यात्रा पर चल पड़े हैं, वह जानने के लिए जो नहीं जाना जा सकता। वहीं सच्चा-ज्ञान है, वह जानना जो कभी जाना नहीं जा सकता, उसकी अनुभूति करना जो कभी अनुभूत नहीं किया जा सकता, वह पाना जो कभी पाया नहीं जा सकता। ऐसी असंभव अभीप्सा ही व्यक्ति को धार्मिक बनाती है। हां, असंभव अभीप्सा, लेकिन 'असंभव' से मेरा यह मतलब नहीं है कि वह कभी घटित होगी ही नहीं; 'असंभव' से मेरा मतलब यह है कि वह तब तक संभव नहीं है जब तक तुम पूरे के पूरे रूपांतरित नहीं हो जाते। जैसे तुम हो वैसे तो यह संभव नहीं लेकिन होने के भी अलग-अलग ढंगहोते है। और तुम एक बिलकुल ही नये आदमी बन सकते हो....तब वह संभव है। वह एक दूसरे ही ढंग के आदमी के लिए संभव है। इसीलिए जीसस कहते हैं: जब तक तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं होता तब तक तुम नहीं जान सकोगे। एक नया आदमी ही वह जान सकता है।

तुम मेरे पास आते हो, लेकिन तुम नहीं जान सकोगे। पहले मुझे तुम्हारी हत्या करनी होगी, पहले मुझे तुम्हारे साथ कठोर बनना होगा, खतरनाक बनना होगा, तुम्हें पहले मिटना होगा। और तब एक नये मनुष्य का

जन्म होता है, एक नई चेतना जन्म लेती है, क्योंकि तुममें कुछ है जो अविनाशी है, जिसे नष्ट नहीं किया जा सकता; कोई उसे नष्ट नहीं कर सकता। जो नाशवान है, वही नष्ट होगा, जो अनश्वर है वह बचा रहेगा। जब तुम अपने भीतर छिपे हुए उस अविनाशी तत्व को, उस सनातन बोध को पा लेते हो तब तुम एक नये मनुष्य बन जाते हो, एक नई चेतना बन जाते हो। और तब जो असंभाव है वह संभव बनता है, जो अप्राप्त है वह प्राप्त होता है।

तो सरहा को उस स्त्री की मुद्रा का स्मरण आया। उस एक अज्ञत, अदृश्य, अगाम्य की ओर लक्ष्य किये हुए थी। कैसे अस्तित्व के साथ एक हुआ जाए? लक्ष्य है अद्वैत जहा विषय और विषयी दोनों खो जाते हैं, जहां 'मैं' और 'तू' खो जाते हैं।

मार्टिन बूबर की एक बड़ी प्रसिद्ध पुस्तक है: 'आइ एंड दाउ।' मार्टिन बूबर कहता है कि प्रार्थना की अनुभूति 'मैं' और 'तू' की अनुभूति है–और वह ठीक कहता है। प्रार्थना की अनुभूति 'मैं-तू' की ही अनुभूति है, जिसमे परमात्मा है 'तू' ओर तुम होते हो 'मैं' और तुम्हारे और 'तू' के बीच एक भीतरी संवाद घटता है। लेकिन बौद्ध धर्म में प्रार्थना है ही नहीं, वह उससे ऊपर उठता है। बौद्ध धर्म कहता है: 'मैं-तू' का संबध भी द्वैत का संबध है, तुम फिर भी अलग विषक्त रह जाते हो। तुम दूसरे के प्रति चिल्ला सकते हो, लेकिन भीतरी संवाद घटित नहीं होगा। भीतरी संवाद तो तब घटता है जब 'मैं-तू' का द्वैत ही नहीं रहता; जब विषय और विषयी दोनों खो जाते हैं; जहां 'मैं' रहता है न 'तू' रहता है। जहा न खोजने वाला रहता है, न वह रहता है जिसकी खोज है–जहां एक की ही सत्ता होती है, केवल एकता होती है।

सरहा ने जैसे ही यह जाना, उस स्त्री की क्रियाओं को परखा और उन्हें सत्य की पहचान हुई, उस स्त्री ने उन्हें 'सरहा' कह कर पुकारा। उनका नाम तो राहुल था, उस स्त्री ने लेकिन उन्हें 'सरहा' कहा। 'सरहा' बड़ा प्यारा शब्द है। उसका अर्थ होता है, 'वह जिसने तीर मार लिया है।' 'सर' का अर्थ होता है 'तीर' 'हा' का मतलब है 'मार लिया' 'सरहा' का अर्थ है 'वह जिसने तीर मार लिया'। जैसे ही उन्हें उस स्त्री की क्रियाओं का भेद समझ में आ गया, उसकी वह प्रतिकात्मक मुद्राएं, जैसे कि वह उन्हें कुछ देने का प्रयत्न कर रही थी, वह क्या दिखाने का प्रयत्न कर रही थी उसका रहस्य समझ में आया, वैसे ही वह स्त्री अति आनंदित हुई। वह नाच उठी और उसने उन्हें 'सरहा' कह कर बुलाया और कहा: 'आज से तुम सरहा कहे जाओगे: तुमने तीर मार लिया है। मेरी क्रियाओं का भेद समझ कर तुमने प्रवेश कर लिया है।

सरहा ने कहा: 'तुम कोई साधारण तीर बनाने वाली स्त्री नहीं हो, मेरा ये सोचना है कि तुम एक सामान्य तीर बनाने वाली स्त्री हो, भूल थी, मुझे क्षमा करो, इस बात का मुझे बहुत खेद है। तुम एक महान गुरु हो और तुम्हारे कारण मेरा पुनर्जन्म हुआ है। कल तक मैं सच्चा ब्राह्मण नहीं था, लेकिन आज से मैं जरूर ब्राह्मण हूं। तुम ही मेरी गुरु हो, और तुम ही मेरी माता हो, और तुम्हीं ने मुझे नया जन्म दिया है। मैं अब वही नहीं हूं। इसलिए तुमने ठीक ही किया जो मेरा पुराना नाम बदल कर मुझे नया नाम दे दिया'

तुम मुझसे कभी पूछते हो: 'आप नया नाम क्यो देते हो?'–इसलिए कि तुम्हारा पुराना नामो निशान न बचे, कि तुम अपने भूतकाल को भूल जाओ, जो बीत गया है उससे पूरा छुटकारा जरूरी है, भूतकाल के साथ तुम्हें पूरी तरह संबंध-विच्छेद करना होगा।

सो इस प्रकार राहुल सरहा बन गए।

कहा तो यह जाता है कि वह स्त्री और कोई न होकर गुप्त रूप में स्वंय बुद्ध थे। शास्त्रों में जो बुद्ध का नाम दिया गया है, वह है सुखनाथ बुद्ध, जो सरहा जैसे बड़ी संभावना रखने वाले व्यक्ति की सहायता के लिए आए थे। बुद्ध ने, या कहो किसी सुखनाथ नाम के बुद्धपुरुष ने स्त्री का रूप ले लिया था। लेकिन क्यों? क्यों स्त्री का

रूप? क्योंकि तंत्र यह मानता है कि जैसे मनुष्य का जन्म स्त्री से होता है वैसे ही शिष्य के रूप में उसका नया जन्म भी स्त्री से ही होगा। असलियत तो यह है कि सभी गुरु मां अधिक और पिता कम होते हैं। उनमें स्त्रैणता का गुण होता है। बुद्ध स्त्रैण है, वैसे ही महावीर और वैसे ही कृष्ण भी स्त्रैण है। इनमें तुम्हे स्त्रियोचित लावण्य और (सुडौलता) गोलाई, स्त्रियोचित सौंदर्य दिखाई देंगे: इनकी आंखों में तुम देखो तो तुम्हें पुरुष की आक्रामकता नहीं दिखाई देगी।

तो बुद्ध का स्त्री रूप धारण करना बड़ा प्रतिकात्मक है। बुद्ध सदा स्त्री का रूप लेते हैं; वे भले ही पुरुष के शरीर में रहते हो लेकिन मूलतः वे स्त्री ही होते हैं। क्योंकि जो भी पैदा होता है वह स्त्री-शक्ति से ही होता है। पुरुष शक्ति जन्म की प्रक्रिया का आरंभ तो कर सकती है लेकिन जन्म नहीं दे सकती।

गुरु को तुम्हें अपने गर्भ में महीनों तक, सालों तक और कभी-कभी तो जन्मों तक रखना पड़ता है। कोई नहीं कह सकता कब तुम जन्म लेने को तैयार हो जाओ। गुरु को मां बनना पड़ता है। गुरु में स्त्री-शक्ति की भारी सामर्थ्य होना जरूरी है तभी वह तुम पर प्रेम की वर्षा कर सकता है, तभी वह तुम्हें खत्म कर सकता है। जब तक तुम्हें उसके प्रेम के बारे में पक्का नहीं होगा, तुम उसे खत्म नहीं करने दोगे। तुम श्रद्धा करोगे कैसे? केवल गुरु का प्रेम ही तुम्हें श्रद्धा करने योग्य बनाएगा और उसी श्रद्धा द्वारा वह धीरे-धीरे तुम्हारे अंग-प्रत्यंग काटेगा। और एक तुम एकाएक मिट जाओगे। धीरे...धीरे...धीरे और तुम गए। गते गते पारगते। तब नये का जन्म होता है।

तीर बनाने वाली स्त्री ने सरहा को स्वीकार कर लिया। असल में वह उसकी प्रतिक्षा कर रही थी। गुरु, शिष्य की प्रतिक्षा करता है। पुरानी परंपराएं कहती है: इससे पहले कि शिष्य गुरु को चुने, गुरु ने शिष्य को चुन लिया होता है। ठीक वही इस कथा में भी घटित हुआ। सुखनाथ स्त्री के रूप में छिप कर सरहा के आने की तथा उनके द्वारा रूपांतरित होने की प्रतीक्षी कर रहे थे।

यह और भी अधिक तर्कसंगत लगता है, कि पहले गुरु ही चुने क्योंकि उसमें बहुत अधिक प्रतिभिज्ञता है, वह जानता है। वह तुम्हारे अस्तित्व में तुम्हारी संभावना में प्रवेश कर सकते हैं। वह तुम्हारा भविष्य देख सकता है। वह उसे देख सकता है जो हो सकता है। जब तुम गुरु चुनते हो तब तुम यह सोचते हो कि तुमने चुना-तुम गलत सोचते हो। तुम गुरु कैसे चुनोगे? तुम तो अंधे हो, तुम कैसे पहचान सकोगे गुरु को? तुम तो बेहोश हो, तुम्हे गुरु की अनुभूति होगी कैसे? अगर तुम्हे उसकी अनुभूति होने लगे तो उसका अर्थ है, गुरु ने तुम्हारे हृदय मे प्रवेश कर लिया है, और तुम्हारी शक्तियों के साथ खेलना शुरू कर दिया है–इसीलिए तुम्हे उसकी अनुभूति होने लगती है।

इससे पहले कि शिष्य गुरु को चुने, शिष्य चुन लिया गया होता है।

स्त्री ने सरहा को स्वीकार कर लिया। वह असके आने की प्रतिक्षा कर ही रही थी। वे दोनो एक श्मशान में आकर साथ-साथ रहने लगे। श्मशान में क्यों? इसलिए कि बुद्ध ने कहा है: ‘जब तक तुम मृत्यु को नहीं समझते, जीवन क्या है यह नहीं समझ पाओगे। जब तक तुम मर नहीं जाते, तुम्हारे पुनर्जन्म नहीं होगा।

सरहा के बाद तंत्र के कई अनुयायी श्मशान में रह चुके हैं। वे इस परंपरा के जनक थे, वे श्मशान में ही रहे। लोग अरथियां लाते और जलाते, और वे वहीं रहते। उन दोनों के बीच गहन प्रेम था–ऐसा नहीं जैसा किसी स्त्री और पुरुष के बीच होता है, बल्कि गुरु और शिष्य का प्रेम जो स्त्री-पुरुष के प्रेम से कहीं अधिक ऊंचा है, जो अधिक घनिष्ठ होता है, निश्चय ही अधिक घनिष्ठ...क्योंकि स्त्री और पुरुष का प्रेम तो केवल शारीरिक होता है। ज्यादा से ज्यादा कभी-कभी मन तक पहुंचता है, वरना अक्सर तो शरीर तक ही सीमित रहता है।

गुरु और शिष्य का संबंध, आत्मा का प्रेम-संबंध है। सरहा को उनका आत्म-साथी मिल गया था। दोनों एक-दूसरे के गहन प्रेम में थे, ऐसा प्रेम जो इस पृथ्वी पर कदाचित ही होता है।

स्त्री ने सरहा को तंत्र की शिक्षा दी। केवल स्त्री ही तंत्र सिखा सकती है। किसी ने मुझसे पूछा कि मैंने कविशा को तंत्र का ग्रुप लीडर क्यों बनया? इसलिए कि केवल स्त्री ही तंत्र के ग्रुप की लीडर बन सकती है। पुरुष के लिए कठिन होगा। हां, कभी-कभी पुरुष भी बन सकता है, लेकिन फिर उसे बहुत ही स्त्रैण बनना होगा। स्त्री तो होती ही है, उसमें पहले से ही वे गुण होते हैं–प्रेम और स्नेह के गुण। उसमें स्वभावतः देखभाल, प्रेम, तथा कोमलता के गुण होते हैं।

इस तीर बनाने वाली स्त्री के मार्ग-दर्शन में सरहा तांत्रिक बन गए। अब उन्होंने ध्यान करना छोड़ दिया। एक दिन उन्होंने वेद, शास्त्र, ज्ञान आदि छोड़ दिया था, अब उन्होंने ध्यान भी छोड़ दिया। सारे देश में अफवाह फैल गई कि सरहा अब ध्यान नहीं करते। वे गाते जरुर हैं, नाचते भी हैं, लेकिन ध्यान बिलकुल नहीं करते। अब संगीत ही उनका ध्यान बन गया, अब नृत्य ही उनका ध्यान बन गया। अब उत्सव ही उनके सारे जीवन को ढंग बन गया।

श्मशान में रहना और उत्सव। रहना जहां केवल मृत्यु घटती हो और जीना आनंद-विभोर होकर। यही तंत्र की खूबी है–वह जहां भी विरोध है, जो भी विपरीत है उसे जोड़ता है। अगर तुम कभी श्मशान जाओ तो उदास हो जाओगे, वहां तुम्हारे लिए आनंद मग्न होना बड़ा कठिन होगा, ऐसी जगह जहां लोग जलाये जाते हो, जहां लोग रोते-चिल्लाते हों, तुम्हारे लिए गाना और नाचना बड़ा कठिन होगा। और रोज मौत ही मौत, दिन रात मौत। कैसे तुम आनंद मनाओगे?

लेकिन अगर वहां तुम आनंद नहीं मना सकते तो जिसे आज तक तुम आनंद समझते रहे हो वह झूठ है। अगर तुम श्मशान में भी आनंद मना सको तब तो यह कहा जा सकता है, कि तुम में आनंद घटित हुआ है। क्योंकि अब वह बेशर्त है। अब इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कही मृत्यु है या जीवन, कि किसी का जन्म हुआ या मृत्यु हुई।

सरहा गाने और नाचने लगे। अब वे पहले की तरह गंभीर नहीं रहे। तंत्र में गंभिरता है ही नहीं। तंत्र है क्रीड़ा! हां, उसमें ईमानदारी है, लकिन गंभीरता नहीं। वह अत्यंत आनंदपूर्ण है। तो सरहा के आस्तित्व में क्रीड़ा का प्रवेश हो गआ–तंत्र है ही क्रीड़ा, क्योंकि तंत्र प्रेम का सबसे विकसित रूप है: प्रेम है क्रीड़ा।

कुछ लोग हैं जो प्रेम को भी क्रीड़ा नहीं मानते। महात्मा गांधी ने कहा है: 'संभोग तभी करो जब बच्चे पैदा करने हों। प्रेम तक को तो लोग एक काम बना डालते हैं–बच्चे पैदा करना। यह तो बिलकुल ही घिनौनी बात हुई। बच्चे पैदा करने हो तभी पत्नी के साथ संभोग करो–क्या पत्नी कोई फैक्टरी है! पत्नी से संभोग तब करो जब तुम आनंद अनुभव कर रहे हो, उत्साहित हो, जब तुम अपने चरमोत्कर्ष पर हो। उस ऊर्जा को बांटो। पति के साथ प्रेम तब करो जब तुम्हारा मन नृत्य, गीत और आनंद से आंदोलित हो। प्रजोत्पादन या बच्चे पैदा करने के लिए नहीं! यह 'प्रजोत्पादन' शब्द ही अश्लील है। संभोग करो तो आनंद के साथ, घने आनंद के साथ करो, जब तुम्हारे पास बहुत आनंद हो जाए तब बांटो।

तो सरहा के जीवन में खेल और क्रीड़ा का प्रवेश हुआ। प्रेमी सदा क्रीड़ा के उत्साह में होता है, और जैसे ही यह क्रीड़ा का उत्साह मरता है, तुम पति या पत्नी बन जाते हो, फिर तुम प्रेमी नहीं, रहते, फिर तुम बच्चे पैदा करने में लग जाते हो। और जैसे ही तुम पति या पत्नी बने कि तुम्हारे में जो सुदंर है उसकी हत्या हो जाती है, उसमें प्राण नहीं रहते, उसमें रस नहीं बहता। अब मात्र एक दिखावा, एक ढोंग रह जाता है।

सरहा के जीवन में क्रीड़ा का प्रवेश हुआ, और उसके साथ ही सच्चे धर्म का जन्म हुआ। उनकी भावविभोरता इतनी संक्रामक थी कि लोग उन्हें गाते और नाचते हुए देखने आने लगे। और जब लोग उन्हें देखते तो वे भी उनके साथ नाचने लगते; वे भी उनके साथ गाने लगते। वह पूरा श्मशान बड़े आनंद और उत्सव का

केंद्र बन गया। वहां मुर्दे तो अभी भी जलते थे, लेकिन सरहा और तीर बनाने वाली स्त्री के आसपास अधिकाधिक भीड़ एकत्रित होने लगी, और उस श्मशान में बड़ा आनंद मनाया जाने लगा।

और यह सब इतना संक्रामक हो गया कि जिंहें भावविभोरता क्या होती है उसका कुछ भी पता नहीं था, वे लोग आकर नाचते और गाने लगे और भावविभोरता में डूबने लगे, समाधि में उतरने लगे। सरहा की तरंगें, उनकी मौजूदगी ही इतनी प्रभावशाली बन गई कि अगर तुम उनके साथ जुड़ जाओ तो तुम्हारे साथ भी वह घट जाए। वे इतने मस्त बन गए थे कि लोगों पर उनकी मस्ती उमड़ पड़ने लगी। वे इतने उन्मादित हो गए कि उनके साथ अन्य लोग भी अधिकाधिक आनंदग्रस्त होने लगे।

लेकिन फिर जो अपरिहार्य था वह हुआ: ब्राह्मणों ने, पंडित और पुरोहितों ने, और तथा कथित धार्मिक लोगों ने सरहा को बदनाम करना शुरू कर दिया–इसे ही मैं अपरिहार्य कहता हूं। जब भी सरहा जैसा आदमी होगा, पंडित निश्चय ही उसके विरोध में हो जाएंगे, पुरोहित विरोध में हो जाएंगे, और वे तथाकथित सदाचारी, नेतिकतावादी, धर्म परायण लोग विरोध में हो जाएंगे। तो इन लोगों ने सरहा के बारे में बिलकुल बेबुनिया अफवाहें फैलानी शुरू की।

वे लोगों से कहने लगे: 'वह तो पतित हो गया है। भ्रष्ट हो गया है। अब वह ब्राह्मण ही नहीं रहा। उसने ब्रह्मचर्य छोड़ दिया है। अब वह बौद्ध भिक्षु तक नहीं रहा। वह एक निम्न जाति की स्त्री के साथ लज्जास्पद आचरण करता है और एक पागल कुत्ते की तरह चारों और दौड़ता फिरता है।' उन्हें सरहा का भावविभोर होना पागल कुत्ते जैसा लगा–सब तुम्हारी व्याख्या पर निर्भर करता है। सरहा पूरे श्मशान में नाचते फिरते थे। वे उन्मत्त तो थे, लेकिन किसी पागल कुत्ते की तरह नहीं–वे परमात्मा के नशे में उन्मत्त थे।

सब तुम्हारी दृष्टी पर निर्भर है।

राजा को भी इन बातों की खबर पहुंचाई गई। ठीक क्या हो रहा है, यह उसे भी जानने की उत्सुकता हुई। लोग आ-आ कर उसे खबरें पहुंचाने लगे, और वह चिंतित होने लगा। वे लोग राजा को जानते थे, उनके मन में सरहा के प्रति बड़ा सम्मान है, यह उन्हें ज्ञात था, वह उन्हें अपने दरबार का मंत्री बनाना चाहता था। लेकिन सरहा ने तो संन्यास ले लिया था। राजा के मन में सरहा की विद्वत्ता के प्रति बड़ा सम्मान था, सो लोग उसके पास उनकी खबरें लाने लगे।

राजा को और भी अधिक चिंता हुई। उसे इस युवक से प्रेम था, उसके प्रति सम्मान भी था, और वह उसके लिए चिंतित भी था। कुछ लोगों को राजा ने सरहा को समझाने के लिए भेजा, और कहलवाया कि 'अपने पुराने मार्ग पर लौट आओ। तुम ब्राह्मण हो, तुम्हारे पिता बड़े पंडित थे, तुम स्वयं बड़े पंडित थे–यह तुम क्या कर रह हो? तुम भटक गए हो। वापस घर लौट आओ। मैं अभी जिंदा हूं। राजमहल आओ और मेरे परिवार के अंग बन जाओ। तुम जो कर रहे हो वह ठीक नहीं है।

जो लोग सरहा का मन बदलने आए थे उनके आगे सरहा ने एक सौ साठ पद गाए। वे एक सौ साठ पद... और वे लोग नाचने लगे, वे फिर लौटे ही नहीं।

राजा को और भी अधिक चिंता हुई। राजा की पत्नी, रानी को भी इस नवयुवक में रुचि थी। वह अपनी बेटी का विवाह उसके साथ करना चाहती थी, तो वह भी सरहा को समझाने गई। और सरहा ने रानी के आगे अस्सी गीत गए....और रानी फिर राजमहल नहीं लौटी।

राजा बड़ा हैरान हुआ: 'वह यहां हो क्या रहा है?' तो राजा स्वयं वहां पहुंचा और सराह ने केवल चालीस पद गाए और राजा का हृदय परिवर्तन हो गया, और वह भी उस श्मशान में पागल कुत्ते की तरह नाचने लगा।

तो सरहा के नाम पर तीन ग्रंथ उपलब्ध हैं: पहला: सरहा के लोक-गीत, एक सौ साठ पद; दूसरा: सरहा के रानी के गीत–पहले एक सौ साठ पद, दूसरे अस्सी पर: और फिर सरहा के राज-गीत जिन का हम ध्यान करेंगे–वे हैं चालीस पद। एक सौ साठ पर आम लोगों के लिए क्योंकि उनकी समझ कोई बहुत अधिक नहीं थी। अस्सी पद रानी के लिए क्योंकि उसकी समझ आम लोगों की समझ से जरा अधिक थी; चालीस पद राजा के लिए क्योंकि वह आदमी बुद्धिमान था, समझदार था, बोधयुक्त था।

राजा में परिवर्तन हो जाने के कारण धीर-धीरे पूरे देश में धार्मिक परिवर्तन आ गया। और पुराने शास्त्र तो कहते हैं कि एक समय आया जब पूरा देशा शून्य हो गया। 'शून्य'..? यह बौद्ध शब्द है। इसका अर्थ हुआ कि लोग ना-कुछ हो गए, वे अहंकार-शून्य हो गए। लोग मिला हुआ क्षण आनंदपूर्वक बिताने लगे। आपा-धापी, पतिस्पर्धा की हिंसा सारे देश में से गायब हो गई। पूरा देशा शांत हो गया, वह शून्य हो गया...जैसे वहां कोई था ही नहीं। उस देश में आदमी जैसे गायब ही हो गए; एक महान दिव्यता उस देश में उतर आई। यह चालीस पद उसके मूल में थे, उसके स्त्रोत थे।

अब हम इस महा-यात्रा में प्रवेश करेंगे: सरहा के 'राज-गीत'। इन्हें 'मानव-कर्म के गीत' भी कहा जाता हैं–यह बड़ा विरोधाभासी है, क्योंकि इन पदों का कर्म से कोई लेना-देना नहीं है। परंतु इसीलिए इन्हें 'मानव-कर्म के गीत' कहा जाता हैं। इनका संबंध अस्तित्व से है, जब अस्तित्व में परिवर्तन होता है, तब कर्म भी बदल जाता है। जब तुम बदलते हो तो तुम्हारा व्यवहार भी बदलता है–इसका उलटा नहीं होता। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि पहले तुम अपने कर्म बदलो और तब तुम्हारा आस्तित्व बदलेगा, नहीं! तंत्र कहता है: पहले खुद अपना अस्तित्व बदलो और तुम्हारा कर्म अपने आप बदल जाएगा। पहले एक दूसरी ही तरह की तरह की चेतना को प्राप्त करो, और उसके पीछे एक दूसरे ही तरह का कर्म, चरित्रय व्यवहार चला आएगा।

तंत्र अस्तित्व में होने में मानता है, कर्म और चारित्र्य में नहीं। इसीलिए इसे 'मानव-कर्म के गीत' कहा है–क्योंकि एक बार अस्तित्व बदल जाये तो तुम्हारे कर्म भी बदल जाते हैं। तुम्हारे कर्म बदलने का एक मात्र यही मार्ग है। कर्म तो सीधे आज तक कौन बदल पाया है? तुम केवल दिखाव भर कर सकते हो।

अगर तुम में क्रोध है, और तुम अपना कर्म बदलना चाहते हो तो तुम क्या करोगे? तुम अपना क्रोध दबाओगे और नकली चेरहा दिखाओगे; तुम्हें नकली चेहरा लगाना ही पड़ेगा। अगर तुम में कामवासना दबी पड़ी है तो तुम उसे बदने के लिए क्या करोगे? तुम ब्रह्मचर्य का व्रत ले सकते हो और बाहरी दिखावा कर सकते हो, लेकिन भीतर गहरे में तो ज्वालामुखी जलता ही रहेगा। तुम ज्वालामुखी पर बैठे हो, वह किसी भी क्षण फूट सकता है। इस तरह तो तुम सदा कंपते रहोगे, सदा भयभीत रहोगे।

तुमने तथाकथित धार्मिक लोगों को नहीं देखा? वे सदा भयभीत रहते है, नर्क का भय, और सदा स्वर्ग जाने के चक्कर में लगे रहते हैं। लेकिन उन्हें यह नहीं पता कि स्वर्ग क्या है; उन्होंने कभी उसका स्वाद चखा ही नहीं है। अगर अपनी चेतना बदल डालो तो स्वर्ग तुममें उतर आएगा, नहीं कि तुम स्वर्ग चले जाओगे। न कभी कोई स्वर्ग गया है, और न कभी कोई नरक गया है। इस बात को एक बार तय हो जाने दें: स्वर्ग तुम्हारे पास आता है, नरक तुम्हारे पास आता है, सब तुम पर निर्भर है। जो भी तुम बुलाओगे,वह आयेगा।

अगर तुम्हारा अस्तित्व बदल जाए तो स्वर्ग तुम्हें सहज उपलब्ध हो जाएगा, स्वर्ग तुम पर उतर आएगा। अगर तुम्हारा अस्तित्व नहीं बदलता तो फिर तुम संघर्ष में रहते हो, तब तुम उस चीज को जबर्दस्ती करते हो जो वहां है ही नहीं। तब तुम नकली और अधिक नकली बन जाते हो, और तुम एक नहीं दो व्यक्ति बन जाते हो, तुम्हारा व्यक्तित्व खंडित हो जाता है, तुम टूट जाते हो। तुम दिखाते कुछ हो, होते कुछ और हो। तुम कहते कुछ

हो, करते कुछ और हो। और फिर तुम सतत अपने आप के साथ आंख-मिचौली खेलते रहते हो। ऐसी हालत में चिंता, व्यथा की स्थिति स्वभाविक हो जाती है–यही फर्क है।

अब हम सरहा के पदों में प्रवेश करेगें:

महान मंजुश्री को मेरा प्रणाम,

प्रणाम हैं उन्हें

जिन्होंने किया सीमित को अधीन

यह 'मंजुश्री' शब्द समझना पड़ेगा। मंजुश्री, बुद्ध के शिष्यों में से थे, लेकिन बड़े अनूठे शिष्य थे। वैसे तो बुद्ध के कई अनूठे शिष्य थे, अपने-अपने ढंग से अनूठे। महाकश्यप अनूठे थे क्योंकि वे बुद्ध द्वारा निःशब्द में दिया हुआ संदेश समझ सके...इत्यादि, इत्यादि। मंजुश्री इसलिए अनूठे थे क्योंकि उनमें गुरु होने का बड़ा भारी गुण था।

जब भी कोई कठिन समस्या बन जाता, कोई व्यक्ति समस्या बन जाता, बुद्ध उसे मंजुश्री के पास भेज देते। मंजुश्री का नाम लेते ही लोग कांपने लगते। वे निश्चय ही बड़े कठोर आदमी थे, बड़े उग्र। जब भी कोई मंजुश्री के पास भेजा जाता, शिष्य कहते: 'उसे मंजुश्री की तलवार के पास भेजा है'। मंजुश्री की तलवार: यह वचन सदियों से प्रसिद्ध रहा है, क्योंकि मंजुश्री एक वार से

सिर (बुद्धि) के दो टुकड़े कर डालते थे। आहिस्ता-आहिस्ता नहीं। एक झटके से वे सिर के टुकड़े कर डालते। उनकी करुणा इतनी थी, इसीलिए वे इतने क्रूर बन सकते थे।

तो धीरे-धीरे मंजुश्री का नाम सभी गुरुओं का प्रतिनिधि नाम बन गया, क्योंकि सभी गुरु करुणावान होते हैं और सभी को क्रूर बनना पड़ता है। करुणावान इसलिए क्योंकि वे तुम्हें एक नये व्यक्ति के रूप में जन्म देते हैं; क्रूर इसलिए कि उन्हें जो पुराना है उसे नष्ट करना पड़ता है।

तो पद आरंभ करने से पहले जब सरहा नमन करते हैं, तो वे कहते हैं: 'महान मंजुश्री को मेरे प्रणाम'–वे जो गुरुओं के गुरु हैं–'प्रणाम हैं उन्हें जिन्होंने किया सीमित को आधीन।' और फिर वे बुद्ध को प्रणाम करते हैं, जिन्होंने सीमित पर विजय पाई और जो असीम बन गए।

जैसे पवन के आघात से

शांत जल में उभर आती है, उतंग तरंगें,

ऐसे ही देखते हो सरहा

अनेक रूपों में, हे राजन!

यद्यपि है वह एक ही व्यक्ति।

एक सरोवर की कल्पना करें, बिलकुल शांत सरोवर जिस पर एक भी लहर न उठ रही हो। और एका-एक पवन का झोंका आकर सरोवर को झकझोर देता है। और हजारों लहरें उभर आती हैं। एक क्षण पहले जो पूनम का चांद उस सरोवर में चमक रहा था, अब नहीं रहा। अब चांद का प्रतिबिंब तो है, मगर हजार टुकड़ों में पूरे सरोवर में फैला है। पूरा सरोवर उस फैले हुए प्रतिबिंब के कारण रूपहला बन जाता है। लेकिन असली प्रतिबिंब को तुम नहीं पकड़ पाते, क्योंकि वह तो तितर-बितर हो गया है।

सरहा कहते हैं: यही हालत सांसारिक मन की है, मोहग्रस्त मन की। एक बुद्ध में और जो बुद्ध नहीं है, उसमें बस यही फर्क है। बद्ध वह है जिसमें अब पवन का झोका नहीं आता। पवन के उस झोंके का नाम है–' तृष्णा।' क्या तुमने कभी ध्यानपूर्वक देखा है? जब भी इच्छा का जन्म होता है, तुम्हारे हृदय में हजारों लहरें

कांप उठती हैं। तुम्हारी चेतना हिल उठती है, व्याकुल हो जाती है। इच्छा के थमते ही तुम्हें आराम मिलता है, भीतर एक शांति का अनुभव होता है।

तो इच्छा ही वह पवन है, जो मानस में विकृति पैदा करती है, और जब मानस विकृत हो तो तुम असली सत्ता को प्रतिबिंबित नहीं कर सकते।

जैसे पवन के आघात से
शांत जल में उभर आती है उतंग तरंगें,
ऐसे ही देखते हो सरहा
अनेक रूपों में, हे राजन!
यद्यपि है वह एक ही व्यक्ति।

सरहा दो बातें कह रहे हैं। पहले तो वह कहते रहे हैं: बेकार की बातों से तुम्हारा मानस पहले ही बहुत अशांत है। पहले ही पवन के झोंकों ने तुम्हारा मानस आंदोलित कर रखा है। तुम मुझे नहीं देख पाओगे, यद्यपि हूं मैं एक ही–लेकिन तुम्हारा मन मुझें हजार रूपों में प्रतिबिंबित करता है।

सरहा ठीक कह रहे थे। वे राजा के आर-पार देख सकते थे। राजा मुश्किल में पड़ गया। एक और तो वह इस नवयुवक का बड़ा आदर करता था, एक और तो उसे इस नवयुवक में बड़ी आस्था थी। राजा जानता था कि वह गलत नहीं हो सकता। लेकिन फिर इतने लोगों ने, इतने तथाकथित ईमानदार, इज्जतदार, धनी, पढ़े-लिखे लोगों ने उसे आकर कहा था: 'वह तो गलत रास्ते पर चढ़ गया है, वह तो लगभग पागल हो गया है। वह तो विक्षिप्त है, भ्रष्ट हो गया है। एक निम्न जाति की तीर बनाने वाली स्त्री के साथ रहता है। वह तो श्मशान में रहता है, भला यह भी कोई रहने की जगह है। वह सारे क्रियाकर्म भूल गया है; अब न वह वेदपाठ करता है, न परमात्मा का नाम लेता है। ध्यान करते हुए भी नहीं देखा गया है। वह तो विचित्र, गंदी, शर्मनाक करतूतों में डूबा रहता है।

जो लोग कामवासना से ग्रस्त रहते हैं उन्हें तंत्र शर्मनाक ही लगता है। वे समझ नहीं पाते, दबी हुई वासनाओं की वजह से उनकी समझ में ही नहीं आता क्या हो रहा है। तो ये तमाम बातें राजा के मानस पर पवन के बड़े झोंके का काम कर रही थी। राजा का एक हिस्सा तो सरहा को प्रेम करता था, उसका आदर करता था; उसका दूसरा हिस्सा गहरी शंका में डूबा हुआ था।

सरहा ने सीधे राजा की और देख कहा: 'ऐसे ही देखते हो सरहा उनके रूपों में, हे राजन! यद्यपि है वह एक ही व्यक्ति।' यद्यपि सरहा एक ही व्यक्ति है: मैं एक पूर्णमासी के चंद्रमा की तरह हूं, लेकिन तुम्हारे मानस सरोवर में हलचल मची है। इसलिए अगर तुम मुझे समझना चाहते हो तो कृपा कर सीधे समझने की कोशिश न करो–मुझे समझने का एक ही रास्ता है और वह यह कि जो पवन तुम्हारे मानस को सतह पर चोट कर रहा है उसे रोको। पहले तुम्हारी चेतना शांत हो लेने दो...फिर देखो! पहले इन लहरों ओर मौजों को रूक जाने दो, तुम्हारी चेतना को एक शांत जलाशय बन जाने दो, और तब तुम देखो। जब तक तुम देखने के काबिल नहीं हो जाते, मैं तुम्हें समझा नहीं सकता कि मेरे साथ क्या घटित हो रहा है, यह निश्चित है, और वह भी यहीं। मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूं! मैं एक ही व्यक्ति हूं, लेकिन मैं तुम में देखा सकता हूं–तुम मुझे इस तरह देख रहे हो जैसे में एक नहीं हजार व्यक्ति हूं।

भेंगा है जो मूढ़
दिखते उसे एक नहीं, दो दीप,
जहां दृश्य और द्रष्टा नहीं दो,

अहा! मन करता संचालन

दोनों ही पदार्थगत सत्ता का।

और फिर सरहा उपमा, प्रतीक देते हैं। पहले तो वे कहते हैं तुम्हारे मानस सरोवर में हलचन मची है। फिर वे कहते हैं: 'भेंगा है जो मूढ़ दीखाते उसे एक नहीं दो दीप–वह एक देख ही नहीं सकता, वह दो देखता है।

मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को शराबी होने के ढंग सिखला रहा था। कुछ शराब पी लेने के बाद मुल्ला ने कहा: 'लो, अब चलो। हमेशा याद रखना, शराब पीनी बंद करने का नियम यह है: जब भी तुझे एक की जगह दो आदमी दिखाई देने लगे, घर लौट जाना, समझना कि बस काफी है।'

जब एक की जगह दो दिखाई देने लगे, लेकिन बेटे ने कहा: 'कहां? है कहां वह एक आदमी?

मुल्ला ने कहा: 'देख उस और, उस और, उस टेबल पर दो आदमी बैठे हैं।'

बेटा बोला: 'वहां तो कोई नहीं है!' उसने पहले ही बहुत पी ली थी।

स्मरण रहे, जब तुम बेहोश होते हो तब चीजें वैसी नहीं दिखाई देती, जैसी होती है; जब तुम बेहोश होते हो तब तुम प्रक्षेपण करते हो। आज रात जब चांद को देखो तब अंगुली से अपनी एक आंख को दबाना और तुम्हें दो चांद दिखाई देने लगेंगे और जब तुम दो चांद देख रहे होगे तब यह मानना बड़ा कठिन होगा कि यह एक ही चांद है। क्योंकि तुम देख रहे होगे दो चांद। जरा सोचों! कोई जन्म से ही दबी हुई आंख लेकर आया हो जिसके कारण उसे एक वस्तु दो दिखाई देती हो तो वह हमेशा एक की जगह दो ही देखेगा। जहां तुम एक देखोगे वहां वह दो देखेगा।

हमारी भीतरी दृष्टि अनेक चीजों से घिरी हुई है, इसके कारण हम उन चीजों को देखते रहते हैं जो असल में हैं ही नहीं। और जब हम उन्हें देखते हैं तो कैसे विश्वास करें कि वे नहीं हैं? हमें अपनी आंखों पर विश्वास करना पड़ता है, यद्यपि हमारी आंखें चीजों को तोड़-मरोड़ कर देख रही होती हैं।

भेंगा है जो मूढ़

दखिाते उसे एक नहीं, दो दीप,

जहां दृश्य और द्रष्टा नहीं दो,...

सरहा राजा से कह रहे हैं: अगर तुम यह सोच रहे हो कि मै और तुम दो हैं, तब तुम बेहोश हो, तब तुम मूर्ख हो, तब तुम पीए हुए हो, तब तुम्हें देखना नहीं आता। अगर तुम सही में देख सको तो मैं और तुम एक ही हैं, तब द्रष्टा ओर दृश्य दो नहीं हैं। तब तुम्हें सरहा नृत्य करता हुआ नहीं दिखाई देगा, तुम स्वयं को नृत्य करता हुआ देखोगे। तब मैं जब समाधि में उतरुंगा तो तुम उतरोगे और यही एक मार्ग है जानने का कि सरहा के साथ क्या घट रहा है, और कोई मार्ग नहीं। मुझे क्या हुआ है? अगर तुम जानना चाहते हो तो एक तरीका यही है कि मेरे अस्तित्व में भागीदार बन जाओ। प्रत्येक की भांति खड़े न रहो। तुम्हें मेरे अनुभव में साझीदार बनना पड़ेगा, तुम्हें अपने आप को मुझमें थोड़ा बहुत खोना पड़ेगा। तुम्हें अपनी सीमाओं से बाहर आकर मेरी सीमाओं को छूना पड़ेगा।

संन्यास का अर्थ ही यह है। तुम मेरे नजदीक आने लगो, तुम अपनी सीमाओं को मुझमें खोने लगो, तभी जाकर एक दिन इस साझेदारी की वजह से जब तुम्हारा मेरे साथ घनिष्ठ संबंध हो जाएगा, तब तुम्हें कुछ दिखने लगेगा, कुछ तुम्हारी समझ में आने लगेगा। और तुम उसको जो कि मात्र प्रक्षेपण बन कर खड़ा है, विश्वास नहीं दिला पाओगे, क्योंकि तुम्हारी दृष्टियां भिन्न होंगी। तुम साझीदार रहे हो जब कि वह तो मात्र देखता रहा है, ये दो बिलकुल अलग दुनियां में जीना है।

गृह दीप यद्यपि प्रज्वलित..

सुना सरहा का यह सुदंर कथन:

गृहदीप यद्यपि प्रज्वलित,

जीते अंधेरे में नेत्रहिन,

सहजता से परिव्याप्त सभी,

निकट वह सभी के,

पर रहती सब परे मोहग्रस्त के लिए।

वह कह रहे है: देखो! मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ है। 'गृहदीप यद्यपि प्रज्वलित'...मेरे भीतर अब अंधेरा नहीं है। देखो! मुझमें कितना प्रकाश है। मेरी आत्मा जाग उठी है। अब मैं वही राहुल नहीं हूं जिसे तुम जानते थे, मैं सरहा हूं, मेरा तीर निशाने पर लग चुका है।

गृहदीप यद्यपि प्रज्वलित,

जीते अंधेरे में नेत्रहिन,

लेकिन मैं क्या करूं? सरहा कह रहे हैं, अगर घर में दीये जल रहे हो और कोई अंधाबन अंधेरे में ही जीया करे। ऐसा नहीं कि दीये जल रहे हैं और कोई अंधा बन कर अंधेरे में ही जीया रहे। ऐसा नहीं कि दीये नहीं हैं। उसकी आंखें बंद हैं। इसलिए अंधों की न सुनो! जरा अपनी आंखें खोलो और देखो मेरी और, देखो मुझे–देखो उसे जो तुम्हारे सामने खड़ा है। जो तुम्हारा सामना कर रहा है।

गृहदीप यद्यपि प्रज्वलित,

जीते अंधेरे में नेत्रहिन।

सहजता से परिव्याप्त सभी, निकट वह सभी के ...और मैं तुम्हारे इतने निकट हूं....सहजता तुम्हारे इतनी निकट है, तुम उसे कभी भी छू सकते हो, और खो सकते हो और पी सकते हो। तुम मेरे साथ-साथ नाच सकते हो और मेरे साथ समाधि में डूब सकते हो। मैं तुम्हारे इतना निकट हूं–फिर कभी सहजता को तुम अपने इतनी करीब नहीं पाओगे।

पर रहती सदा परे मोहग्रस्त के लिए।

वे लोग समाधि की बात करते हैं, और पतंजली के सूत्र पढ़ते हैं, बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। लेकिन जब भी वह महान घटना घटती है, वे विरोध में हो जाते हैं।

मनुष्य के मामले में यह बड़ी हैरानी की बात है। मनुष्य बड़ा अजीब जानवर है। तुम बुद्ध की प्रशंसा कर सकते हो, लेकिन अगर स्वयं बुद्ध तुम्हारे सामने आकर खड़े हो जाए तो तुम अनकी जरा भी फिकर नहीं करोगे, हो सकता है तुम उनके विरोधी बन जाओ, उनके शत्रु हो जाओ। कयों? जब तुम बुद्ध के बारे में किताब पढ़ते हो तब सब ठीक लगता है, पुस्तक तुम्हारे हाथ में रहती है। जब एक जिंदा बुद्ध का सामना करना होता है तब वह तुम्हारे हाथ में नहीं होता, तुम उसके हाथ पड़ जाते हो। इसलिए फिर भय, प्रतिरोध, फिर भाग उठना चाहते हो वहां से।

और भागने का बढ़िया तरीका यहीं है कि तुम अपने आप को विश्वस दिला दो कि गलत वह है तुम नहीं, उसी में कुछ गड़बड़ है। यही एक तरीका है–तुम अपने आप को यह सिद्ध करके दिखा दो कि वह गलत है। और बुद्ध में तो तुम एक नहीं हजार ऐसी बातें पाओगे जो गलत दिखाई दे सकती हैं। क्योंकि तुम ही भेंगे हो, और तुम ही अंधे हो, और तुम्हारे मन ही तूफान उठा है। तुम किसी भी चीज का प्रक्षेपण कर सकते हो।

अब इस व्यक्ति ने बुद्धत्व प्राप्त कर लिया है और लोग हैं कि निम्न जाति की स्त्री की बातें कर रहे हैं। उन्होने उस स्त्री की वास्तविकता में जरा भी नहीं झांका है। वे बस एक ही बात सोच रहे हैं, कि वह एक तीर

बनाने वाली स्त्री है। इसलिए निम्न जाति की है, शूद्र है, अछूत है। एक ब्राह्मण भला अछूत स्त्री को छू कैसे सकता है? एक ब्राह्मण वहां रह कैसे सकता है?

और उन्होंने यह भी सुन रखा है कि वह स्त्री सरहा के लिए खाना पकाती है। यह तो बड़ा भारी पाप हो गया; यह तो भ्रष्टता हो गई–एक ब्राह्मण और शूद्र के द्वारा पकाया हुआ खाना खाए, एक अछूत के द्वारा, एक निम्न जाति की स्त्री के द्वारा? और एक ब्राह्मण को श्मशान में रहने की क्या जरूरत है? ब्राह्मण श्मशान में कभी नहीं रहतें। वे तो मंदिरों में रहते हैं, राजमहलों में रहते हैं। श्मशान में क्यों? ऐसी गंदी जगह जहां चारों और खोपड़ियां और लाशें बिखरी पड़ी हो। यह तो निरी विकृति है।

लेकिन उन्होंने इस तथ्य की और कभी नहीं देखा कि जब तक तुम मृत्यु को नहीं जानते तब तक जीवन को भी नहीं जान पाओगे। अगर तुमने मृत्यु को उसकी गहराई में न देख लिया हो और पाया हो कि जीवन कभी नहीं मरता, अगर तुमने देखा हो, मृत्यु में गहरे प्रवेश किया हो यह पाया हो कि जीवन तो मृत्यु के बाद भी जारी रहता है, कि मृत्यु से कोई फर्क नहीं पड़ता, कि मृत्यु तो असार है....तुम्हें जीवन के बारे में कुछ भी पता नहीं–जीवन सनातन है, समयातित है। तो केवल शरीर मरता है, जो मरा हुआ है, वही मरता है। जो जीवंत है वह जारी रहता है। लेकिन यह जानने के लिए गहरे प्रयोग करने होंगे। वह इस बात की और ध्यान नहीं देंगे।

अब उन्होंने सुन रखा था कि सरहा तो बड़े विचित्र ढंग का व्यवहार करते हैं, और फिर उन्होंने कई तरह की बढ़ा-चढ़ा कर बातें की होंगी, निश्चय ही बात उनके बस के बाहर की हो गई होगी। हर आदमी बात को बढ़ा-चढ़ा कर करता है। और तंत्र में तो ऐसे कई प्रयोग हैं जिनको लेकर उलटी-सीधी बातें उड़ाई जा सकती हैं।

तंत्र में एक प्रयोग होता है जिसमें पुरुष स्त्री के सामने बैठता है, नग्न स्त्री के सामने, और वह उस स्त्री के अंग-प्रत्यंग को इतनी गहराई से देखता है कि एक दिन उसकी नग्न स्त्री को देखाने की इच्छा ही विसर्जित हो जाती है। तब वह आदमी रूप से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। अब यह एक बड़ी भारी प्रक्रिया है, वरना तुम तो हरदम अपने मन में नग्न स्त्री को देखते रहते हो। एक स्त्री सड़क से गुजरी कि तुम उसके कपड़े उतार लेना चाहते हो–यह होता है।

अब तुम एकाएक सरहा को एक नग्न स्त्री के साने बैठे हुए देखो तो क्या व्याख्या करोगे? तुम खुद जैसे हो वैसी व्याख्या करोगे। तुम कहोगे, 'ठीक है, जो हम करना चाहते थे, वह कर रहा है, तो हम तो उससे बेहतर हैं, कम से कम हम वैसा कर तो नहीं रहे हैं। हां, हम कल्पना जरूर कर लेते हैं, विचारों में, लेकिन क्रिया में वैसा कभी नहीं करते। यह तो भ्रष्ट हो चुका है।' और यह कहने का मौका तुम कभी नहीं चूकोगे।

लेकिन, असल में सरहा कर क्या रहे हैं? वे जो कर रहे हैं वह एक गुप्त विज्ञान है। तांत्रिक महीनों तक स्त्री को देखता है, उसके शरीर के रूप का ध्यान करता है, उसके सौंदर्य का ध्यान करता है। वह स्त्री के अंग-अंग को देखता है, जो भी देखाना चाहे। अगर स्तनों में कुछ आकर्षण है, तो वह स्तन देखेगा, उन पर ध्यान करेगा। वह रूप से मुक्त होना चाहता है, और रूप से मुक्त होने का एक मात्र तरीका यही है कि उसे इतनी गहराई से जान लेना कि फिर उसके प्रति कोई आकर्षण ही न बचे।

अब यह हवा उड़ाने वाले जो कह रहे हैं, उसके कुछ विपरीत ही यहां हो रहा है। सरहा तो परे जा रहे हैं, अब वे कभी भी किसी स्त्री के कपड़े उतारना नहीं चाहेंगे–मन तक में नहीं, स्नान तक में नहीं। अब वे दमित भाव से ग्रसित कभी नहीं रहेंगे। लेकिन भीड़, भीड़ की अपनी ही धारणाएं हैं। अज्ञानी, बेहोशी में पड़े हुए, तरह-तरह की बातें किए चले जाते हैं।

सहजता से परिव्याप्त सभी, निकट वह सभी के,
पर रहती सदा परे मोहग्रस्त के लिए।

सरिताएं हो अनेक, यद्यपि,

सागर मे मिल होती है एक,

हों झूठ अनेक परंतु

होगा सत्य एक, विजयी सभी पर।

मिटेगा अंधकार, कितना ही हो गहन,

उदित होने पर एक ही सूर्य के।

और सरहा कह रहे हैं, जरा मेरी और देखो–सूरज उग गया है। मैं जानता हूं, अंधकार कितना ही गहरा क्यों न हो, एक दिन तो वह मिटेगा। देखो मेरी और...मुझसे सत्‌य का उदय हुआ है! इसलिए तुम्हारे पास मेरे बारे में भले ही अनेक झूठ हों, लेकिन सत्य एक साथ उन सब पर विजयी होकर रहेगा।

सरिताएं हो अनेक, यद्यपि,

सागर में मिल होती है एक, जरा मेरे नजदीक आओ। जरा तुम्हारी सरिता को मेरे सागर में गिर जाने दो, और तुम्हें मेरा स्वाद मिल जाएगा।

हो झूठ अनेक परंतु

होगा सत्य एक विजयी सभी पर।

सत्य एक है। झूठ ही अनेक होते हैं, झूठ हो ही अनेक सकते हैं–सत्य अनेक नहीं हो सकते। स्वास्थ्य एक है: बीमारियां कई हैं। और अकेला स्वास्थ्य सभी बीमारियों को जीत लेता है। और अकेला सत्य सभी झूठों पर विजय पा लेते हैं। मिटेगा अंधकार, कितना ही गहन,

उदित होने पर एक ही सूर्य के।

इन चार सूत्रों में सरहा के राजा को उनके अंतर्तम में प्रवेश करने का आमंत्रण दे दिया है, उन्होंने अपना हृदय खोल दिया है। और वे कहते हैं: 'मैं' यहां कोई तुम्हें तर्क के आधार पर मनवाने के लिए नहीं हूं। मैं तो यहां तुम्हें अस्तित्वगत रूप में विश्वास दिलाने के लिए हूं! ने मैं तुम्हें कोई प्रमाण दूंगा, और न ही मैं तुम्हें अपनी सफाई मैं कुछ कहूंगा। मेरा हृदय खुला है–तुम अंदर प्रवेश करो, तुम भीतर आओ। तुम देखो क्या घटित हुआ है ....सहजता कितनी निकट है, परमात्मा कितना निकट है, सत्य कितना निकट है। सूरज उग चुका है। अपनी आंखें खोलो!

समरण रहे बुद्ध के पास कोई प्रमाण नहीं होता। बात ही ऐसी है कि उसके पास कोई प्रमाण ही नहीं हो सकता। वह स्वयः एक प्रमाण है–इसलिए वह अपना हृदय तुम्हारे सामने खोल सकते हैं।

ये पद, सरहा के ये गीत गहन ध्यान करने योग्य हैं। प्रत्येक गीत तुम्हारे हृदय में एक फूल खिला सकता है। जिस तरह राजा के अंतर्तम में खिलें। इस बात की मैं आशा रखता हूं। राजा मुक्त हुआ–तुम भी हो सकते हो। सरहा ने तो लक्ष्य भेद लिया। तुम भी सरहा बन सकते हो–वह जिसका तीर लग चुका है।

आज इतना ही

दूसरा प्रवचन

हंस बाहर है

(दिनांक 22 अप्रैल 1977 ओशो आश्रम पूना।)

प्रश्नचर्या-

पहला प्रश्न: ओशो, शिव का मार्ग भाव का है, हृदय का है। भाव को रूपांतरित करना है। प्रेम को रूपांतरित करना है ताकि यह प्रार्थना हो जाए। शिव के मार्ग में तो भक्त और मूर्ति रहते हैं, भक्त और भगवान रहते हैं। आत्यंतिक शिखर पर वे दोनों एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं। इसे ध्यान से सुन लो: जब शिव का तंत्र अपने आत्यंतिक आवेग में पहुंचता है, 'मैं' 'तू' में विलीन हो जाता है, और 'तू- मैं' में विलीन हो जाता है–वे साथ-साथ होते हैं, वे एक इकाई हो जाते हैं।

जब सरहा का तंत्र अपने आत्यंतिक शिखर पर पहुंचता है, तब यह पता चलता है: न तुम हो, न तुम सत्य हो, न तुम्हारा अस्तित्व है, न तुम सही हो, न तुम्हारा अस्तित्व है, और न ही मेरा, दोनों ही वहां विलीन हो जाते हैं। दो शून्य मिलते हैं–मैं नही, तू नहीं, न तू न मैं। दो शून्य, दो रिक्त आकाश एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं, क्योंकि सरहा के मार्ग पर सारा प्रयास यही है, कि विचार को कैसे विलीन किया जाए, और मैं और तू दोनों विचार के ही अंग हैं।

जब विचार पूर्णतः विलीन हो जाए, तुम स्वयं को 'मैं' कैसे कह सकते हो? और किसे तुम अपना ईश्वर कहोगे? ईश्वर विचार का अंग है, यह एक चिर-निर्मित, विचार-सृजित, मन-सृजित बात है। अतः समस्त मन-सृजन विलीन हो जाते हैं, और केवल शून्य रिक्तता उत्पन्न होती है।

शिव के मार्ग पर, अब तुम रूप को प्रेम नही करते, अब तुम व्यक्ति को प्रेम नहीं करते–तुम समस्त अस्तित्व को प्रेम करने लग जाते हों। संपूर्ण अस्तित्व तुम्हारा 'तू' हो जाता है; तुम संपूर्ण अस्तित्व को संबोधित होते हो। मालकियत खो जाती है, ईर्ष्या गिर जाती है, घृणा मिट जाती है–भाव में जो-जो भी नकारात्मक होता है वह छूट जाता है। और भाव शुद्ध-विशुद्ध होता चला जाता है। एक क्षण आता है जब विशुद्ध प्रेम ही वहां बचता है। विशुद्ध प्रेम के उस क्षण में, तुम 'तू' में विलीन हो जाते हो और 'तू' तुम में विलीन हो जाता है। विलीन तुम भी होते हो पर तुम दो शून्यों की भांति विलीन नहीं होते, तुम ऐसे विलीन होते हो जैसे प्रेमिका प्रेमी में विलीन हो जाती है, और प्रेमी प्रमिका में विलीन हो जाता है।

इस बिंदु तक वे भिन्न हैं, परंतु यह भी रूप की ही भिन्नता है। इसके पार फिर इस बात से क्या अंतर पड़ता है कि एक प्रेमी और एक प्रेमिका की भांति विलीन होते हो या दो शून्यों की भांति? मूलभूत बात, आधारभूत बात तो यह है कि तुम विलीन हो जाते हो, कि कुछ बचता ही नही, कि पीछे कोई चिंह तक नही छूटता। वह विलिनता ही संबोधि है।

अतः यह बात तुम्हें समझ लेनी हैं: यदि प्रेम तुम्हें आकर्षित करता है, शिव तुम्हें जचेंगे, और रहस्यों की पुस्तक (दि बुक ऑफ सीक्रेट) तुम्हारी बाइबिल होगी। यदि ध्यान तुम्हें आकर्षित करता है, तब सरहा तुम्हें जचेंगे। यह तुम पर निर्भर करता है। दोनों सही हैं, दोनों उसी यात्रा पर जा रहे हैं। तुम किसके साथ यात्रा करना पसंद करोगे, यह तुम्हारा चुनाव है।

यदि तुम अकेले रह सको और आनंदित रह सको, तब सरहा; यदि तुम आनंदित न रह सको, जब कि तुम अकेले हो, और तुम्हारा आनंद केवल तभी आता हो जब तुम संबंधित होते हो, तब शिव। हिंदू-तंत्र ओर बौद्ध-तंत्र में बस वही अंतर है।

दूसरा प्रश्न: ओशो, आप जो कुछ भी कहते हैं, मैं सदा उसके साथ राजी हो जाता हूं। फिर मेरा जीवन क्यों नहीं बदल रहा?

शायद इसी राजीपन के कारण। यदि तुम मुझसे राजी होते हो, या तुम मुझसे राजी नहीं होते, तुम्हारा जीवन बदलेगा नहीं। यह राजी होने या न होने का प्रश्न नहीं है–यह प्रश्न है समझ का। और समझ राजी होने न होने दोनों के पार है।

साधारणतः जब तुम मुझसे राजी होते हो, तुम सोचते हो कि तुमने मुझे समझ लिया। यदि तुमने मुझे समझ ही लिया तो राजी होने न होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठेगा। कैसे तुम सत्य के साथ राजी हो सकते हो? या राजी नहीं हो सकते हो? सूरज उगा है–क्या तुम राजी होते हो या राजी नहीं होते? तुम कहोगे कि यह प्रश्न ही असंगत है।

राजी होना, न होना सिद्धांतों के विषय में है, सत्य के विषय में नहीं। इसलिए जब तुम मुझसे राजी होते हो तुम वस्तुतः मुझसे राजी नहीं होते, तुम यह महसूस करने लग जाते हो कि मैं तुम्हारे सिद्धांत से, जिसे तुम सदा अपने साथ लिए फिरते हो, राजी हूं। जब कभी भी तुम्हें लगता है कि ओशो तुमसे राजी है, तुम यह महसूस करने लग जाते हो कि तुम ओशो से राजी हो। जब कभी भी मैं तुमसे राजी नहीं होता, समस्या उठ खड़ी होती है, तब तुम मुझसे राजी नही होते। या फिर तुम उस पर कान ही नहीं देते, तुम उसे सुनते ही नहीं। जब मैं कोई ऐसी बात कह रहा होता हूं जो तुमसे मेल नहीं खाती, तुम बस अपनी को बंद कर लेते हो।

राजी होने न होने का प्रश्न ही नहीं है। इसे छोड़ो! मैं यहां धर्म परिवर्तकों की तलाश में नहीं हूं, मैं कोई दर्शन प्रतिपादित नहीं कर रहा हूं, मैं कोई अध्यात्मवाद प्रस्तुत नहीं कर रहा हूं; मैं अनुयायी नहीं खोज रहा हूं। मैं शिष्य खोज रहा हूं–और यह एक बिलकुल दूसरी ही बात है, एक पूर्णतः भिन्न बात। शिष्य वह नहीं जो राजी होता है, शिष्य वह है जो सुनता है, जो सीखता है। शिष्य शब्द सीखने से नहीं, अनुशासन से आता है।

शिष्य वह है जो सीखने के प्रति खुला है। अनुयायी बंद होता है। अनुयायी सोचता है कि वह तो राजी हो ही चुका है; अब कुछ नहीं बचा है और नहीं अब खुले रहने की आवश्यकता है–वह बंद हो सकता है, वह बंद होना सहन कर सकता है। शिष्य के लिए बंद हो जाना संभव नहीं, अभी तो बहुत कुछ सिखाने को बाकी है। कैसे तुम राजी या न राजी हो सकते हो? और शिष्य के पास अहंकार ही नहीं होता, अतः कौन राजी होगा और कौन राजी नहीं होगा। शिष्य तो मात्र एक अनकाश है–वहां राजी होने या न होने के लिए कोई भीतर है ही नहीं। तुम्हारा राजी हो जाना ही तो कठिनाई निर्मित कर रहा है।

और राजीपन से कभी कोई रूपांतरित नहीं होता। राजीपन तो बहुत सतही, बहत बौद्धिक बात है। रूपांतरण के लिए तो आवश्यकता होती है समझ की। यह सदा समझ ही है जो बदलती है, रूपांतरित करती है। और जब तुम समझ जाते हो, तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता-समझ ही काम करना प्रारंभ कर देती है। ऐसा नहीं कि पहले तुम समझते हो, फिर तुम अभ्यास करते हो-न! यह समझ ही, समझ का यह तथ्य ही तुम्हारे हृदय में गहरा जाता है। वहीं पैठ जाता है, और रूपांतरण घटित हो जाता है।

रूपांतरण तो समझ का परिणाम है।

यदि तुम राजी होते हो, तब समस्या उठ खड़ी होती है: अब क्या किया जाए? मैं राजी तो हो गया हूं, अब तो कुछ अभ्यास किया जाना चाहिए। राजी होना बहुत मूढ़तापूर्ण जितना राजी न होना।

और फिर मन बहुत चालाक है। तुम कभी नहीं जानते कि राजी होने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है...।

कुछ दृश्य-

पहला दृश्य:

उस लड़के की मां की मृत्यु हो गयी थी जब वह एक शिशु ही था, और उसके पिता को उसे भलीभांति पालने में बड़ी मेहनत करनी पड़ी थी। आखिरकार वह लड़का कॉलेज गया। उसके पहले पत्र को पढ़ कर उसके पिता को बड़ी निराशा हुई। निराशा तो हुई, पर बेचारे बूढ़े को पता नहीं चल पा रहा था कि क्यों। निश्चय ही पत्र में जो बातें उसने लिखी थीं उनमें निराशा वाली बात नहीं थी। शायद उस पत्र के ढंग में कोई ऐसी बात थी जो उसे परेशान कर रही थी।

पत्र ऐसे था:

'प्यारे पापा,

यहां सब-कुछ ठीक-ठाक है। मुझे कॉलेज पसंद आ रहा है। मैं फुटबॉल टीम में हूं। मैं कॉलेज का सर्वश्रेष्ठ छात्र हूं। मुझे बीज-गणित में 'ए' ग्रेड मिला है...'

कुछ सोच-विचार के बाद पिता की समझ में आ गया कि समस्या क्या थी। उसने पत्र के उत्तर में लिखा:

'देखो बेटा, मैं एक बुड्ढे खूसट कि तरह व्यवहार नहीं करना चाहता, पर एक बात से मैं बड़ा प्रसन्न हो जाऊंगा। मैं यह तो जरा भी नहीं सोचता कि तुम किसी भी तरह से कृतघ्न हो। परंतु तुम्हें बड़ा करने में और फिर कॉलेज भेजने में मुझे बड़ा परिश्रम करना पड़ा है, और मुझे स्वयं तो कभी कॉलेज जाने का अवसर मिला ही नहीं। मेरा मतलब यह है कि यह मुझे बहुत अच्छा लगेगा यदि तुम ऐसा कहो कि 'हमने यह किया, हमने वह किया' बजाय इसके कि 'मैंने यह किया, मैंने वह किया।' इससे मुझे ऐसा महसूस होगा जैसे कि मेरा भी इस सबमें कुछ योगदान है।

लड़का तुरंत समझ गया और फिर उसके पत्र इस भांति आने लगे: 'हां, पापा, शनिवार को वह बड़ा मैच हमने जीता। एक खूबसूरत लड़की के साथ हमारी 'डेट' है। हमें इतिहास में 'ए' ग्रेड मिलने वाले हैं।' बूढ़े पिता को इस साझा अनुभव में बड़ा मजा आने लगा। दिन उसके लिए सुनहरे हो गए थे। एक दिन एक तार आया: 'प्यारे पापा, हमने कुलपति की बेटी को मुसीबत में डाल दिया। उसके जुड़वां बच्चे हुए हैं। मेरे वाला तो मर गया। अपने वाले का अब आप क्या करने जा रहे हैं?'

मन बड़ा चलाक है। देखो...जब तुम मुझसे राजी होते हो, क्या तुम सचमुच मुझसे राजी होते हो? या कि तुम पाते हो कि मैं तुमसे राजी होता हूंं? और फिर मन बड़ा कानूनी है, मन एक वकील है: वह राजी होने के उपाय भी खोज लेता है और फिर भी वही रहता चला जाता है। इतना ही नहीं, जब तुम राजी होते हो तुम यह महसूस करने लग जाते हो कि अब तुम्हें रूपांतरित करना तो ओशो का कर्तव्य है—और इससे अधिक तुम क्या कर सकते हो? तुम तो राजी हो रहे हो, तुमने तो अपना भाग पूरा कर लिया। अब और अधिक तुम क्या कर सकते हों? तुम राजी हो गए, तुम तो संन्यासी हो गए, तुमने तो आत्मसमर्पण कर दिया? अब इससे ज्यादा तुम और क्या कर सकते हो?

अब, यदि कुछ भी न घट रहा हो तो तुम मुझ पर क्रोधित होना शुरू कर देते हो। तब यदि मैं तुमसे कोई बात कहता हूं, यह ठीक वही बात नहीं होती जो तुम सुनते हो। तुम अपने ही ढंग से सुनते हो। तुम अपनी समस्त व्याख्याओं के साथ सुनते हो। तुम सुनते हो अपने अतीत के माध्यम से, अपनी स्मृतियों के माध्यम से, ज्ञान के माध्यम से, संस्कारों के माध्यम से। तुम मन के माध्यम से सुनते हो। और मन हर उस चीज को, जिसे तुम सुनते हो, एक रंग दे देता है। यह तुरंत उस पर कूद पड़ता है, उसे बदल देता है, इसे तुमसे मेल खाता हुआ

बना देता है, अंतरालों को भर देता हैं। जो मैंने कहा है: उसका एक छोटा सा भाग ही इसमें रहता है–और एक भाग रूपांतरित नहीं कर सकता, केवल पूर्ण ही रूपांतरित कर सकता है।

परंतु पूर्ण केवल तभी पूर्ण रह सकता है जब तुम इसके साथ राजी होने या न होने का कोई प्रयत्न नहीं कर रहे होते हो। जब तुम राजी होने या न होने कोई प्रयत्न नहीं कर रहे होते, तुम मन को उठा कर अलग रखा सकते हो। यदि तुम राजी होने का प्रयत्न कर रहे होते हो, तुम मन को उठा कर अलग कैसे रख सकते हो? यह मन ही तो है जो राजी होता है या राजी नहीं होता।

समझ मन से बड़ी चीज है। समझ तुम्हारे समस्त अस्तित्व में घटती है। यह तुम्हारे सिर में उतनी ही होती है, जितनी तुम्हारे पैर के पंजे में। समझ एक सम्पूर्ण चीज है। मन एक बहुत छोटा भाग है, परंतु बड़ा तानाशाही। और यह यही दिखावा करता रहता है कि वही संपूर्ण है।

दूसरा दृश्य:

वह मध्य आयु वर्ग का एक व्यवसायी था जो अपनी पत्नी को पेरिस ले गया था। उसके साथा एक दुकान से दूसरी दुकान तक भटकते रहने के बाद उसने एक दिन की छुट्टी और मांगी जो उसे मिल भी गई। पत्नी के फिर से बाजार चले जाने के बाद, वह एक बार फिर से अकेला बाजार में चला गया, जहां उसे एक मदमाती पेरिस की लड़की से उसकी मुलाकात हुई। जब तक पैसों का सवाल नहीं उठा, उन में पटती रही। वह पचास अमरीकन डालर चाहती थी जब कि वह दस ही देने को तैयार था। कीमत के ऊपर उनमें समझौता न हो सका अतः उनका साथ भी न बन सका।

उसी श्याम वह अपनी पत्नी को एक अच्छे रेस्ट्रोरेंट में ले गया, लेकिन तभी द्वार के पास वही दोपहर वाली लड़की उसे एक मेज के पास बैठी दिखाई पड़ी। जैसे ही वे उसकी मेज के पास से गुजरे, उस लड़की ने कहा: ‘देखा श्रीमान जी, आपके बेहूदे दस डालर के बदले में आप को क्या हासिल हुआ।’

तुम्हारी समझ तुम्हारी ही समझ है। तुम्हारी व्याख्या तुम्हारी ही व्याख्या है। तुम अपनी दृष्टि से ही तो देख सकते हो।

जो कुछ भी तुम सुनते हो वह तुम्हारी व्याख्या है, यह स्मरण रखना–इसके प्रति सावधान रहना। यह वह नहीं है जो मैंने कहा है: यह वह है, जो तुम सोचते हो कि तुमने सुना, और वह एक ही बात नहीं है। तुम अपनी ही प्रतिध्वनि से राजी होते हो, तुम मुझसे राजी नहीं होते। तुम अपने ही विचार से राजी होते हो। फिर तुम कैसे बदल सकते हो? विचार तुम्हारा है, राजीपन तुम्हारा है, अतः वहां बदलाहट की कोई संभावना नहीं रहती।

तुम कृपया राजी होना या राजी न होना बंद कर दो। तुम बस मेरी बात सुनो।

राजी होने की तुम्हारी विधि अपने को सुरक्षित रखने की ही तुम्हारी एक तरकीब हो सकती है, ताकि तुम्हें धक्का न पहुंचे। यह एक अवरोधक की भांति कार्य करती है। मैं कुछ कहता हूं, तुम तुरंत राजी हो जाते हो। धक्का बचा लिया जाता है। यदि तुम मुझसे राजी न हुए होते, इसका धक्का तुम्हारी जड़ों तक पहुंच गया होता। तुम भीतर तक हिल गए होते। मैं कुछ कहता हूं, तुम कहते हो, ‘हां, मैं राजी हूं’ इस राजीपन के साथ तुम बच जाते हो। अब झटका खाने की कोई भी आवश्यकता नहीं है–तुम राजी जो हो गए। यदि तुम राजी या गैर-राजी नहीं हो रहे होते...गैर-राजीपन के साथ भी वही बात है। जिस क्षण मैं कुछ कहता हूं और वहां कोई होता है जो यह कहता है, ‘मैं राजी नहीं हूं’ उसने उर्जा को काट ही दिया। अब ऊर्जा उसकी जड़ों तक नहीं जाएगी, अब यह उसे न झकझोर सकेगी।

हमने बहुत से अवरोध, बहुत सी सुरक्षाएं, अपने चारों और निर्मित कर ली है। ये सुरक्षाएं तुम्हें बदलने न देंगी। बदलने के लिए तो तुम्हें धक्का खाना होगा, बड़ा धक्का, गहरा। यह पीड़ादायक होगा, रूपांतरण तो

पीड़ादायक होगा ही। राजी होना बहुत आरामदेह है, राजी न होना भी। मैं राजी होने और राजी न होने में बहुत भेद नहीं करता, वे एक ही सिक्के के दो पहलू है।

वह वास्तविक व्यक्ति जो मेरे निकट मेरे समीप होना चाहता है, जो सच में ही मेरे संपर्क में होना चाहता है, वह बस मुझे सुनेगा-शुद्ध सुनना, एकदम शुद्ध श्रवण, बिना किसी व्याख्या के। वह अपने को तो अलग ही उठा कर रख देगा। वह मुझे अपने अंदर प्रवेश का मार्ग देगा।

तीसरा दृश्य:

अध्यापिका अपनी पहली कक्षा के बच्चों को अभी-अभी जीवन के मूलभूत तथ्यो पर बात कर चुकी थी। छोटी मेरी ने अगली पंक्ति की अपनी सीट पर से हाथ उठाया। 'क्या एक छह वर्ष का लड़का बच्चा पैदा करने में सर्मथ होता है?'

'नहीं' अध्यापिका ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, 'यह असंभव है। क्या और कोई प्रश्न पूछना चाहेगा?'

मौन! मेरी ने फिर अपना हाथ ऊंचा किया। 'क्या एक छह वर्ष की लड़की बच्चा पैदा कर सकती है?'

'नहीं' अध्यापिका ने कहा। तभी मेरी के पास बैठे उस छोटे से लड़के ने आगे झुक कर मेरी के कान में फुसफुसाया, 'देखा, मैंने कहा था न, तुम्हें चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

तुम्हारे सारे राजीपन, तुम्हारे सारे गैर-राजीपन, मात्र उपाय हैं, जैसे तुम हो वैसे ही बने रहने में, रूपांतरित न होने के। लोगों के सारे जीवन एक ही कार्य में समर्पित हैं: कैसे बदला न जाए। वे कहे चले जाते हैं, 'मैं दुखी नहीं होना चाहता', और वे वही चीजें किए चले जाते हैं जो उन्हें दुखी बनती है। वे कहे चले जाते हैं, 'मैं बदलना चाहता हूं', लेकिन जब मैं उनमें गहरे से झांकता हूं और पाता हूं कि वे बदलना ही नहीं चाहते। सच तो यह है कि इस इच्छा की अभिव्यक्ति कि वे बदलना चाहते हैं, ये मात्र एक तरकीब है न बदलने की; ताकि वे संसार से कह सकें, 'मैं बदलने की कोशिश कर रहा हूं और मैं जोर से, चिल्ला कर यह कह रहा हूं कि मैं बदलना चाहता हूं और फिर भी यदि कुछ नहीं हो रहा है तो मैं क्या कर सकता हूं?'

तुम बदल ही नहीं सकते–जो आखिरी बात इस प्रश्न के बारे में मैं कहना चाहूंगा, वह यह है–तुम बदल नहीं सकते। तुम बदलाहट को होने दे सकते हो। बदलने का प्रयत्न करने से तुम कभी न बदल पाओगे। कौन प्रयत्न कर रहा है? वही पुराना? इसके भीतर के तर्क की और जरा देखो: तुम स्वयं को बदलने की कोशिश कर रहे हो। यह लगभग ऐसा ही है जैसे तुम अपने ही जूते के फीते खींच कर स्वयं को उठाने की कोशिश करो। इससे क्या होगा? इससे कुछ संभव नहीं होगा। तुम स्वयं को बदल नहीं सकते क्योंकि यह कौन है जो बदलने का प्रयत्न कर रहा है? यह तुम्हारा अतीत है। यह तुम हो।

तुम एक परिवर्तन को घटने दे सकते हो? इसे घटने देने के लिए तुम क्या कर सकते हो? कृपया न तो मेरे साथ राजी होओ, न गैर-राजी तुम बस सुनो। तुम बस यहां होओ। तुम बस मेरी उपस्थिति को एक उत्प्रेरक की भांति कार्य करने दो। तुम बस मेरे से संक्रमित हो जाओ। तुम बस मेरी बीमारी को पकड़ लो, जो रोग मुझे है, उसे पकड़ लो। तुम बस मुझे अनुमति दो। तुम स्वयं को बदलने का प्रयास मत करो।

यह अनुमति देना ही तो बस समर्पण है।

संन्यासी वह नहीं है जो मुझ से राजी हो गया है। यदि वह मुझ से राजी हो गया है, तो वह संन्यासी नहीं है, तब वह केवल एक अनुयायी है। ठीक वैसे ही जैसे ईसाई, ईसा मसीह के अनुयायी हैं–वे ईसा मसीह से राजी हो गए हैं, मगर इस राजी होने ने उन्हें बदला नही है। जैसे बौद्ध, बुद्ध के अनुयायी हैं–वे बुद्ध के साथ राजी हो गए हैं, परंतु इससे उनमें कोई बदलाट नहीं हुआ है। क्या तुम नहीं देखते कि सारा संसार किसी न किसी का अनुयायी है?

इसलिए अनुगमन करना, बदलने से बचने का एक उपाय है। कृपया मेरा अनुगमन मत करो। तुम बस सुनो जो यहां हो रहा है, तुम बस देखो जो यहां घट रहा है। तुम बस मुझमें देखो और मुझे राह दो–ताकि मेरी ऊर्जा तुम पर कार्य करना प्रारंभ कर सके। यह कोई मन की चीज नहीं है, यह एक संपूर्ण मामला है। ताकि तुम भी उसी तरंग पर बैठ कर प्रतिकंपित होना प्रारंभ कर दो–कुछ क्षणों के लिए ही सही।

वे क्षण बदलाहट लाऐंगे, वे क्षण अज्ञात की झलक लाऐगे। वे क्षण तुम्हें इस बात के प्रति जागरूक बनाऐंगे कि समय के पार शाश्वतता है। वे क्षण तुम्हें महसूस करवाएंगे कि ध्यान में होना क्या होता है। वे क्षण तुम्हें परमात्मा का, ताओ का, तंत्र का, झेन का जरा सा स्वाद चखाऐंगे। वे क्षण बदलाहट की संभावना लाएंगे क्योंकि वे क्षण तुम्हारे अतीत से नहीं वरन तुम्हारे भविष्य से आएंगे।

राजी होने में तो यह तुम्हारा अतीत ही है जो मुझसे राजी होता है। खुलने में, अनुमति देने में, यह तुम्हारा भविष्य है जो खुलता है, मेरे साथ खुलता है। रूपांतरण की तुम्हारी संभावना तुम्हारे भविष्य में है। अतीत तो मृत है, वह जा चूका है, और समाप्त हो चुका है। इसे दफना दो! अब इसमें कोई अर्थ न रहा। इसे अपने साथ मत लिए फिरो; यह व्यर्थ का भार है। इस भार के कारण तुम बहुत ऊंचे नहीं जा सकते।

तुम्हारा तात्पर्य क्या होता है, जब तुम कहते हो कि 'मैं आपसे राजी हो जाता हूं?' इसका अर्थ है, तुम्हारे अतीत का राजी होना, तुम्हारे अतीत को अच्छा लगना, सिर हिलाना और कहना, 'हां, यहीं तो मैं सदा सोचता हूं।' यह भविष्य से बचने की एक तरकीब है। इससे सावधान रहो।

मेरे साथ मात्र होना–वही सत्संग है, वही उच्च संपर्क है। बस मेरे साथ होना...अपने बावजूद, कुछ किरणें तुम्हारे अस्तित्व मे प्रवेश करेंगी और खेलने लगेंगी। और तब तुम जानोगे कि अभी तक जो भी जीवन तुम जीते आए हो, वह जीवन था ही नहीं, कि तुम एक भ्रम में रहते चले आए हो, कि तुम एक सपना देखते रहे हो। सच्चाई की थोड़ी सी झलकें भी तुम्हारे संपूर्ण अतीत को छितरा देंगी। और तब वहां घटेगा, मात्र रूपांतरण।

यह स्वाभाविक रूप से स्वतः आता है, यह समझ के पीछे-पीछे खूद ही चला आता है।

तीसरा प्रश्न: ओशो, कभी-कभी जब मैं लोगों को बार-बार वही पुराने खेल खेलते देखती हूं, मेरी आंखें पुरानी और थकी हुई जान पड़ती है, और मेरा हृदय कलांत और कुटिल।

मैं सोचती हूं कि ऐसा शायद इसलिए है कि मैं स्वयं अपने खेल और तरकीबें अधिक और अधिक देख रही हूं, और मैं अपने कानों में आपकी पागल बना देने वाली आवाज सुनती हूं, यह कहती हुई, यह ठीक है–बस तुम्हें स्वयं को स्वीकार और प्रेम करना है, और फिर कोई समस्या नहीं बचती।

बस...?

मैं सोचती हूं कि यदि आप इस शब्द को फिर से कहेंगे तो मैं चीख पडूंगी। क्या मैं तब अधिक आनंदित नहीं थी जब मैं सोचती थी कि कोई लक्ष्य है?

यह प्रश्न मा देव आनंदो का है। यह महत्वपूर्ण है। यह प्रश्न हर उस व्यक्ति का हो सकता जो यहां मौजूद है। इसे सूनो। यह बस एक ऐसी स्थिति दर्शाता है जिससे हर साधक को गुजरना पड़ता है।

कृपया दूसरों का निरीक्षण करने का प्रयत्न मत करो–उससे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। यदि उन्होंने पुराने खेल खेलने का निर्णय लिया है, यदि वे अपने पुराने खेल खेलने से प्रसन्न हैं, यदि वे पुराने खेल खेलना चाहते हैं, तुम हस्तक्षेप करने वाली होती कौन हो? तुम निर्णय लेने वाली भी तुम कौन होती हो?

दूसरों के विषय में निर्णय लेने की यह सतत अभिलाषा छोड़नी होगी। यह दूसरों की सहायता नहीं करती। हां, तुम्हें हानि जरूर पहुंचाती है, तुम्हें क्यों चिंतित होना चाहिए? उसका तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है। यह तो दूसरों की अपनी खुशी है, यदि वे वही पुराने बने रहना चाहते है, यदि वे उसी दलदल में, उसी दिनचर्या

में बने रहना चाहते हैं। तो अच्छा है! यह उनका जीवन है और उन्हें इसे अपने ही ढंग से जीने का पूरा अधिकार है।

कुछ ऐसी बात है कि हम औरों को उनके अपने ढंग से जीने नहीं देते। किसी न किसी तरह हम निर्णय लिए चले जाते हैं। कभी हम कहते हैं वे सब पापी हैं, कभी हम कहते हैं वे नरक जाएंगे, कभी हम उन्हें अपराधी कहते है, कभी यह, कभी वह। यदि यह सब बदल गया है तो एक नया मूल्यांकन कि, वे वही पुराने खेल-खेल रहा हूं, और 'मैं थक गई हूं।' उनके खेलों से तुम्हें क्यों थकना चाहिए? यदि वे चाहें तो उन्हें अपने खेलों से थकने दो, या यदि वे न चाहे तो भी यह उनका ही चुनाव है। कृपया दूसरों को मत देखो।

तुम्हारी समस्त ऊर्जा तुम्हारे स्वयं के ऊपर केंद्रित होनी चाहिए। हो सकता है कि तुम दूसरो की, उनके पुराने खेलो के लिए निंदा मात्र एक तरकीब के रूप में कार्य कर रही हो, क्योंकि तुम स्वयं की निंदा नहीं करना चाहती। यह सदा होता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तरकीब है; हम दूसरों का प्रक्षेपित करते हैं। एक चोर सोचता है कि हर कोई चोर है–उसके लिए यह सोचना बहुत स्वभाविक है, उसके अहंकार को बचाने का यही उपाय है। यदि वह महसूस करे कि सारी दुनिया ही बुरी है, उनकी तुलना में वह अपने आप को अच्छा अनुभव करता है। एक हत्यारा सोचता है कि सारा संसार हत्यारों से भरा पड़ा है–इससे वह अच्छा ओर विश्रांति में अनुभव करता है। यह सोचना सुविधाजनक है कि सारी दुनिया हत्यारों से भरी पड़ी हैं, तब वह हत्या कर सकता है और फिर कोई अपराध-भाव अनुभव करने की उसे कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती। उसे अपनी अंतरात्मा पर कोई बोझ रखने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

इसलिए जो हम स्वयं में नहीं देखना चाहते उसे दूसरों में प्रक्षेति किए चले जाते हैं। कृपया इसे बंद करो! यदि सच में ही तुम पुराने खेलों से थक गई हो, तब यही पुरान खेल है–सबसे पुराना। कई जन्मों से तुम यह खेल खेलती आ रही हो: अपने दोष दूसरों के ऊपर प्रक्षेपित करना और फिर अच्छा महसूस करना। और निश्चय ही, तुम्हें बढ़ा-चढ़ा कर देखना होगा, तुम्हें अतिशयोक्ति करनी होगी। यदि तुम एक चोर हो, दूसरों की प्रतिमाओं को बड़ा करना

होगा। कि वे तुमसे भी बड़े चोर हैं। तब तुम अच्छा महसूस करते हो, तुम तो एक बेहतर इंसान हो।

यही कारण है कि लोग समाचार पत्र पढ़ते रहतें हैं। समाचार पत्र तुम्हारी बहुत मदद करते हैं। सुबह ही सुबह, तुमने अभी चाय भी नहीं पी होती है, तुम समाचार पत्र के लिए तैयार हो जाते हो। और ये समाचार पत्र समाचार जैसा कुछ भी नहीं है, कुछ नया लाता ही नहीं। वही पुरानी सड़ी-गली बातें होती हैं। मगर तुम अच्छा महसूस करते हो: कहीं, किसी कि हत्या हो गई है, कहीं किसी ने चोरी की है, कहीं किसी की पत्नी किसी के साथ भाग गई है...वगैरा-वगैरा। यह देख कर तुम विश्रांत हो जाते हो, तुम महसूस करते हो: 'तो मैं ही अकेला खराब नहीं हूं, सारी दुनियां ही बदतर है। मैं तो फिर भी बहुत अच्छा हूं। मैं अभी तक पड़ौसी की स्त्री को लेकर नहीं भागा। मैंने अभी तक किसी का खून नहीं किया–यद्यपि मैं ऐसा सोचता रहा हूं, परंतु जहा लोग सच में ऐसा कर रहे हों, वहां ऐसा सोचना तो अपराध नहीं है' तुम अच्छा महसूस करते हो। और जिस क्षण तुम अच्छा महसूस करते हो, तुम वही बने रहते हो।

कृपया दूसरों का निरीक्षण मत करो। इससे तुम्हें कोई सहायता नहीं मिलेगी। तुम अपनी ऊर्जा, अपना निरीक्षण अपने ही ऊपर प्रयोग करो।

और निरीक्षण में कुछ बड़ा रूपांतरित करने वाली बात है। यदि तुम स्वयं का निरीक्षण करने लग जाओ, एक दिन अचानक तुम पाओगे कि इसमें इतनी ऊर्जा ने रही जितनी कि पहले हुआ करती थी, इसमें अब इतनी आग नहीं है। इसमें कोई चीज मृत हो गई है। यदि तुम स्वयं का निरीक्षण करना प्रारंभ कर दो, तुम पाओगे कि

धीरे-धीरे निषेध मरता जा रहा है और घनात्मक अधिक और अधिक जीवंत होता जा रहा है, कि दुख अदृश्य होता जा रहा है, और आनंद तुम्हारे जीवन में प्रविष्ट होता जा रहा है, कि तुम अब अधिक मुस्काराने लगे हो, कभी-कभी तो बिना किसी कारण के ही, विनोद का एक भाव तुम्हारे भीतर जागने लगा है–यदि तुम देखना प्रारंभ कर दो, कि पुरानी हताशा, वह लटका लंबा चेहरा विलीन होता जा रहा है। विनोद का एक भाव पैदा हुआ है। यदि तुम निरीक्षण करना प्रारंभ कर दो, तुम जीवन को अधिकाधिक खेल की भांति लेने लग जाते हो, गंभीरता असंगत, अधिक असंगत होती चली जाती है। तुम अधिक से अधिक निर्दोष, श्रध्दावान होते जा रहे हो, कम और कम संदेहशील होते जाते हो।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हारे भरोसे का सदा सम्मान किया जाएगा। नहीं, वह बात ही नहीं है। तुम्हें शायद ज्यादा धोखा दिया जाए क्योंकि जब ही तुम अधिक भरोसा करते हो, इसी कारण तुम्हें अधिक धोखा दिया जा सकता है। परंतु यदि तुम्हें धोखा भी दिया जाए, तुम्हारा भरोसा उससे खंडित नहीं होगा–सच तो यह है कि यह और भी अधिक बढ़ सकता है। तुम यह सोचने लगोगे कि यदि तुम्हें धोखा दे भी दिया, किसी ने तुमसे धोखा किया और कुछ धन ले भी लिया–तुम यह देख सकोगे कि तुमने एक मूल्यवान चीज को तो बचा लिया है। वह है भरोसा और एक लगभग मूल्यहीन चीज चली गई है, वह है धन। तुम धन को बचा ले सकते थे और भरोसा चला गया होता–यह कहीं बड़ा नुकसान हुआ होता क्योंकि मात्र धन के कारण कभी कोई आनंदित होता नहीं पाया गया है। लेकिन भरोसे की वजह से लोग पृथ्वी पर देवताओं की भांति रहे हैं। भरोसे के कारण लोगों ने जीवन का इतना पूर्ण आनंद लिया है, वे ईश्वर के प्रति कृतज्ञ हो सके। भरोसा एक आशीर्वाद है। धन अधिक से अधिक तुम्हें थोड़ा सा सुख दे सकता है, उत्सव नहीं। भरोसा तुम्हें अधिक सुख नहीं दे सकता परंतु वह तुम्हें महान उत्सव प्रदान कर सकता है।

अब, उत्सव की अपेक्षा सुख चुनना मात्र मूढ़ता है–कयोंकि वह सुखद जीवन और कुछ नहीं बस एक सुखद मौत होगा। सुविधापूर्वक तुम जी सकते हो और सुविधापूर्वक तुम मर भी सकते हो, परंतु जीवन का सच्चा स्वाद तभी संभव है, जब कि तुम अधिकतम संभव उत्सव, ज्यादा से ज्यादा उत्सव मना रहे हो, जबकि तुम्हारी मशाल एक साथ दोनों सिरों पर जली रही हो। शायद एक ही क्षण के लिए...परंतु इसकी तीव्रता, इसकी पूर्णता, इसकी समस्तता! और यह मात्र निरीक्षण से ही घटता है।

निरीक्षण रूपांतरण की महानतम शक्तियों में से एक है। तुम स्वयं का निरीक्षण करना प्रारंभ करो। अपनी ऊर्जा को दूसरों को निरीक्षण करने में व्यर्थ मत करो–यह सिर्फ बर्बादी है। और कोई कभी तुम्हें इसके लिए धन्यवाद न देगा, यह एक नाशुक्रा काम है। और जिस किसी का भी तुम निरीक्षण करोगे, वह क्रोधि अनुभव करेगा–क्योंकि निरीक्षण किया जाना कोई भी पसंद नहीं करता, हर व्यक्ति अपना जीवन निजी रखना चाहता है। अच्छा हो या बुरा, मूढ़तापूर्ण हो या बुद्धिमत्त पूर्ण हर कोई अपना स्वयं का निजी जीवन चाहता है। और हस्तक्षेप करने वाले तुम कौन होते हो? इसलिए चोरी-चोरी दूसरों के जीवन में झांकने वाले मत बनो, लोगों की चाबियों के छेदों से मत झांको, उन्हें मत देखो। यह उनकी जिंदगी है। यदि वे ऐसा चाहते है, और वो वही पुराना खेल खेलते रहना चाहते है, तो उन्हें खेलने दो।

इसलिए पहली बात: कृपया दूसरों को देखना बंद करो, सारी ऊर्जा को स्वयं की और मोड़ो।

दूसरी बात तुम कहती हो: 'मैं सोचती हूं कि ऐसा शायद इसलिए है कि मैं स्वयं अपने खेल और तरकीबें अधिक और अधिक देख रही हूं, और मैं अपने कानों में आपकी पगल बना देने वाली आवाज सुनती हूं, यह कहती हुई कि यह ठीक है–बस तुम्हें स्वयं को स्वीकार और प्रेम करना है, और फिर कोई समस्या नहीं बचती।'

मैं इसे दोहरा दूं: कोई समस्या नहीं है। मैं किसी सच्ची समस्या के संपर्क में नहीं आया हूं–अभी तक तो नहीं। और मैंने हजारों लोगों को, उनकी समस्याओं को सुना होगा। मुझे अभी तक तो किसी सच्ची समस्या से सामना हुआ नहीं है। और मैं नहीं सोचता कि ऐसा कभी हो भी सकेगा–क्योंकि सच्ची समस्या का आस्तित्व होता ही नहीं। समस्या एक निर्मित चीज है। स्थितियां होती है समस्याएं नहीं। समस्याएं तो तुम्हारी परिस्थितियों की ही व्याख्याएं है। वही परस्थिति किसी एक व्यक्ति के लिए समस्या नहीं होती, जबकि किसी दूसरे व्यक्ति के लिए वह समस्या हो सकती है।

अतः यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम कोई समस्या निर्मित करते हो अथवा नहीं–लेकिन समस्या जैसी कोई चीज होती ही नहीं। समस्याएं आस्तित्व में नहीं होती, वे आदमी के मन में होती है।

जरा देखो जब अगली बार तुम्हें कोई परेशानी हो या किसी समस्या का सामना करना पड़े–बस उसे देखना। एक तरफ खड़े हो जाना और बस समस्या को देखाना। क्या यह सचमुच वहां है? या कि तुमने ही इसे निर्मित किया है? इसमें गहराई से देखो और अचानक तुम पाओगे कि यह बढ़ नहीं रही, यह घट रही है, यह छोटी और छोटी होती चली जाती है। और एक क्षण आता है, जब वह अचानक वहां होती ही नहीं...और तब तुम्हें अपने पर बड़े जोर की हंसी आती है।

जब कभी भी तुम्हारी कोई समस्या हो, इसे बस गौर से देखो। समस्याएं कल्पलाएं होती है, उनका कोई आस्तित्व ही नहीं होता। समस्या के चारों और घूमों, इसे हर कोण से देखो, यह हो कैसे सकती है? यह तो एक प्रेत है! तुम इसे चाहते थे, तभी तो यह आई है। तुमने इसे चाहा, तभी तो यह है, तुमने इसे खूद आमंत्रित किया है, तभी तो यह आई है।

परंतु लोग यह पसंद नहीं करते यदि तुम उनसे कहो कि उनकी समस्या-समस्या नहीं है–वे इसे पसंद नहीं करते। उन्हें बड़ा सुन कर बड़ा खराब लगता है। यदि तुम उनकी समस्याओं को सुनो, उन्हें बड़ा अच्छा लगता है। और यदि तुम कहो, 'हां, यह तो एक बड़ी समस्या है' तब वे बड़े प्रसन्न होते हैं। यही कारण है कि मनोविश्लेषण इस सदी की सबसे महत्वपूर्ण जरूरतों में एक हो गया हैं।

मनोविश्लेषक किसी की सहायता नहीं कर पाता–शायद वह अपनी खुद की सहायता नहीं कर पाता, फिर किसी और कि सहायता कैसे कर सकता है। वह कर नहीं सकता। परंतु फिर भी लोग चले जाते है, उसे पैसे देते है। उन्हें मजा आता है–वह उनकी समस्याओं को स्वीकार करता है, तुम कोई भी निरर्थक समस्या मनोविश्लेषक के पास ले जाओ, वह बड़ी ईमानदारी से, बड़ी गंभीरता से उसे सुनता है। जैसे कि वह समस्या बहुत बड़ी है। वह यह मान कर ही चलता है कि तुम बहुत अधिक पीड़ा में जी रहे हो, और वह इस पर काम करना, इसका विश्लेषण करना प्रारंभ कर देता है। और सालों लग जाते है।

सालों के मनोविश्लेषण के बाद भी समस्या हल नहीं होती–क्योंकि अव्वल तो समस्या वहां थी ही नहीं, तो कोई इसे कैसे हल कर सकता है। लेकिन वर्षों के मनोविश्लेषण के बाद तुम थक जाते हो, और तुम पुरानी समस्या से ऊब जाते हो, अब तुम्हें कोई नई समस्या चाहिए होती है। इसलिए एक दिन अचानक तुम कहते हो, 'हां, अब समस्या नहीं रही, यह चली गई है', और तुम मनोविश्लेषक को धन्यवाद देते हो। परंतु यह मात्र समय है, जिसने तुम्हारी सहायता कि है। जिसने समस्या को हल किया है। यह मनोविश्लेषण नहीं है। मगर ऐसे लोग हैं जो बस प्रतीक्षा करना और देखना पसंद नहीं करेंगे।

जब तुम किसी पागल व्यक्ति को किसी झेन आश्रम में ले जाते हो, वे उसे बस एक कोने में, एक छोटी सी झोपड़ी में, आश्रम से दूर, बैठा देते है। वे उसे भोजन देते हैं, और उससे कहते हैं, 'बस यहीं बैठे रहो, शांत।' कोई उससे बात तक नहीं करता, उसे भोजन दिया जाता है, उसके आराम का ख्याल रखा जाता है। परंतु उसकी

चिंता कोई नहीं लेता। और मनोविश्लेषण जो काम तीन वर्ष में करता है, वे उसे तीन सप्ताह में कर देते है। तीन सप्ताह के भीतर वह व्यक्ति बाहर आता है और कहता है, 'हां, समस्या समाप्त हो गई।'

तीन सप्ताह के लिए तुम अपनी समस्या के साथ छोड़ दिए जाते हो–कैसे तुम इसे देखने से बच सकते हो? और कोई विश्लेषण नहीं किया जाता, अतः कोई विचलन नहीं होता, तुम व्याकुल नहीं होते। मनोविश्लेषक तुम्हें व्यग्र कर देता है। शायद तीन सप्ताह में वह समस्या मर गई होती, परंतु मनोविश्लेषक के सहयोग के कारण वह मरेगी नहीं; तीन वर्ष तक, या उससे भी अधिक, जीवित रहेगी। यह इस बात पर निर्भर करता है कि तुम कितने धनी हो। यदि तुम पर्याप्त धनी हो, समस्या तुम्हारे जीवन पर्यान्त बनी रह सकती है। इसका अर्थ है कि यह इस बात पर निर्भर करता है कि तुम कितना धन चुकाना सहन कर सकते हो।

निर्धन व्यक्ति अधिक समस्याओं से पीड़ित नहीं रहते। धनी व्यक्ति रहते है–उनकी इतनी हैसियत होती है। वे बड़ी समस्याओं से पीड़ित रहने के खेल का मजा ले सकते हैं। गरीब आदमी की न तो इतनी हैसियत होती है और न वह इसका मजा ले सकता है।

अगली बार जब तुम्हें कोई समस्या आए, तुम उसकी और देखो, उसको खूब गौर से देखो। किसी विश्लेषण की कोई आवश्यकता नहीं है। उसका विश्लेषण न करो, क्योंकि वश्लिेषण उससे बचने की एक विधि है। जब तुम वश्लिेषण करना प्रारंभ करते हो, तुम समस्या की और देखते नहीं। तुम पूछना प्रारंभ कर देते हो क्यों? कहां से? यह कैसे उत्पन्न हुई? तुम्हारे बचपन में तुम्हारी मां का तुमसे संबंध, तुम्हारे पिता का तुमसे संबंध। तुम विक्षिप्त हो गए। अब तुम स्वयं समस्या को नहीं देख सकते हो। फ्रायड का मनोविश्लेषण सच में तो एक मन का खेल है और बड़ी दक्षता के साथ खेला जाता है।

उसके कारणों में मत जाओ। इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि कारण कोई है ही नहीं। अतीत में मत जाओ, उसकी कोई आवश्यकता नही है, क्योंकि वह वर्तमान की समस्या से दूर जाना होगा। उसे यहां और अभी की तरह से देखो, और उस में तुम बस प्रवेश करो। उसके कारणों, उसके प्रयोजनों के विषय में मत सोचो। समस्या को बस जैसी वह है, उसे वैसे ही देखो।

और तुम हैरान होओगे कि उसको गौर से देखने से यह छिन्न-भिन्न होनी प्रारंभ हो जाती है। इसे देखते चले जाओ और तुम पाओगे कि यह चली गई।

समस्याएं होती ही नहीं। हम उन्हें निर्मित करते है–क्योंकि हम समस्याओं के बिना जी नही सकते। यही एकमात्र कारण है कि हम उन्हें निर्मित करते है। समस्या होने का अर्थ है व्यस्तता होना। आदमी अच्छा महसूस करता है, कुछ करने को तो है। जब कोई समस्या नहीं होती, तुम अकेले पड़ जाते हो, एक रिक्तता–अब क्या करें? सब समस्याएं तो समाप्त हो गई।

जरा सोचो: एक दिन परमात्मा आए और कहे, 'अब और कोई समस्या नहीं–सब खत्म! सब समस्याएं समाप्त हो गई।' फिर तुम क्या कहोगे? उस दिन के बारे में जरा सोचो। लोग एकदम ठगे से रह जाएंगे, तब वे परमात्मा से बड़े नाराज होने लगेंगे। वह कहेंगे, 'यह तो कोई आशीर्वाद नहीं है। अब हम क्या करे? समस्याएं तो हैं ही नहीं?' तब अचानक ऊर्जा कही नहीं जा रही होगी, तब तुम अटके हुए महसूस करोगे। समस्या तो तुम्हारे लिए एक उपाय है, एक गति है, चलने का, चलते रहने का, आशा का, इच्छा का, स्वप्न का। समस्या व्यस्त रहने की इतनी सारी संभावनाएं तुम्हें देती है।

और अव्यस्त होना, अव्यस्त होने के समर्थ होना ही वह चीज है जिसे में ध्यान कहता हूं: एक अव्यस्त मन, जो अव्यस्सता के एक क्षण का आनंद लेता है, वही मात्र ध्यानपूर्ण मन है।

कुछ अव्यस्त क्षणों को आनंद लेना प्रारंभ करो। यदि समस्या वहां नहीं भी हो–तो तुम महसूस करते हो कि समस्या वहां है, मैं कहता हूं कि वहां नहीं है। पर तुम महसूस करते हो कि है–समस्या को उठा कर एक और रख दो, और उससे कहो, 'रूको! जीवन अभी है, अभी तो सारी जिंदगी बाकी पड़ी है। मैं तुम्हें हल करुंगा जरूर, परंतु अभी तो मुझे थोड़ा सा अवकाश लने दो, जिसमें कि कोई समस्या न हो।' कुछ ऐसे पल निकालना प्रारंभ करो जो व्यस्त न हों, और एक बार तुम उनका आनंद उठा लो तब तुम यह तथ्य देख सकोगे कि समस्याएं तुम्हारे द्वारा ही निर्मित की जाती है, क्योंकि तुम अव्यस्त क्षणों का आनंद लेने में अभी समर्थ नहीं हो। समस्याएं उस अंतराल को भर देती है।

क्या तुमने कभी स्वयं को कभी देखा है? एक कमरे में बैठे हु, यदि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, तुम्हें एक बैचेनी होने लगती है। तुम परेशान हो जाते हो। तुम अधीर होने लग जाते हो–तुम रेडियो चलाओगे, या तुम टी वी देखने लग जाओगे, या तुम उसी समाचार-पत्र को दुबारा पढ़ने लगोगे, जिसे तुम सुबह से तीन बार पढ़ चुके हो। या अगर एक ही उपाय हो कि तुम सो जाओ, ताकि तुम स्वप्न निर्मित कर सको और उसमें व्यस्त हो जाओ। या फिर तुम धूम्रपान करना प्रारंभ कर दोगे। क्या तुमने कभी यह देखा है? जब कभी भी तुम्हारे पास करने के लिए कोई काम नही होता, होना मात्र कितना कठिन हो जाता है।

मैं फिर से कहूंगा: समस्या कोई नहीं है, आनंदो। इस तथ्य को ठीक से देख लो कि जीवन में कोई समस्या नहीं है। यदि तुम समस्या रखना ही चाहती हो, तब यह तुम्हारी खुशी है–तुम इसका मजा लो, मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं। परंतु सत्य यही है कि कोई समस्या है ही नहीं।

जीवन में समस्या जरा भी नहीं है–यह तो एक रहस्य है जिसे जिया जाना है, जिसका आनंद लिया जाना है। समस्याएं तुम्हारे द्वारा केवल निर्मित की जाती है, क्योंकि तुम जीवन का आनंद लेने से अभी डरते हो। समस्याएं तुम्हें एक सुरक्षा कर देती है–जीवन से, प्रेम से, आनंद से। तुम स्वयं से कह सकते हो, 'मैं कैसे आनंद उठा सकता हूं? मेरी इतनी समस्याएं हैं। आनंद मैं उठ कैसे सकता हूं? मेरे साथ इतनी सारी समस्याएं है। मैं कैसे किसी पुरुष या स्त्री को प्यार कर सकता हूं? मेरे पास तो पहले ही इतनी सारी समस्याएं है, मैं कैसे नाच सकता हूं, गा सकता हूं? असंभव है! तुम अधिक कारण खोज ले सकते हो, न गाने के, न नाचने के, न ही उत्सव मनाने का। तुम्हारी समस्याएं तुम्हें इन सबसे बचने का एक महान अवसर प्रदान करती हैं।

समस्याओं में जरा झांको और तुम पाओगे कि वे काल्पनिक हैं। और यदि तुम्हारे पास कोई समस्या है भी और तुम महसूस करते हो कि यह वास्तिविक है, मैं कहता हूं कि सब ठीक है। मैं क्यों ऐसा कहता हूं कि सब ठीक है? क्योंकि जिस पल तुम यह अनुभव करना प्रारंभ करते हो कि सब ठीक है, यह विलीन हो जाएगी। जिस पल तुम समस्या से कहते हो कि चलो ठीक है, तुमने उसे ऊर्जा देना बंद कर दिया। तुमने उसे स्वीकार कर लिया। जिस क्षण तुम समस्या को स्वीकार कर लेते हो, वह फिर समस्या रहती ही नहीं। एक समस्या केवल तभी तक समस्या बनी रह सकती है, जब तक तुम उसे अस्वीकार करते चले जाओ, जब तुम कहो कि ऐसा नहीं होना चाहिए...और वेसा नहीं होना चाहिए। तब समस्या शक्तिशाली बन जाती है।

यही कारण है कि मैं ऐसा कहता हूं। लोग मेरे पास अपनी बड़ी-बड़ी समस्याएं लेकर आते हैं और मैं कहता हूं, 'सब ठीक है, यह तो बहुत अच्छा है, तुम इसे स्वीकार कर लो।' और मैं कहता हूं, 'बस तुम्हें स्वयं को स्वीकार करना है और प्रेम करना है।' और आनंदो कहती है, 'यह बड़ी पागल बना देने वाली बात है, आपकी आवाज जो निरंतर कहती है, सब ठीक है...और कोई समस्या नहीं है।'

'बस...'

और आनंदो कहती है, 'मैं सोचती हूं कि यदि आप इस शब्द को फिर से कहेंगे तो मैं चीख पड़ूंगी।'

तुम अपना सारा जीवन केवल चीखती ही तो रही हो–तुम चीखती हो या नहीं, वह बात नहीं है–तुम अपना सारा जीवन चीखती ही तो रही हो। अब तक तुमने कुछ और नहीं किया है। कभी जोर से, कभी मौन रहकर, पर तुम चीखती ही रही हो। ऐसे ही तो मैं लोगों को देखता हूं–चीखते हुए लोग, उनका हृदय चीख रहा है, उनका आस्तित्व चीख रहा है। परंतु उससे तुम्हें कोई सहायता नहीं मिलेगी। तुम चीख सकती हो पर उससे कोई मदद न मिलेगी।

चीखने की अपेक्षा समझने की चेष्टा करो। मैं जो तुमसे कह रहा हूं, उसमें पूर्णता से डूबने की कोशिश करो। और मैं जो तुम्हें बता रहा हूं, वह कोई सिद्धांत नहीं है–वह एक तथ्य है। और मैं ऐसा कह रहा हूं क्योंकि मैंने उसे ऐसा ही जाना है। यदि मुझे यह घट सकता है, तो कोई भी समस्या नहीं है, कि यह तुम्हें क्यों नहीं घट सकता? इसकी चुनौती को स्वीकार करो! मैं एक उतना ही साधारण व्यक्ति हूं जितने कि तुम हो। मुझमें और तुममें एकमात्र अंतर यह है कि तुम स्वयं को 'ठीक है' नहीं कहते और मैंने स्वयं को एक सम्पूर्ण 'ठीक है' कह लिया है–यही एकमात्र अंतर है। तुम सतत अपने को सुधारने का प्रयत्न कर रहे हो और मैं स्वयं को सुधारने का प्रयत्न नहीं कर रहा हूं। मैंने कह लिया है: जीवन का ढंग अपूर्णता ही है। तुम पूर्ण बनने का प्रयत्न कर रहे हो और मैंने अपनी अपूर्णताओं को स्वीकार कर लिया है। बस इतना ही अंतर है।

इसलिए मेरे पास कोई समस्याएं नहीं है। जब तुम अपनी अपूर्णताओं को स्वीकार कर लेते हो, समस्याएं आ ही कैसे सकती हैं? फिर चाहे कुछ भी होता होे, और तुम कह देते हो, 'सब ठीक है' तब समस्या आ कहा से सकती है? जब तुम सीमाओं को स्वीकार कर लेते हो, तब समस्या कहां से आ सकती है? समस्या तुम्हारे अस्वीकार से ही तो उठती है। जैसे तुम हो उसे तुम स्वीकार नहीं कर सकते, तभी तो समस्या पैदा होती है। और तुम कभी भी जैसे हो उसे स्वीकार नहीं करोगे, इसलिए समस्या भी सदा बनी रहेगी। क्या तुम कभी कल्पना कर सकते हो कि तुम उन्हें स्वीकार करोगें, जैसे भी तुम हो उसे पूरी तरह से स्वीकार कर लोगे? यदि तुम कल्पना कर सकते हो, तो तुम अभी ही ऐसा क्यों नहीं कर लेते? प्रतीक्षा क्यों करनी? किसके लिए? और क्यों?

जैसा 'मैं' हूं मैंने उसे स्वीकार कर लिया है, और उसी क्षण सारी समस्याएं विलीन हो गई। उसी क्षण तुम्हारी सारी समस्याएं विलीन हो गई। उसी क्षण सारी चिंताएं मिट गई। ऐसा नहीं कि मैं पूर्ण हो गया हूं, परंतु मैंने अपनी अपूर्णताओं का आनंद उठाना प्रारंभ कर दिया हैं। पूर्ण तो कभी कोई नहीं होता, क्योंकि पूर्ण होने का अर्थ है, पूर्णतः मृत हो जाना। पूर्णता तो संभव ही नहीं है, क्योंकि जीवन शाश्वत है। पूर्णता कभी संभव नहीं है, क्योंकि जीवन सदा चलता रहता है। चलता ही जाता है–इसका कोई अंत नहीं है।

इसलिए इन तथाकथित समस्याओं से बाहर निकलने को एक मात्र उपाय यह है कि तुम अपने जीवन को, ठीक इस क्षण में यह जैसा है, उसे वैसा ही स्वीकार कर लो, और इसे जिओ, इसका मजा लो, इसमें आनंदित होओ। अगला क्षण और अधिक आनंद का होगा क्योंकि वह इसी क्षण में से तो निकलेगा, तुम अधिक आनंदित होगे सुधार के द्वारा नहीं, बल्कि इस क्षण को पूर्णता से जीने के द्वारा।

लेकिन तुम अपूर्ण रहोगे। तुममें सदा कमियां रहेंगी, और ऐसी स्थितियां तुम्हारे पास आती रहेगी। जहां कि तुम समस्याएं निर्मित करना ही चाहो, तुम तुरंत उन्हें पैदा कर सकते हों। यदि तुम समस्याएं निर्मित न करना चाहो, तब निर्मित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम चीख सकती हो, परंतु उससे तुम्हें कोई मदद नहीं मिलेगी। यही तो तुम करती ही आई हो सदा से, इसे सब ने कुछ तुम्हारी मदद की।

यहां तक कि प्रथम-चिकित्सा भी अधिक सहायक सिद्ध नहीं हुई है। यह लागों को चीखाने में जरूर सहायता करती है–हां, इससे कुछ अच्छा जरूर महसूस होता है, यह एक आवेश चिकित्सा है। यह उल्टी करने में तुम्हारी सहायता करती है। इससे थोड़ा सा अच्छा महसूस होता है, क्योंकि तुम तनिक निर्भार, बोझ-हीन

अनुभव करते हो, लेकिन कुछ ही दिनों में ये सब समाप्त हो जाता है; तुम फिर से वही के वही हो जाते हो, फिर से इन्हें इकट्ठा करने लग जाते हो। फिर से प्रथम चिकित्सा से गुजरों–तब कुछ दिन तुम्हें अच्छा महसूस रहेगा... फिर से वही कि वही बात।

जब तक तुम यह न समझ लोगे कि तुम्हें समस्याएं निर्मित करना बंद करना होगा, तुम समस्याएं निर्मित करते चले जाओगे। तुम एककाउंटर ग्रुप में जा सकते हो, तुम प्राइमन थैरपी कर सकते हो, तुम हजार दूसरे ग्रुपों में जा सकते हों, और हर ग्रुप के बाद तुम बहुत सुंदर महसूस करोगे, क्योंकि तुमने कोई ऐसी चीज जो तुम्हारे सिर पर एक भार थी, उसे छोड़ दिया–परंतु तुमने उस यांत्रिक-व्यवस्था को नहीं छोड़ा है जो इसे निर्मित करती आ रही है। तुम फिर से इसे निर्मित कर लोगे। यह तुम्हारी कोई अधिक सहायता नहीं करेगी। यह तुम्हें मात्र एक विराम देगी, एक विश्रांत देगी।

लेकिन यदि तुम सच में ही इस बात को समझ लो, बात बस यह है कि तुम्हें समस्याएं निर्मित करना छोड़ना होगा–वर्ना तो तुम भटकते ही रह सकते हो एक ग्रुप से दूसरे ग्रुप तक, एक मनोविश्लेषक से दूसरे मनोवश्लिषक तक, एक मनसःचिकित्सक से दूसरे मनसःचिकित्सक तक, एक थैरेपी से दूसरी थैरेपी तक..और फिर से तुम वही का वही करने लगोगे।

यहां मेरा कुल प्रयत्न यही है कि सहायता को उसकी जड़ो से ही काट दिया जाए। कृपया समस्याएं निर्मित मत करो–वह हैं ही नहीं, उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है।

और आखिरी बात आनंदो कहती है, 'क्या मैं तब अधिक आनंदित नही थी, जब कि मैं सोचती थी कि कोई लक्ष्य है?

हां, तुम अधिक आनंदित थी, और अधिक दुखी भी थी–क्योंकि तुम्हारा आनंद आशा में था, यह सच्चा आनंद नहीं था। इसलिए मैं कहता हूं कि तुम अधिक भी थी और दुखी भी। दुखी तो तुम थी यहां वर्तमान में, और आनंदित तुम भविष्य में थी–पर भविष्य में तुम कैसे आनंदित हो सकते हो? लक्ष्य तो भविष्य में है।

दुखी तुम यहां थी, आनंदित तुम वहां थी। 'वहां' का अस्तित्व ही नही है–बस 'यहां' ही है। सदा 'यहां' ही है। हर जगह 'यहां' है। 'वहां' तो बस शब्द कोश में ही है। यही बात 'तब' के साथ भी है। सदा 'अब' ही है। 'तब' का तो अस्तित्व ही नहीं है। हां, लक्ष्य के बारे में सोचने के, एक सुंदर भविष्य के विषय में सोचने के, अपने सपनों में तुम आनंदित थी। परंतु कोई व्यक्ति क्यों एक सुंदर भविष्य के विषय में सोचता है? क्योंकि वर्तमान में तो वह दुखी होता है।

मैं किसी सुंदर भविष्य के विषय में नही सोचता हूं।

मैं यह सोच भी नहीं सकता कि कैसे यह अधिक सुंदर हो सकता है। कैसे इससे अधिक सुंदर हो सकता है, उससे जो यह इसी क्षण है? कैसे अस्तित्व उससे अधिक आनंदपूर्ण और हर्षपूर्ण हो सकता है, जितना कि यह इस क्षण है? जरा देखो तो, कैसे यह अधिक आनंदित, अधिक उत्सव पूर्ण हो सकता है? परंतु यह एक तरकीब है, फिर से मन की एक नई चालबाजी, जो वर्तमान से बचाने के लिए हमें भविष्य के विषय में सोचते रहने को मजबुर करती है। ताकि हमें वर्तमान को देखना न पड़े। और जो भी है वर्तमान ही तो है।

इसलिए तुम ठीक कहती हो–तुम अधिक आनंति थी, आनंदित अपने सपनों में। अब मैंने तुम्हारे सारे सपने छिन्न-भिन्न कर दिए हैं। तुम आनंदित थी अपनी आशाओं में, अब मैं आशाहीनता की स्थिति पैदा करने का हर संभव उपाय कर रहा हूं। ताकि तुम्हारी कोई आशा बचे ही नहीं। मैं तुम्हें वर्तमान में लाने का प्रयत्न कर रहा हूं। तुम भविष्य में विचार रही हो, मैं तुम्हें यहां-अब में वापस खींच रहा हूं। यह बहुत मुश्किल काम है। और जब तुम किसी का लक्ष्य छीन लेना चाहते हो, तब आदमी को बहुत क्रोध आता है। कभी-कभी तुम मुझ पर बहुत

क्रोधित होते हो। मैंने तुम्हारी आशा छीन ली, तुम्हारे सपने छीन लिए, या छीन रहा हूं–तुम उनसे चिपके रहे हो; तुम आशा करने के इतने आदी हो गए थे कि तुम मुझसे भी आशा करनी शुरू कर देते हो।

तुम मुझसे भी आशा करने लग जाते हो: 'ओशो यह कर देंगे।' यह आदमी कुछ नहीं करने वाला है। तुम आशा करने लग जाते हो कि 'अब तो मैं ओशो के साथ हूं, अतः डरने की कोई बात नहीं है। देर-सवेर मैं संबुद्ध हो ही जाऊंगा।' यह सब तुम भूल जाओ! संबोधि कोई आशा नहीं है। यह कोई आकांक्षा नही है और न ही यह भविष्य में है। यदि तुम ठीक इस क्षण को जीना प्रारंभ कर दो, तो तुम संबुद्ध हो। मैं हर रोज तुम्हें संबुद्ध बनाने की चेष्टा कर रहा हूं, और तुम कहते हो, 'कल।' फिर जैसी तुम्हारी मर्जी...परंतु कल कभी आता ही नहीं। या तो अभी या फिर कभी नहीं।

अभी संबुद्ध हो जाओ! और तुम हो सकते हो क्योंकि तुम हो!...बस तुम भ्रम में हो, बस सोच रहे हो कि तुम नहीं हो।

इसलिए मत पूछो कि कैसे! जिस क्षण तुम पूछते हो कैसे, तुम आशा करना प्रारंभ कर देते हो। इसलिए 'कैसे' मत पूछो और यह भी मत कहो कि, 'हां, हम हो जाएंगे।' मैं यह नहीं कह रहा हूं।

मैं कह रहा हूं कि तुम हो! 'सोमेंद्र!...बतख बाहर है।' बतख कभी भीतर थी ही नहीं। व्यक्ति को बस क्षण में सजग होना है। सजगता का बस एक क्षण, एक धक्का और तुम स्वतंत्र होते हो। हर रोज मैं तुम्हें संबुद्ध बनाने का प्रयत्न कर रहा हूं, क्योंकि मैं जानता हूं कि तुम संबुद्ध ही हो। परंतु यदि तुम संसार का खेल खेलते रहना ही चाहते हो, तो तुम खेलते रह सकते हो।

आनंदित, निश्चय ही, तुम थी, और दुखी भी। मैंने तुम्हारा आनंद छीन लिया है, क्योंकि अब और तुम आशा नहीं कर सकती। यदि तुम मुझे थोड़ी सी अनुमति और दो, मैं तुम्हारा दुख भी छीन लूंगा। परंतु पहले आनंद को जानना होगा, क्योंकि दुख का अस्सित्व तो आनंद की आशा की छाया की ही भांति है। इसलिए पहले तो आनंद की आशा को जाना होगा, केवल उसके बाद ही छाया भी जायेगी।

इसलिए यदि तुम चीखना ही चाहती हो तो चीख सकती हो, परंतु मैं तो हजार बार दोहराऊंगा: आनंदो, कोई समस्या नहीं है। बस तुम स्वयं को स्वीकार और प्रेम करना है–हां, बस।

चोथा प्रश्न: क्या तंत्र अतिभोग का ही एक मार्ग नहीं है?

रीको, ने एक बार नानसेन से बोतल में बत्तख की पुरानी पहेली की व्याख्या करने को कहा।

'यदि कोई व्यक्ति बतख के नवजात शिशु को एक बोतल में रख दे, और उसे तब तक भोजन देता रहे जब तक कि वह बच्चा बड़ा होकर पूरी बोतल ही न बन जाएं, कैसे वह व्यक्ति बतख को बोतल से उसे बाहर निकाल सकता है। कि न तो बतख ही मरे और न ही बोतल टूटे।'

नानसेन ने जोर से अपने हाथों से ताली बजाई और चिल्लाया, 'रीको!'

'हां, गुरुजी,' रीको ने चौंक कर कहा।

'देख', नानसेन ने कहा, 'बतख बाहर है।'

....

नहीं! यह तो अति भोग से बाहर निकलने का एकमात्र मार्ग है। यह तो कामुकता से बाहर आने का एकमात्र उपाय है। और कोई भी उपाय कभी भी मनुष्य के लिए सहायक नहीं हुआ है, बाकि और उपायों ने तो मनुष्य को अधिक से अधिक कामुक बना दिया है।

काम विलीन तो नहीं हुआ है। धर्मों ने बस इसे और अधिक विषैला बना दिया है। यह अभी भी है–एक जहरीले रूप में। हां, अपराध भाव तो मनुष्य में पैदा हो गया है, परंतु काम अदृश्य नहीं हुआ है। यह अदृश्य हो

सकता भी नहीं क्योंकि यह एक जैविक वास्तविकता है। यह अस्तित्वगत है; इसका दमन करने मात्र से यह अदृश्य नहीं हो सकता। यह केवल तभी अदृश्य हो सकता है, जब तुम इतने सजग हो जाओ कि कामुकता में संपुरित ऊर्जा को तुम मुक्त कर सको–यह ऊर्जा दमन से नहीं बल्कि समझ से मुक्त होती है। और एक बार ऊर्जा मुक्त हो जाए, कीचड़ से कमल…कमल को कीचड़ से उठना ही होगा, इसे ऊपर जाना ही होगा, और दमन तो इसे कीचड़ में और गहरा ले जाता है। यह उसे नीचे दबाये जाता है।

तुम्हारे, सारे समाज ने, अब तक जो किया है, वह है काम को अचेतना के कीचड़ में देबा देना। इसे दबाए चले जाओ, इसके ऊपर चढ़कर बैठ जाओ, इसे हिलने-डुलने मत दो, इसे मार ड़ालो, उपवास द्वारा, अनुशासन द्वारा, हिमालय की किसी गुफा में चले जाने के द्वारा, किसी ऐसे मठ में चले जाने के द्वारा जहां स्त्री को जाने की अनुमति न दी जाती हो। ऐसे मठ हैं जहां सैंकड़ों वर्षो सेकिसी स्त्री ने प्रवेश नहीं किया है। ऐसे मठ हैं जहां केवल साध्वीयां ही रहती है। जहां कभी किसी पुरुष ने प्रवेश नहीं किया है। ये दमन के उपाय हैं। और ये (उपाय) निर्मित करते हैं अधिक से अधिक कामुकता और अतिभोग के अधिक से अधिक स्वप्न।

नहीं, तंत्र अति भोग का मार्ग नहीं है। यह तो स्वतंत्रता का एक मात्र मार्ग है। तंत्र कहता है: जो भी है उसे समझ जाना है–और समझ से परिवर्तन स्वतः घटित होते है।

इसलिए मुझे सुनकर या सरहा को सुनकर यह सोचना प्रारंभ मत कर देना कि सरहा तुम्हारे अतिभोग का समर्थन कर रहा है। यह कहानी, सुनो:

मार्टिन नाम का एक प्रौढ़ व्यक्ति डॉक्टर के पास अपनी जांच करवाने गया। 'मैं चाहता हूं कि आप बाताएं कि मेरे साथ क्या गड़बड़ी है, डॉक्टर। मुझे यहा दर्द होता है, वहा दर्द होता है और यह बात मेरी समझ में नहीं आती। मैंने एक बड़ी साफ सुथरी जिंदगी जी है–न धूम्रपान किसा, न कभी शराब पी,न कभी इधर-इधर दौड़ा। मैं प्रत्येक रात नो बजे बिस्तर में चला जाता हूं, अकेला। फिर मुझे क्यों यह हो रहा, ये सब नहीं होना चाहिए?'

'आपकी उम्र कितनी है?' डॉक्टर ने पूछा।

'अपने अगले जन्मदिन पर मैं चौहतर वर्ष का हो जाऊंगा।' मार्टिन ने कहा।

डॉक्टर ने उतर दिया, 'आखिरकार अब आप उस उम्र में पहुंच गए हैं, जबकि आपको ऐसी चीजों की आशा करनी ही होगी। पर आपके पास अभी भी काफी समय पड़ा है। बस इसे शांति से लीजिए और चिंता मत कीजिये। मैं सुझाव दूंगा कि आप हॉट-स्प्रिंग्स चले जाएं।

इसलिए मार्टिन हॉट-स्प्रिंग्स चला गया। वहां उसकी भेट एक और व्यक्ति से हुई जो इतना बूढ़ा और जर्जर दिखाई दे रहा था कि उसकी तुलना में मार्टिन को कुछ हिम्मत महसूस हुई। 'भाई' मार्टिन कहता है: 'तुमने निश्चय ही अपनी अच्छी देखभाल कि होगी, तभी तो तुम ऐसी परिपकव आयु तक पहुंच पाए हो। मैंने भी एक शांत और अच्छा जीवन जिया है, परंतु मैं शर्त लगता हूं कि तुम्हारे जैसा नहीं। इस परिपकवता तक, इस वृद्धावस्था तक पहुंच पाने का तुम्हारा सूत्र क्या है?

तब वह झुर्रीदार बूढ़ा कहता है, बात बिलकुल उलटी है, महोदय! जब मैं सत्रह वर्ष का था, मेरे पिता ने मुझसे कहा, 'बेटा जाओ और जिंदगी का मजा लूटो। जी भर कर खाओ पियो और मस्त रहो। जीवन को पूरा जियो। एक स्त्री से विवाह करने के स्थान पर कवांरे रहो और दस को भोगो। अपना पैसा पत्नी और बच्चों पर खर्च करने के स्थान पर मौज-मस्ती पर और अपने ऊपर खर्च करो।' हां, शराब, स्त्री और गीत-संगीत, जीवन को पूरी तरह से जीना। यहीं मेरे सारे जीवन कि नीति रही है, मेरे भाई!'

'बात तो तुम्हारी जमती है', मार्टिन ने कहा। 'तुम्हारी उम्र कितनी है?'

उस व्यक्ति ने उतर दिया, 'चौबीस वर्ष।'

अति भोग आत्म-हत्या है–वैसे ही जैसे दमन। ये वे दो अतियां है जिनसे बचने को बुद्ध कहते हैं। एक अति है दमन, दूसरी अति है अति भोग। बस बीच में रहो; न दमन रत रहो, न अतिभोग में डूबों। बस मध्य में रहो, चौकने, सजग, जागरूक। यह तुम्हारा जीवन है। न तो इसका दमन करना है, न ही इसे बर्बाद करना है–इसे तो समझा जाना है।

यह तुम्हारा जीवन है–इसका ख्याल रखो! इसे प्रेम करो! इससे दोस्ती करो! यदि तुम अपने जीवन से दोस्ती कर सको, यह बहुत से रहस्य तुम पर खोल देगा, यह तुम्हें परमात्मा के द्वार तक ले जाएगा।

लेकिन तंत्र अतिभोग बिलकुल नहीं है। दमनकारी लोगों ने सदा यह सोचा हैं कि तंत्र अतिभोग है, उनके मन इतने पूर्वा ग्रह से भरे है। उदाहरण के लिए: एक व्यक्ति जो किसी मठ में जाता है, और बिना कभी किसी स्त्री को देखे वहां रहता है, वह कैसे यह विश्वास कर सकता है कि 'सरहा' जब वह किसी स्त्री के साथ रहता है, अतिभोग ग्रस्त नहीं है? न वह केवल साथ रहता है, बल्कि वह अजीब-अजीब हरकतें भी करता है: वह स्त्री के समक्ष नग्न बैठता है, स्त्री भी नग्न होती है, और वह स्त्री को देखता चला जाता है, या स्त्री से संभोग करते समय भी वह साक्षी रहता है।

अब उसके साक्षीभाव को तो तुम देख नहीं सकते, तुम तो बस इतना ही देख सकते हो कि वह स्त्री से संभोग कर रहा है। और अगर तुम दमकारी हो, तुम्हारी सारी दमि कामुकता फूट पड़ेगी। तुम पागल हो जाने लगोगे। और जिस किसी चीज का भी तुमने अपने भीतर दमन किया है, उस सबको सरहा के ऊपर प्रक्षेपित कर लोगे–और सहरा तो वैसा तो कुछ कर ही नहीं रहा था, वह तो एक भिन्न ही आयाम में गति कर रहा है। सच में तो देह में तो उसकी रूचि है ही नहीं, वह तो यह देखना चाहता है कि यह कामुकता है क्या, वह तो यह जानना चाहता है कि कामोंमाद का आकर्षण है क्या; वह उस ऊर्ध्व क्षण में ध्यान पूर्ण होना चाहता है, ताकि उसे सूत्र ओर कुंजी मिल सके...शायद समाधि का द्वार खोलने की कुंजी वहां हो। सच में तो, कुंजी वहां है।

परमात्मा ने कुंजी को तुम्हारी कामुकता में छिपा दिया है। एक और तो तुम्हारे काम के द्वारा जीवन चलता रहता है; यह तो तुम्हारी काम ऊर्जा का एक आंशिक उपयोग है। दूसरी और, यदि तुम पूर्ण जागरुकता के साथ अपनी काम ऊर्जा में गति करो, तुम पाओगे कि तुम्हारे हाथ एक ऐसी कुंजी लग गई जो कि शाश्वत जीवन में प्रवेश हेतु तुम्हारी सहायता कर सकती है। काम का एक छोटा सा अंग तो यह है कि तुम्हारे बच्चे जिएंगें। दूसरा अंग एक बड़ा अंग यह है-कि तुम शाश्वतता में जी सकते हो। काम-ऊर्जा, जीवन-ऊर्जा है। साधारणतः तो हम बरामड़े से आगे बढ़ते ही नहीं, महल में तो हम कभी जाते ही नहीं। सरहा महल में जाने का प्रयास कर रहा है। अब वे लोग जो राजा के पास आए वे दमित लोग रहे होंगे, जैसे कि सब लोग दमित लोग हैं।

राजनेता और पुरोहित को तो दमन सिखना ही होगा, क्योंकि केवल दमन से ही तो लोगों को विक्षिप्त बनाया जा सकता है। और तुम स्थिरचित लोगों की अपेक्षा विक्षिप्त लोगों पर अधिक आसानी से राज कर सकते हो। और वे लोग अपनी काम ऊर्जा में विक्षिप्त होते है, वे अन्य दिशाओं में चलने लग जाते है–वे चलना शुरू कर देते है, धन कि तरफ, या पद की तरफ, या प्रतिष्ठा की तरफ। उन्हें कहीं न कहीं तो अपनी काम ऊर्जा को दिखाना ही होता है, यह उबल रही होती है–उन्हें किसी न किसी ढंग से तो मुक्त करना ही होता है। इसलिए धन के प्रति पागलपन, या सता का लगाव उनकी ऊर्जा-मुक्ति के तरीके बन जाते है।

सारा समाज काम-ग्रसित है। यदि काम-ग्रस्तिता संसार से अदृश्य हो जाए, लोग धन के पीछे पागल ही न होंगे। तब धन कि परवाह कौन करेगा? और लोग पद की चिंता भी नहीं करेंगे। कोई भी राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री बनना नहीं चाहेगा–किस लिए? अपने साधारणपन में जीवन इतना सुंदर है, अपने साधारणपन में यह इतना श्रेष्ठ है, कि कोई भी कुछ विशिष्ट बनना क्यों चाहगा? कुछ न बनने में यह इतना स्वादपूर्ण है–कुछ भी नहीं है।

लेकिन यदि तुम लोगों की कामुकता को नष्ट कर दो और उन्हें दमनकारी बना दो, तब इतने कुछ की कमी हो जाती है। कि वे सदा बेचैन रहते है: कहीं और आनंद होगा, यहां तो है नहीं।

काम प्रकृति और परमात्मा द्वारा प्रदत (रचित) एक ऐसा कृत्य है, जिसमें तुम बार-बार वर्तमान क्षण में फेंक दिये जाते हो। साधारणतः तो तुम वर्तमान में कभी होते ही नहीं, उस समय को छोड़ कर जबकि तुम संभोग में रत होते हो, और वह भी मात्र कुछ क्षणों के लिए।

तंत्र कहता है कि व्यक्ति को काम को समझना है, काम के रहस्य को जानना है। यदि काम इतना महात्वपूर्ण है कि जीवन उससे आता हो तब इसमें कुछ ओर भी चाहिए। वह कुछ और ही कुंजी है, दिव्यता की, परमात्मा की।

पांचवा प्रश्न: मेरे साथ क्या गड़बझ है? जो आप कहते हैं वह मैं समझता हूं, मैं आपकी पुसतकें भी पढ़ता हूं, और उनका बहुत आनंद लेता हूं, पर फिर भी किसी अत्यंत आवश्यक चीज की कमी जान पड़ती है।

वर्डसवर्थ के इन सुंदर शब्दों पर धयान लगाओ:...

....

इसलिए बस मुझे पढ़ने और सुनने से अधिक सहायता न मिलेगी...महसूस करना प्रारंभ करो। सुनते हुए महसूस भी करो, केवल सुनो ही मत। सुनते समय हृदय से सुनो। वही अर्थ है जब सब धर्म कहते हैं कि श्रद्धा का, विश्वास का, उसके लिए एक भरोसे की आवश्यकता पड़ती है। श्रद्धा का अर्थ है सुनने का एक ढंग—हृदय से; संदेह से नहीं, तर्क से नहीं, युक्ति से नहीं, विवादपूर्ण बौद्धिकता से नहीं, बल्कि हृदय से, एक गहन साझेदारी से।

जैसे कि तुम संगीत सुनते हो, मुझे वैसे ही सुनो। मुझे ऐसे मत सुनो जैसे कि तुम किसी दार्शनिक को सुनते हो, मुझे ऐसे सुनो जैसे तुम पक्षियों को सुनते हो। मुझे ऐसे सुनो जैसे तुम किसी झरने को सुनते हो। मुझे ऐसे सुनो जैसे कि तुम चीड़ के वृक्षों से गुजरती हवा को सुनते हो। मुझे विवादग्रस्त मन से नहीं, सहभागी हृदय से सुनो। और फिर उस चीज की कमी, जिसकी कमी तुम्हें निरंतर खल रही है, महसूस नहीं की जाएगी।

हमारा सिर आवश्यकता से अधिक विशेषज्ञ बन गया है, यह एकदम अति पर ही पहुंच गया है। इसने तुम्हारी समस्त ऊर्जाओं को चूस लिया है। यह तानाशाह बन गया है। निश्चत ही यह काम तो करता है, परंतु चूंकि यह काम करता है, तुमने इस पर बहुत अधिक निर्भर रहना शुरू कर दिया है। और अति पर कोई भी सदा जा सकता है, और मन की तो प्रवृति ही अति पर जाने की है।

नवयुवा वारेन बहुत ही महात्वकांक्षी था, और जब उसे एक ऑफिस बाय की नौकरी मिली, उसने सब कुछ सीख लने का निश्चय किया ताकि वह अपने बॉस पर अपना प्रभाव जमा सके और आगे बढ़ सके। एक दिन बॉस ने उसे बुलवाय और कहा: 'आतायात विभाग को कहो कि ग्यारह तारीख को छूटने वाले 'कवीन मेरी जहाज में मेरे लिए एक सीट सुरक्षित करवा दें।'

'क्षमा करें, श्रीमान', लड़के ने कहा: 'परंतु जहाज बारह तारिख को रवाना होगा।'

बॉस ने प्रभावित होते हुए उसकी और देखा। फिर उसने कहा, 'क्रय-विभाग को कहो कि अल्यूमिनियम के लिए छह महीने की पूर्ति करने का ऑडर दे दें।'

'क्या मैं सुझाव दे सकता हूं', वारेन ने कहा: 'कि ऑर्डर कल भेजा जाए क्योंकि कल दाम और गिर जाएंगे। इसके साथ ही, केवल एक महीने की पूर्ति का ही ऑर्डर दिया जाना चाहिए क्योंकि बाजार कि प्रवृति से यह संकेत मिलता है कि कीमत अभी और कम होगी।'

बहुत अच्छे नौजवान, तुम्हें तरक्की मिलनी ही चाहिए। अब कुमारी केट को भेज दो, मुझे एक पत्र लिखवान है।

'कुमारी केट आज नहीं आई है', लड़के ने उतर दिया।

'क्या बात है, क्या उसकी तबीयत खराब है?'

'नहीं, श्रीमान, नौ तारीख तक तो नहीं।'

अब यह हुआ आवश्यकता से अधिक जानना, यह हुआ बहुत दूर तक चले जाना। और यही मानव मन के साथ हुआ है, यह जरुरत से ज्यादा दूर चला गया है। इसने अपनी सीमाओं को पार कर लिया है। और इसने उसकी सारी ऊर्जा को सोख लिया है, इस लिए हृदय के लिए कुछ बचा ही नहीं है। हृदय से तो तुम पूरी तरह से बच कर ही गुजर गए हो। हृदय से तो तुम गुजरते ही नहीं। उस राह तो तुम कभी चलते ही नहीं। हृदय तो एक मुर्दा चीज हो गया है। एक मृत-भार। बस यही तो कमी महसूस हो रही है। तुम मुझे सुन सकते हो सिर से, और निश्चय ही जो मैं कह रहा हूं, वह तुम समझ भी लोगे–और फिर भी तुम कुछ नहीं समझ पाओगे, एक शब्द भी नहीं, क्योंकि यह एक ऐसी समझ है जो ज्ञान की अपेक्षा प्रेम के अधिक समीप है।

यदि तुम मेरे प्रेम में हो, केवल तभी...यदि तुमने मुझे महसूस करना शुरु कर दिया है। केवल तभी...यदि मेरे और तुम्हारे बीच में एक स्नेह बढ़ रहा है, यदि यह केवल एक प्रेम-संबंध है केवल तभी।

और अंतिम प्रश्न: ओशो, एक अच्छे व्याख्यान की आप क्या परिभाषा करेगे?

कहना कठिन है। मैंने आज तक अपने जीवन में कई व्याख्यान दिया ही नहीं है। तुम एक गलत आदमी से पूछ रहे हो। पर मैंने एक परिभाषा सुनी है जो मुझे पसंद आयी और मैं चाहूंगा कि तुम भी इसे जान लो:

एक अच्छा प्रारंभ ओर एक अच्छा अंत किसी व्याख्यान को बनाते हैं–यदि वे सच में ही करीब हों, प्रारंभ और अंत। निश्चय ही, श्रेष्ठ वक्तव्य में मध्य तो होता ही नहीं, और सर्वश्रेष्ठ व्याख्यान तो वही है जो कभी दिया ही न जाए।

और मैं सदा सर्वश्रेष्ठ व्याख्यान ही देता आया हूं, व्याख्यान जो कभी दिया ही न गए। मैंने अपने पूरे जीवन में एक भी व्याख्यान दिया ही नहीं क्योंकि धंधा मौन का है, शब्दों का नहीं। जब तुम शब्द सुनते हो, उद्देश्य वह न था। जब मैं शब्दों का उपयोग करता भी हूं, शब्द केवल आवश्यक बुराई की भांति उपयोग में लाए जाते हैं–क्योंकि उनका उपयोग करना पड़ता ही है, क्योंकि अभी तुम मौन को नहीं समझ सकते।

मैं तुमसे बोल नहीं रहा हूं। मेरे पास कहते को कुछ भी नहीं है, क्योंकि जो मेरे पास है उसे कहा नहीं जा सकता, उसके विषय में कोई प्रवचन दिया नहीं जा सकता। परंतु शब्दों के अतिरिक्त तुम कुछ समझते ही नहीं, इस लिए मुझे कष्ट उठाना ही पड़ता है। मुझे शब्दों का उपयोग करना पड़ता है जो कि अर्थ हीन है। और मुझे वे बातें कहनी पड़ती है जो कि नहीं कही जानी चाहिएं–इस आशा में कि धीरे-धीरे तुम मुझे में ही ज्यादा सीधे झांक सकोगे, धीरे-धीरे तुम शब्दों को नहीं, संदेश को सुनने लगोगे। स्मरण रखो: माध्यम संदेश नहीं है। शब्द मेरा संदेश नहीं है। संदेश तो शब्दहीन है। मैं न दिया गया व्याख्यान तुम्हें सौंपने की चेष्टा कर रहा हूं। यह एक हस्तांतरण है, शब्दों के पार का इसलिए केवल वे ही जो अपने हृदयों से मुझसे जुड़े है इसे प्राप्त करने में सक्षम हो सकेंगे।

आज इतना ही।

तीसरा प्रवचन

मधु तुम्हारा है

(दिनांक 23 अप्रैल 1977 ओशो आश्रम पूना।)

एक मेध की तरह, जो उठता है समुंद्र से
अपने भीतर समाएं वर्षा को,
करती हो आलिंगन घरती जिसका,
वैसे ही, आकाश की भांति
समुंद्र भी उतना ही रहता है,
न बढ़ता, न घटता है।
अतः, उस स्वच्छंदता से जो कि है अद्वितीय
बुद्ध की पूर्णमाओं से भरपूर
जन्मती हैं चेतनाएं सभी
और आती है विश्राम हेतु वहीं
पर यह साकार है न निराकार है
वे करते हैं विचरण अन्य मार्गों पर
और गंवा बैठते हैं सच्चे आनंद को
उद्धीपक जो निर्मित करते है, खोज में उन सुखों की
मधु है उसके मुख में, इतना समीप...
पर हो जाएंगा अदृश्य, यदि तुरंत ही न करले वे उसका पान
पशु नहीं समझ पाते कि संसार है दुख,
पर समझते हैं वे विद्वान तो
जो पीते हैं इस स्वर्मिक अमृत को
जबकि पशु भटकते फिरते हैं
एंद्रिंक सुखों के लिए

हर चीज बदलती है...और हेराक्लेतु सही कहता है: 'तुम एक नदी में दोबारा कदम नहीं रख सकते।' नदी बदल रही है, और तुम भी बदल रहे हो। सब कुछ, गतिशील है। सब कुछ प्रवाह है। हर चीज अस्थाई है, क्षणिक है। एक क्षण के लिए यह होती है और फिर गई...और फिर उसे तुम कभी नहीं पकड़ पाओगे। उसे फिर से पाने का कोई उपाय नहीं है। एक बार वह गई तो सदा के लिए गयी।

और कुछ भी नहीं बदलता--यह भी सत्य है। कुछ भी कभी भी नहीं बदलता। सब कुछ सदा वही रहता है। पारमेन्डीस भी अपनी जगह सही है, वह कहता है: 'सूरज के नीचे कुछ भी नया नहीं है।' हो कैसे सकता है? सूरज प्राचीन है, इसी भांति हर चीज प्राचीन है। यदि तुम पारमेन्डीस से पूछो, यह कहेगा कि तुम चाहे जिस नदी में कदम रखो--लेकिन तुम सदा एक ही नदी में कदम रख रहे होगे। यह गंगा है या थेम्स, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। पानी वही है। यह बस एच. टू. ओ. है। और नदी में कदम तुम आज रखते हो, या कल रखते हो या फिर लाखों वर्ष के बाद, वह नदी तो वही होगी। और तुम कैसे भिन्न हो सकते हो? तुम बच्चे थे, तुम्हें यह स्मरण

है। फिर तुम युवा हुए, यह भी तुम्हें स्मरण है। फिर तुम वृद्ध हो गए, यह भी तुम्हें याद है। यह कौन है जो स्मरण किएं चला जाता है? तुम्हारे भीतर कोई न बदलने वाला तत्व होना चाहिए–अपरिर्वतनशील, स्थाई, पूर्णतः स्थाई। बचपन आता है और जाता है, ऐसे ही जवानी आती है और जाती है, ऐसे ही बुढ़ापा। परंतु कोई चीज शाश्वत रूप से बहती रहती है।

अब, मैं तुमसे कह दूं: हेराक्लेतु और पारमेन्डीस दोनों ही सही हैं–सच तो यह है कि वे दोनों साथ-साथ सही हैं। यदि हेराक्लेतु सही है, यह आधा ही सत्य है, यदि पारमेन्डीस सही है, यह भी आधा ही सत्य है। पहिया तो घूमता है पर कीली नहीं घूमती। पारमेन्डीस कीली के विषय में बात कह रहा है। हेराक्लेतु पहिएं के विषय में बात कहता है–लेकिन बिना कीली के तो पहियां हो ही नहीं सकता और बिना पहिएं के कीली किस काम की है? इसलिए ये विरोधाभासी दिखायी देते अर्द्धसत्य विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। हेराक्लेतु और पारमेन्डीस शत्रु नहीं मित्र हैं। दूसरा केवल तभी खड़ा रह सकता है, यदि पूरक सत्य भी वहां हो–वर्ना नहीं।

तुफान के मौन केंद्र पर ध्यान दो...

परंतु जिस क्षण भी तुम कुछ कहते हो, यह अधिक से अधिक एक अर्द्धसत्य ही हो सकता है। कोई भी वक्तव्य सम्पूर्ण सत्य नही हो सकता। यदि कोई वक्तव्य सम्पूर्ण सत्य को समाहित करना चाहे, तब तो आवश्यक है कि वह वक्तव्य स्वयं-विरोधी हो, तब तो इसे आवश्यकतः अतकर्य ही होना पड़ेगा। तब तो वह वक्तव्य पागल दिखेगा।

महावीर ने यही किया–वह सर्वाधिक झक्की व्यक्ति हैं, क्योंकि उन्होने सम्पूर्ण सत्य को, और कुछ नहीं बल्कि केवल सम्पूर्ण सत्य, कहने कि चेष्टा की। वह तुम्हें पागल बना देते हैं, क्योंकि हर वक्तव्य के ठीक पीछे उसका विरोधी वक्तव्य होता है। उन्होंने वक्तव्यों की सपतपदी का विकास किया। एक वक्तव्य के पीछे उसका विरोधी वक्तव्य आता है, उसके पीछे उसका विरोधी वक्तव्य...और ऐसा ही चलता रहता है? वह विरोध करते जाते हैं, सात बार, सात भिन्न बातें एक दूसरे का विरोध करते हुएं, तब वह कहते है कि अब सत्य को पूर्णतः कह दिया गया–पर तब तुम नहीं जानते कि उन्होंने कहा क्या।

यदि तुम उनसे पूछो: 'ईश्वर है?' वे कहेंगे, 'हां' और वह कहेंगे, 'नहीं' और फिर वे कहेंगे, 'दोनों' उसके बाद कहेंगे, 'दोनों नहीं' और इसी भांति वह कहते जाएंगे...अततः तुम किसी निर्णय पर नहीं पहुंचते, तुम कोई निर्णय नहीं ले सकते। वह तुम्हे निर्णय लेने का कोई अवसर ही प्रदान नही करते। वह तुम्हें हवा में लटकता छोड़ देते हैं।

यह एक संभावना है यदि तुम सत्य ही कहने पर जोर दो।

दूसरी संभावना बुद्ध की है–वह मौन रहते हैं यह जानकर कि जो भी तुम कहोगे वह केवल आधा ही होगा। और आधा खतरनाक है। वह आत्यंतिक सत्यों के विषय में कुछ नहीं कहते। न तो वह कहेंगे कि संसार एक प्रवाह है और न वह कहेंगे कि संसार स्थाई है। न तो वह कहेंगे कि तुम हो और न वह कहेंगे कि तुम नहीं हो। जिस क्षण तुम उनसे पूर्ण सत्य के विषय में कुछ पूछते हो, वह मना कर देते हैं। वह कहते हैं: 'कृपया पूछो मत क्योंकि अपने प्रश्न से तुम मेरे लिए समस्या खड़ी कर रहे दोगे। या तो मुझे विरोधाभासी होना पड़ेगा, जो कि पागलपन जैसा है; या मुझे अर्द्धसत्य कहना पड़ेगा जो कि सत्य नहीं है, वह खतरनाक है, या फिर मुझे मौन रहना पड़ेगा।' ये तीन संभावनाएं हैं: बुद्ध ने मौन रहना चूना।

आज के सूत्रों में यह पहली बात बात समझ लेने की है, फिर इस संदर्भ में सरहा जो कह रहा है उसे समझना सरल होगा।

एक मेध की तरह, जो उठता है समुंद्र से

अपने भीतर समाएं वर्षा को,
करती हो आलिंगन धरती जिसका,
वैसे ही, आकाश की भांति
समुंद्र भी उतना ही रहता है,
न बढ़ता, न घटता है।

वह राजा से कह रहा है: आकाश की और देखो। ये दो बातें हैं–आकाश और बादल। बादल आता है और जाता है। आकाश न कभी आता है न कभी जाता है। बादल कभी होते हैं, कभी नहीं होते हैं–यह एक सामयिक घटना है,यह क्षणिक है। आकाश सदा से है–यह कालहीन घटना है, यह शाश्वतता है। बादल इसको दूषित नही कर सकते, काले बादल भी इसे दूषित नहीं कर सकते। इसे दूषित करने की कोई संभावना ही नहीं है। इसकी शुद्धता पूर्ण है, इसकी शुद्धता अस्पर्शीय है। इसकी शुद्धता सदा कवांरी है–उसका तुम उल्लंघन नहीं कर सकते। बादल आ-जा सकते हैं, और वे आते-जाते रहे हैं। परंतु आकाश उतना ही शुद्ध है जितना कि यह सदा था, कोई चिंह भी पीछे नहीं छूटता।

अतः अस्तित्व में दो चीजें हैं: कुछ तो आकाश जैसा है, और कुछ बादल जैसा है। तुम्हारे कृत्य बादल जैसे हैं–वे आते हैं और जाते हैं। तुम?–तुम आकाश जैसे हो, तुम न कभी आते हो और न कभी जाते हो। तुम्हारा जीवन, तुम्हारी मृत्यु बादल जैसे हैं–वे घटते हैं। तुम?–तुम कभी नहीं घटते; तुम तो सदा हो।

चीजें तुममें घटती हैं, तुम कभी नहीं घटते।

चीजें वैसे ही घटती है, जैसे बादल आकाश में घटता हैं। तुम बादलों के इस समस्त खेल के एक मौन साक्षी हो। कभी वे श्वेत और सुंदर होते हैं, कभी वे काले, शोकाकुल और कुरूप होते है; कभी वे जल से भरे होते हैं और कभी वे मात्र रिक्त होते हैं। कभी वे पृथ्वी को बड़ा लाभ पहुंचाते हैं, कभी बड़ी हानि। कभी वे बाढ़ लाते हैं, कभी विनाश लाते है। कभी वे जीवन लाते हैं, अधिक हरियाली, अधिक फसले लाते हैं। लेकिन आकाश सदा वह रहता है–अच्छा या बुरा, दिव्य या शैतान, बादल उसे दूषित नही करते।

कृत्य बादल हैं, कर्म बादल है: होना आकाश की भांति है।

सरहा कहा रहा है: 'मेरे आकाश की और देखो! मेरे कृत्यों को मत देखो। जागरुकता के स्थानांतरण की आवश्यकता है–और कुछ नहीं, बस जागरुकता का एक स्थानांतरण। परिपेक्ष्य का परिवर्तन चाहिए। तुम बादल को देख रहे हो, तुम बादल पर केंद्रित हो, तुम आकाश को भूल गए हो। फिर अचानक तुम्हें आकाश याद आ जाता है। तुम बादल से अपनी दृष्टी हटाते हो, तुम आकाश पर दृष्टि केंद्रित करते हो–तब बादल असंगत हो जाता है। उस समय तुम एक बिलकुल ही भिन्न आयाम में होते हो। बस दृष्टिकेंद्र का बदलना...और संसार भिन्न हो जाता है।

जब तुम किसी व्यक्ति के व्यवहार को देखते हो, तुम बादल पर दृष्टि जमा रहे हो। जब तुम उसके अस्तित्व की अंतरतम शुद्धता को देखते हो, तुम उसके आकाश को देख रहे होते हो। यदि तुम अंतरतम शुद्धता को देखो, तब तुम किसी को बुरा न देखोगे, तब समस्त अस्तित्व पवित्र है। यदि तुम कृत्यों को देखते हो, तब तुम किसी को पवित्र न देख सकोगे। पवित्रतम व्यक्ति भी, जहां तक कृत्यों का संबंध है, बहुत सी भूले कर सकता है। यदि तुम कृत्यों को ही देखो, तब तुम जीसस में, बुद्ध में, महावीर में, कृष्ण में, राम में भी गलत कृत्य देख सकते हो–तब महानतम संत भी पापी जैसा ही दिखाई देगा।

जीसस के बारे में बहुत सी किताबें लिखी गई हैं। वह हजारों अध्ययनों की विषयवस्तु हैं, बहुत से उनके पक्ष में लिखे गये हैं जो कि साबित करते हैं कि वह ईश्वर के इकलौते प्यारे पूत्र हैं। और वे यह साबित भी कर

सकते हैं। फिर बहुत से ये साबित करने के लिए, लिखते पाए गए है कि मात्र वह एक सनकी है। और कुछ नहीं! और वे भी इसे साबित कर सकते हैं। और वे एक ही व्यक्ति के बारे में बात कर रहे हैं। यह क्या हो रहा है। कैसे वे इसकी व्यवस्था करते हैं? वे मजे में ऐसा कर लेते हैं। एक पक्ष सफेद बादलों को चुनता चला जाता है। दूसरा पक्ष काले बादलों को चुनता रहता है। दोनों वहीं हैं, क्योंकि कोई भी कृत्य न तो केवल सफेद हो सकता है और न काला। होने के लिए, इसे दोनों ही होना होगा।

तुम जो भी करोगे वह संसार में कुछ अच्छाई लाएगा और कुछ बुराई भी लाएगा–चाहे तुम कुछ भी करो। यह चुनाव ही कि तुमने कुछ किया–बहुत सी बातें अच्छी होंगी और पीछे-पीछे बहुत सी बातें खराब भी होंगी। तुम कोई भी कृत्य सोच लो: तुम जाते हो और एक भिखारी को कुछ धन दे देते हो–तुम तो अच्छा कर रहे हो; लेकिन वह भिखारी जाकर उस धन से जहर खरीद लेता है। और आत्म हत्या कर लेता है–अब! तुम्हारी अभिलाषा तो अच्छी थी लेकिन कुल परिणाम बुरा निकला। तुम एक व्यक्ति की मदद करते हो–वह बीमार है, तुम उसकी सेवा करते हो, तुम उसे अस्पताल ले जाते हो। और फिर वह स्वस्थ हो जाता है, अच्छा हो जाता है, उसके बाद वह किसी की हत्या कर देता है। अब, यदि तुम मदद न किए होते, संसार में एक हत्या कम हुई होती। तुम्हारी अभिलाषा तो शुभ थी पर कुल परिणाम बुरा ही हुआ।

अतः निर्णय अभिलाषा के आधार पर लिया जाए या परिणाम के आधार पर? और तुम्हारी अभिलाषा जातना कौन है? अभिलाषा तो आंतरिक है...शायद भीतर गहरे में तुम यही आशा कर रहे थे, कि जब वह स्वस्थ हो जाए तो एक हत्या कर दे। और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि: तुम्हारी अभिलाषा तो बुरी होती है, परंतु उसका परिणाम अच्छा हो जाता है। तुम एक व्यक्ति के ऊपर पत्थर फेंकते हो, और वह सिरदर्द, माइग्रेन, से वर्षो से पीड़ित था, और पत्थर उसके सिर पर लगा और तब से उसका माइग्रेन चला गया–अब क्या किया जाए। तुम्हारे कृत्य को क्या कहा जाए? नैतिक या अनैतिक? तुम तो उस व्यक्ति को मारना चाहते थे, परंतु तुमने तो उसके माइग्रेन को ही मार डाला। इसी तरह तो एक्यूपंक्चर का जन्म हुआ। इतना महान विज्ञान! इतनी लाभकारी! मनुष्यता को मिले महानतम वरदानों में से एक...परंतु उसका जन्म इसी भांति हुआ था।

एक व्यक्ति वर्षों से सिरदर्द से पीड़ित था, और किसी ने, उसके शत्रु ने उसे मार देना चाहा। एक वृक्ष के पीछे छिपकर शत्रु ने तीर चलाया। तीर उस व्यक्ति की टांग में लगा, वह नीचे गिर पड़ा–पर उसका सिरदर्द गायब हो गया। वे लोग जो उसकी देखभाल कर रहे थे, नगर का चिकित्सक, सब बड़े हैरान हुए कि यह बात कैसे हो गई। उन्होंने इसका अध्यन करना आरंभ किया। संयोग-वशात, दैवयोग से उस शत्रु ने टांग पर किसी ऐसे बिंदू को छू दिया था, तीर ने किसी बिंदू छेद दिया था, जिससे उस व्यक्ति की शरीर-ऊर्जा का आंतरिक विद्धुत प्रवाह बदल गया था। और चूंकि विद्धुत का आंतरिक प्रवाह परिवर्तित हो जाने के कारण, उस व्यक्ति का सिर र्दद गायब हो गया।

यही कारण है कि यदि तुम किसी एक्यूपंचर चिकित्सक के पास जाओ और उससे कहो, 'मेरे सिर में दर्द है ', वह तुम्हारे सिर को शायद छुए भी नही। वह तुम्हारा पैर या हाथ दबाना शुरु कर सकता है, या वह तुम्हारे हाथ में या तुम्हारी पीठ में सुई चुभो सकता है। और तुम हैरान होओगे, 'तुम क्या कर रहे हो? दर्द तो मेरे सिर में है, पीठ में नहीं।' परंतु वह बेहतर जानता है। हमारा समस्त शरीर एक अंतर्संबंधित विद्धुत परिक्रम है। उसमें सात सौ बिंदू हैं, और वह जानता है कि प्रवाह को परिवर्तित करने के लिए ऊर्जा को कहां धक्का दिया जाए। सब कुछ आपस में जुड़ा है...पर इस तरह से एक्युपंक्चर का जन्म हुआ था।

अब वह आदमी, जिसने अपने शत्रु पर तीर चलाया था, क्या वह एक महान संत था? या कि वह एक पापी था? कहना कठिन है, यह कह पाना बहुत ही कठिन होगा। यदि तुम कृत्यों को देखो, तब यह तुम पर

निर्भर है। तुम अच्छे कृत्य चुन सकते हो, तुम बुरे कृत्य चून सके हो। और सम्पूर्ण वास्विकता में प्रत्येक कृत्य कुछ भलाई लाता है, और कुछ बुराई भी लाता है। सच तो यह है कि–यही मेरी समझ है, इस पर ध्यान करो। तुम जो कुछ भी करो, इसकी अच्छाई और बुराई समान अनुपात में होते हैं। मैं इसे फिर से दोहरा दूं: यह सदा समान अनुपात में है! क्योंकि शुभ और अशुभ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम शुभ कर सकते हो परंतु अशुभ होना ही है, क्योंकि दूसरा पहलु कहां जाएगा? सिक्के को अस्तित्व अपने दोनों ही पहलुओं के साथ है, और कोई एक पहलू अकेला नहीं हो सकता।

अतः पापी भी कभी लाभदायक होते है, और संत भी कभी बड़े हानिकारक हो सकते हैं। संत और पापी एक ही नाव में सवार हैं। एक बार यह बात तुम्हारी समझ में आ जाए, तब परिवर्तन संभव है, तब तुम कृत्यों की और नहीं देखते। यदि तुम अच्छा करो या बुरा और अनुपात यदि समान ही हो तब किसी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके कृत्यों से करने का क्या अर्थ है? फिर तो सारी बात ही बदल डालो। फिर दूसरे परिपेक्ष्य में प्रवेश कर जाओ–आकाश में।

यही तो सरहा राजा से कह रहा है। वह कह रहा है। हे राजन, तुम सही हो! लोगों ने तुमसे जो कहा और वे गलत भी नहीं कह रहे हैं। मैं एक पागल कुत्ते की भांति दौड़ता फिरता हूं, नांचता फिरता हूं। हां, यदि तुम केवल कृत्यों को देखो, तुम भटक जाओगे, तुम मुझे समझ न सकोगे। मेरे भीतरी आकाश को देखो। मेरी भीतरी पूर्वगामिता को देखो, मेरे आंतरिक केंद्र को देखो–सत्य को देखने की मात्र यही विधि है। हां, मैं एक स्त्री के साथ रहता हूं–और साधारणतः किसी स्त्री के साथ रहने का यही अर्थ होता है, जो होता है। अब, सरहा कहता है: 'देखो! यह साधारण रहना नहीं है! यह स्त्री पुरुष के संबंध जैसा कुछ भी नहीं है। इसका कामुकता से कोई लेना-देना नहीं है। हम दो आकाशों की भांति रहते हैं। हम दो स्वतंत्रताओं की भांति जीते हैं। हम दो खाली नौकाओं की तरह साथ-साथ रहते है। परंतु फिर तुम्हें आकाश में देखना होगा, बादलों में नहीं।

एक मेध की तरह, जो उठता है समुंद्र से
अपने भीतर समाएं वर्षा को,
करती हो आलिंगन घरती जिसका,
वैसे ही, आकाश की भांति
समुंद्र भी उतना ही रहता है,
न बढ़ता, न घटता है।

और एक और बात का वह उसे स्मरण दिलाता है: समुद्र को देखो। लाखों बादल समुंद्र से उठते हैं, इतना जल वाष्पीभूत होता है, परंतु इस कारण समुंद्र तो कम नहीं होता। और फिर बादल, धरती पर बरसेंगे, नाले बढ़कर बड़ी नदियां बन जाऐगे, बहुत सी नदियों में बाढ़ आएगी, और जल वापस सागर की और, समुंद्र की और दौड़ पड़ेगा...संसार की सभी नदियां अपना जल समुंद्र में उड़ेल देंगी, परंतु उससे समुंद्र बढ़ता तो नहीं, समुंद्र उतना का उतना ही रहता है, इसमें से कोई चीज निकाल ली जाए, या उसमें कोई चीज जोड़ दी जाए, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता-इसकी पूर्णता ऐसी है कि न तो तुम उसमें से कुछ घटा सकते हो, और न उसमें कुछ जोड़ ही सकते हो।

वह कहा रहा है: देखो! आंतरिक अस्तित्व इतना पूर्ण है कि तुम्हारे कृत्य एक पापी के ही क्यों न हो, उसमें से कुछ कम नहीं होता। और चाहे तुम्हारे कृत्य किसी संत के हो, उसमें कुछ जुड़ता नहीं। तुम वही के वही रहते हो।....

यह एक बड़ा ही क्रांतिकारी कथन है। यह एक महान वक्तव्य है। वह कहता है: मनुष्य में कुछ जोड़ा नहीं जा सकता कुछ घटाया नहीं जा सकता–उसकी आंतरिक पूर्णता ऐसी है। मनुष्य को तुम अधिक सुंदर नहीं बना सकते, और न ही उसे कुरूप बना सकते हो, नहीं तुम उसे निर्धन बना सकते हो। वह समुंद्र की भांति है।

बौद्ध सूत्रों में से एक, वहुमुल्य सूत्र, जिसमें एक व्यक्तव्य है कि सागर में दो बहुत मूल्यवान रत्न हैं–एक उसे कम होने से रोकता है जब सागर में निकाला जाता है, और दूसरा उसे अधिक बढ़ने से रोकता है, जब जल उसमें डाला जाता है।

दो बड़े रत्न सागर में हैं और वे दो बड़े रत्न सागर को बढ़ने या घटने से रोकते हैं, यह न कभी घटता है और न कभी बढ़ता है–यह बस उतना का उतना ही बना रहता है। यह इतना विशाल है, कि इससे कोई अंतर ही नहीं पड़ता कि कितने बादल इसमें से उठते है, और कितना जल वाष्पीभूत हो जाता है। यह इतना विशाल है कि इसमें कोई अंतर ही नहीं पड़ता कि कितनी नदियां इसमें आकार मिलती है, और कितना सारा जल इसमें उड़ेल देती है, परंतु सागर तो उतना का उतना ही सदा बना रहता है, ऐसा ही मनुष्य का अंतर केंद्र है, ऐसा ही असित्व का अंतर केंद्र है, बढ़ना और घटना परिधि पर है, कोई भी जानकारी तुम्हें उससे अधिक जान कर नहीं बना सकती जितना कि तु पहले से ही हो। तुममें कुछ जोड़ा नहीं जा सकता। तुम्हारी शुद्धता अनंत है, उसमें और सुधार लाने का कोई उपाय नहीं है।

यही तंत्र की दृष्टि है। तंत्र के दृष्टिकोण का यही अंतर्केंद्र है, कि मनुष्य जैसा है वैसा ही है। सुधार की कोई लालसा नहीं है, ऐसा नहीं कि मनुष्य को शुभ होना है, ऐसा नहीं कि मनुष्य को यह बदलना है, वह बदलना है। मनुष्य को सब कुछ स्वीकार करना है–और अपने आकाश को स्मरण रखना है, अपने समुद्र को स्मरण रखना है। तब, धीरे-धीरे एक समझ उठती है, जब तुम जान लेते हो कि बादल क्या है, और आकाश क्या है और समुंद्र क्या है।

एक बार तुम अपने समुंद्र के साथ लयवद्ध हो जाते हो सब चिंता मिट जाती है, सब अपराध विलीन हो जाता है। तुम एक बच्चे की भांति निर्दोष हो जाते हो।

राजा सरहा को जानता था: वह बड़ा ज्ञानी और प्रज्ञावान था। परंतु इस समय वह एक अज्ञानी व्यक्ति की भांति व्यवाहार कर रहा है। उसने वेदों का पाठ करना बंद कर दिया है। वह अब अपने धर्म द्वारा बताएं गए कर्मकांड नहीं करता, अब वह ध्यान तक नहीं करता। वह कुछ भी ऐसा करना जिसे सामान्यतः धर्म माना जाता है। यहां श्मशान भूमि में रहकर वह क्या कर रहा है? एक पागल की भांति नृत्य करता है, एक पागल की भांति गीत गाता है। और बहुत सी अपारंपरिक बातें करता? उसका ज्ञान कहां चला गया है?

और सरहा कहता है: तुम मेरा सारा ज्ञान ले सकते हो। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि इसके जाने से में कुछ कम नहीं होता। अथवा संसार के सभी धर्मग्रंथ ला सकते हो और उन्हें मेरे भीतर उड़ेल सकते हो–उससे भी कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि उसके कारण में कुछ अधिक नही हो जाता।

राजा एक सम्मानि व्यक्ति था। सारा राज्य उसका सम्मान करता था। अब अचानक वह सर्वाधिक असम्मानित व्यक्तियों में से एक हो गया है। और सरहा कह रहा है: तुम मुझे सब संभव सम्मान दे सकते हो, तब भी मुझमें कुछ नहीं जुड़ता। और तुम सारे सम्मान छीन ले सकते हो, और तुम मेरा अपमान कर सकते हो, मेरा सम्मान नष्ट करने के लिए तुम जो चाहो कर सकते हो–कुछ नही होता। बल्कि मैं वही का वही रहता हूं। मैं वह हूं जो न कभी बढ़ता है और न घटता है। अब मैं जानता हूं ,कि मैं बादल नहीं हूं, मैं एक आकाश हूं।

इसलिए मुझे इसकी चिंता नहीं है कि लोग बादल को काला सोचते है या सफेद, क्योंकि मैं बादल नहीं हूं। और कोई छोटी सी नदी नहीं हूं, छोटी सी कोई नदिया या जल का कोई छोट सा तालाब–मैं चाय का कप

नहीं हूं। चाय के कप में बड़ी सरतला से तुफान आ सकता है, या एक चमच भर उसमें से निकाल लो तो उसमें से कम हो जाता है। या एक चम्मच भर उसमें डाल दो और उसमें बहुत कुछ बढ़ जाता है। और उसमें बाढ़ आ जाती है।

वह कहता है: मैं विशाल समुंद्र हूं। अब इसमें से जो चाहो निकाल लो, या जो ड़ालना चाहो, इसमें ड़ाल दो–किसी भी तरह से कोई अंतर नहीं पड़ता।

जरा इसके सौंदर्य को देखो। किसी क्षण भी किसी बात से अब कोई अंतर न पड़े, तो तुम घर आ गए। यदि किसी बात से अभी भी अंतर पड़ता हो, तुम घर से बहुत दूर हो। यदि तुम अभी भी देख रहे हो, और कृत्य के विषय में चतुर और चालाक बन रहे हो–तुम्हें यह करना है, और तुम्हें यह नहीं करना है। और अभी भी यह करना चाहिए और वह नहीं करना चाहिए जैसे बातें हों, तब अभी घर तुमसे से बहुत दूर है। तुम अभी भी स्वयं को क्षणिक के पदों में सोचते हो, शाश्वत की भांति नहीं। तुमने अभी ईश्वर का स्वाद नहीं चखा है।

आकाश की भांति और समुंद्र की भांति...तुम हो।

दूसरा सूत्र:

अतः, उस स्वच्छंदता से जो कि है अद्वितीय

बुद्ध की पूर्णमाओं से भरपूर

जन्मती हैं चेतनाएं सभी

और आती है विश्राम हेतु वहीं

पर यह साकार है न निराकार है

अतः उस स्वच्छंदता से जो कि है अद्वितीय...

पहली बात, तंत्र में, स्वच्छंदता महानतम मूल्य है–बस स्वभाविक होना, स्वभाव को घटने देना। इसमे विध्न न ड़ालना, इसमें बाधा न पहुंचाना, इसे विचलित न करना, इसे किसी ऐसी दिशा में न ले जाना जहां यह स्वयं न जा रहो हो। स्वभाव को समर्पण कर देना, उसके साथ बहना। नदी से लड़ना नहीं, बल्कि उसके साथ जाना–सारे रास्ते भर, जहां कहीं भी यह ले जाए। यह भरोसा ही तंत्र है। स्वच्छंदता ही इसका मंत्र हैं, इसका महानतम आधार है।

स्वच्छंदता का अर्थ है: तुम हस्तक्षेप नही करते, तुम तथाता में होते हो। जो कुछ भी घटे, तुम उसे देखते हो, तुम उसके साक्षी होते हो, तुम जानते हो कि यह घट रहा है। पर तुम इसमें कूदते नहीं, और तुम इसकी दिशा बदलने की चेष्टा नहीं करते। स्वच्छंदता का तात्पर्य है, तुम्हारी कोई दशा नहीं है। स्वच्छंदता का तात्पर्य है, पाने के लिए तुम्हारे पास कोई लक्ष्य नहीं हैं, यदि पाने के लिए तुम्हारे पास कोई लक्ष्य हो, तुम स्वच्छंद नहीं हो सकते। कैसे तुम स्वच्छंद हो सकते हो अचानक तुम्हारा स्वभाव एक दिशा विशेष में जा रहा हो और तुम्हारा लक्ष्य वहां न हो। कैसे तुम स्वच्छंद हो सकते हो? तुम स्वयं को लक्ष्य की और घसीटोगे।

यही तो लाखों लोग कर रहे हैं–स्वयं को किसी काल्पनिक लक्ष्य की और घसीट रहे हो। और चूंकि वे स्वंय को किसी काल्पनिक लक्ष्य की और घसीट रहे होते हैं, स्वभाविक नियति को चूकते चले जाते है–जो कि एकमात्र लक्ष्य है! और यही कारण है कि इतनी निराशा है, इतना दुख है और इतना नरक है–क्योंकि जो कुछ भी तुम करोगे वह कभी तुम्हारे स्वभाव को संतुष्ट नहीं कर सकेगा।

यही कारण है कि लोग जड़ है, वे जीते हैं, फिर भी वे नहीं जीते। वे कैदियों की भांति चलते है, बंधे-हुए। उनकी चाल स्वतंत्रता की नहीं है, उनकी चाल नृत्य की नहीं है–वह हो नहीं सकती क्योंकि वे लड़ रहे है। वे लगातार अपने ही साथ लड़ाई कर रहे हैं। हर क्षण एक संघर्ष है, तुम कोई चीज खाना चाहते हो, और तुम्हारा

धर्म उसकी अनुमति नहीं देता, तुम किसी स्त्री के साथ चलना चाहते हो पर वह सम्मान पूर्ण न होगा। तुम इस तरह से जीना चाहते हो, परंतु समाज इसके लिए मना करता है। तुम एक ढंग से होना चाहते हो, तुम महसूस करते हो कि यही ढंग है कि जिससे कि तुम खिल सकते हो, पर हर कोई उसके खिलाफ है।

इसलिए क्या तुम अपने अस्तित्व की सुनते हो? या कि तुम हर किसी की सलाह को सुनते हो? यदि तुम हर किसी की सलाह को सूनोगे, तुम्हारा जीवन एक निराशा के अतिरिक्त कुछ और न होगा। तुम जीवित रहे बिना ही समाप्त हो जाओगे, तुम यह जाने बिना ही मर जाओगे कि जीवन क्या है!

मगर समाज ने तुममें ऐसे संस्कार निर्मित कर दिया है, जो तुम्हारे बाहर ही नहीं–बल्कि तुम्हारे भीतर ही बैठ गए है। यही तो अंतःकरण है। तुम जो भी करना चाहो, तुम्हारा अंतःकरण कहता है, 'ऐसा मत करो!' अंतकरण तुम्हारी पैतृक आवाज है, पुरोहति और राजनीतिज्ञ इसी के द्वारा बोलते हैं। यह एक बहुत बड़ी तरकीब है। उन्होंने तुम्हारे भीतर एक अंतःकरण बना दिया है–बचपन से ही, जब तुम्हें यह पता ही न था कि तुम्हारे साथ क्या किया जा रहा था, उन्होंने एक अंतःकरण तुम्हारे भीतर रख दिया है।

यदि तुम अपनी स्वभाविकता को सुनते हो, तुम अपराध भाव अनुभव करते हो, फिर दुख आता है। तुम अनुभव करने लगते हो कि तुमने कुछ गलत किया है। तुम छिपाना शुरू कर देते हो, तुम स्वयं का बचाव करने लग जाते हो, तुम निरंतर यह दिखावा करने लग जाते हो कि तुमने यह नहीं किया है, और तुम भयभीत रहते हो-देर-सवेर कोई न कोई तुमें पकड़ ही लेगा। तुम पकड़ लिए जाओगे...और फिर चिंता, अपराधभाव, और भय। और तुम जीवन के साथ सारे प्रेम को खो बेठते हो।

जब कभी भी तुम दूसरों के कहे के विपरीत कोई काम करते हो, तुम अपने को अपराधी अनुभव करते हो। और जब कभी भी तुम कोई ऐसी चीज करो जो दूसरे कहते हों, तुम इसे करके कभी प्रसन्न नहीं होते–क्योंकि करने के लिए यह कोई तुम्हारी अपनी चीज तो थी नहीं। इन दोनों के बीच में आदमी पकड़ा जाता है।

मैं अभी एक कहानी पढ़ता रहा था:

'यह दूहरी संशय क्या है जिसके विरुद्ध कि संविधान द्वारा व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करने की आशा की जाती है?' रोनाल्ड ने अपने वकील मित्र से पूछा।

उसने उतर दिय, 'यह ऐसे हैं, रौनी, यदि तुम अपनी कार चला रहे हो और तुम्हारी पत्नी और उसकी मां पीछे की सीटों पर बैठी तुम्हें बता रही हों कि कार कैसे चलाई जाए, बस यही दुहरा संशय है। और तुम्हें यह संवैधानिक अधिकार है कि तुम पीछे मुड़ो और कहो, 'अब, यह कार कौन चला रहा है, प्रिय, तुम या तुम्हारी मां?'

तुम स्टीयरिंग व्हील के पीछे बैठे हो सकते हो, पर कार तुम नहीं चला रहे हो। पीछे की सीटों पर बहुत से लोग बैठे हुए हैं–तुम्हारे माता-पिता के माता-पिता, तुम्हारा पुरोहित, तुम्हारा राजनीतिज्ञ, नेता, महात्मा, संत वे सब पीछे की सीट पर बैठे हुए है। और वे सब तुम्हें सलाह देने की चेष्टा कर रहे हैं: 'यह करो, वह न करो, इस और जाओ, उस तरफ मत जाओ।' वे सब तुम्हें पगल बनाए दे रहे हैं, और तुम्हें उनकी बात मानना सिखाया गया है। अगर तुम उनकी बात न मानों, उससे भी तुम्हारे भीतर ऐसा भय उत्पन्न होता है कि कुछ बात गलत जरुर है–कैसे तुम सही हो सकते हो जब इतने लोग सलाह दे रहे हों? और वे सदा तुम्हारे अपने भले के लिए ही तुम्हें सलाह देते है। कैसे तुम सही हो सकते हो जब सारा संसार कह रहा है, 'यह करो।' निश्चय ही, उनका बहुमत है और वे सही होने ही चहिए।

परंतु याद रखो: यह सही या गलत होने का प्रश्न ही नहीं है–आधारभूत रूप से प्रश्न है स्वच्छंद होने या न होने का। स्वच्छंदता सही है। वर्ना तो तुम एक नकलची बन जाओगे और नकलची कभी भी तृप्त अस्तित्व वाले नहीं हो सकते।

तुम एक चित्रकार बनना चाहते थे, परंतु तुम्हारे माता-पिता ने कहा, 'नहीं!' क्योंकि चित्रकारी तुम्हें पर्याप्त धन तो दे नहीं सकती। और चित्रकला तुम्हें संसार में कोई सम्मान देने भी नहीं जा रही है। तुम आवारा हो जाओगे, और तुम एक भिखमंगे बन जाओगे। इसलिए चित्रकला की चिंता न लो। 'एक मजिस्ट्रेट बनो।' इस लिए तुम मजिस्ट्रेट बन गए। अब तुम अपने काम में कोई प्रसनंता अनुभव नहीं करते हो। यह एक प्लास्टिक चीज है, एक मजिस्ट्रेट होना। और भीतर गहरे में तुम अभी भी चित्र बनाना चाहते हो।

न्यायालए में बैठे हुए भी तुम भीतर गहरे में चित्र ही बना रहे होते हो। शायद तुम अपराधी की बात सुन रहो हो, पर सोच तुम चहरे के विषय में रहे होते हो, उसका चेहरा कितना सुंदर है, उसका कितना सुंदर चित्र बन सकता था। तुम उनकी आंखों की निलीमा में झांक रहे होते हो। और बार-बार तुम हर रंग के विषय में सोच रहे हो, कि कैसे कुदरत ने उन रंगो को इस चेहरे पर उरेरा है। परंतु अब तो तुम हो एक मजिस्ट्रेट! इसलिए तुम निरंतर बैचेनी में रहते हो, एक अदृश्य तनाव तुम्हारा पीछा करता ही रहता है। फिर धीरे-धीरे तुम भी यह अनुभव करने लग जाओगे कि तुम एक सम्मानित व्यक्ति हो, तुम यह हो, तुम वह हो। तुम बस एक नकल हो जाते हो, तुम कृत्रिम हो जाते हो।

मैंने सूना है:

एक स्त्री ने सिगरेट पीना छोड़ दिया जब उसने पाया कि उसके पालतू तोते को लगातार खांसी रहने लगी है। स्वभाविक था कि वह चिंतित होती, उसने सोचा कि चूंकि वह लगातार धूम्रपान करती रहती थी, यह धुआं ही होगा जो कि उसके तोते को अनुकूल न आया होगा। अत: वह अपने तोते को एक पशु-चिकित्सक के पास ले गयी। चिकित्सक ने तोते की अच्छी तरह से जांच कि और पाया कि उसे दमा है। परंतु अंदर से तो कोई बीमारी नहीं दिखती, फिर ये खांस क्यों रहा है। आखिर बहुत जांच करने पर पता चला कि वह तोता अपनी मालाकिन नकल कर रहा है, जो लगातार धूम्रपान करती और खांसती रहती थी।

यहां कोई धुआं नही था, केवल नकल थी। वह स्त्री खांसती और तोता बेचारा खांसी की नकल करने लगा था।

देखो...तुम्हारा जीवन भी मात्र एक तोते की भांति हो सकता है। यदि यह एक तोते जैसा है, तुम किसी बहुत ही मूल्यवान चीज को चूक रहे हो–तुम अपना जीवन चूक रहे हो। जो कुछ भी तुम पाओगे वह किसी बड़ी कीमत का न होगा, क्योंकि तुम्हारे जीवन से अधिक मूल्यवान और कुछ भी नहीं है।

इसलिए तंत्र स्वच्छंदता को पहला गुण मानता है, सबसे आधारभूत गुण।

अतः उस स्वच्छंदता से जो कि है अद्वितीय

अब, तंत्र एक बात और कहता है, और इसे बहुत बारीकी से समझ लेना चाहिए। स्वच्छंदता दो प्रकार की हो सकती है: यह मात्र प्रवर्तन की हो सकती है, तब यह बहुत अद्विितिय नहीं होती, यदि यह जागरूकता की है, तब इसमें अद्विितीय होने की गुणात्मकता, भिन्न बुद्ध गुणात्मकता होती है।

कई बार मुझे सुनते हुए तुम सोचते हो कितुम स्वच्छंद हो रहे हो जबकि तुम मात्र अंत:प्रवर्तिवान (अंतर्आवेगवान) हो रहे होते हो। अंतः प्रर्वतक होने और स्वच्छंद होने में क्या अंतर है?

तुम्हारे पास दो चीजें है: शरीर और मन। मन समाज द्वारा नियंत्रित किया जाता है और शरीर जीवशास्त्र द्वारा। मन का नियंत्रण समाज द्वारा किया जाता है, क्योंकि समाज विचारों को तुम्हारे मन में रख सकता है; और तुम्हारा शरीर लाखों वर्षों के जीवशास्त्रीय विकास द्वारा नियंत्रित किया जाता रहा है।

शरीर अचेतन है, ऐसे ही मन भी अचेतन है। तुम दोनों के परे बस एक देखने वाले हो। इसलिए यदि तुम मन की और समाज कि सुनना बंद कर दो, इस बात की पूरी संभावना है कि तुम जीवशास्त्र की सुनने लगोगे। इसलिए कभी-कभी तुम्हें किसी की हत्या कर देने जैसा लेगे और तुम कहोगे, 'मैं स्वच्छंद होने जा रहा हूं–ओशो ने कहा है, 'स्वच्छंद हो जाओ!' अतः मुझे ये करना ही होगा। मुझे स्वच्छंद जो होना है। तब तुम गलत समझे। मेरी बात तुम्हारे पकड़ में नहीं आई। यह तुम्हारे जीवन को सुंदर और आनंदपूर्ण बनाने नहीं जा रहा है। तुम फिर से निरंतर संघर्षरत हो जाओगे–अब बाहर के व्यक्तियों के साथ।

स्वच्छंदता से तंत्र का अभिप्राय है, एक ऐसी स्वच्छंदता जो जागरूकता से भरपूर है। इसलिए स्वच्छंद होने के लिए पहली जरूरी चीज है पूरी तरह से जागरूक हो जाना। जिस क्षण तुम जागरूक हो जाते हो, तुम न तो मन कि पकड़ में होते हो और न शरीर की पकड़ में। तब असली स्वच्छंदता तुम्हारी आत्मा से बेहती है–आकाश से, समुंद्र से, तुम्हारी स्वच्छंदता बहती है। नहीं अपने स्वामी बदल ले सकते हो; शरीर से तुम मन को बदल सकते हो, मन से तुम शरीर को बदल सकते हो।

शरीर गहरी नींद में है। शरीर का अनुगमन करना एक अंधे व्यक्ति का अनुगमन करना होगा। और स्वच्छंदता तुम्हें सीधे एक गड्ढे में ले जाएगी। इससे तुम्हें कोई मदद न मिलेगी। अंतःआवेग प्रवृति स्वच्छंदता नहीं है। हां, अर्ंतआवेग में कुछ स्वच्छंदता होती है, मन की अपेक्षा अधिक स्वच्छंदता, इसमें वह गुणात्मकता नही होती है, जो तंत्र चाहेगा कि तुम धारण करो।

यहीं कारण है कि सरहा कहता है:

वह अद्वितीय शब्द जोड़ता है। अद्वितीय अर्थ है, अर्ंतआवेग का नहीं, बल्कि जागरूकता का, चेतना का।

हम बेहोश जीते हैं। हम चाहे मन में जिए या शरीर में, इससे कुछ खास अंतर नहीं पड़ता–हम बेहोश ही जीते हैं।

'उस नई किताब का पीछे वाला भाग तुमने क्यों फाड़ा?' हैरान परेशान पत्नी ने अपने अनुपस्थित-दिमाग डाक्टर पति से पूछा।

'माफ करना प्रिय', मशहूर सर्जन ने उतर दिया, 'जिस भाग की तुम बात कर रही हो उस पर अपेन्डिक्स लिखा हुआ था और मैंने बिना सोचे-समझे उसे निकाल लिया।'

उसका सारा जीवन, हर किसी के शरीर से अपेन्डिक्स निकाल देना एक मूच्छित कृत्य बन गया होगा। 'अपेन्डिक्स देखकर उसने स्वचलित ढंग से उसे बाहर निकाल लिया।

इसी ढंग से तो हम जीते और काम करते है। यह एक मूर्च्छित जीवन है। एक मूर्च्छित स्वच्ःछंता कोई खास स्वच्छंदता नहीं है।

एक शराबी शराब खाने से लड़खड़ता हुआ बाहर निकला और एक पैर सड़क पर और दूसरा पैर सड़क के किनारे बने पैदल-पथ पर रख कर चलने लगा। अभी वह थोड़ी दूर ही गया था कि एक पुलिस वाले ने उसे देखा। 'ए' पुलिस वाले ने कहा, 'तुमने शराब पी हुई है।'

शराबी ने चैन की सांस ली! 'अच्छा' उसने कहा: 'यह गड़बड़ है, मैं सोचता रहा था कि मैं लंगड़ा हो गया हूं।'

जब तुम शरीर के प्रभाव में हो, तब तुम रसायन के प्रभाव में होते हो। फिर से...एक फंदे से तुम बाहर आते हो पर फिर से दूसरे फंदे में फंस जाते हो। एक गड्ढे में तुम गिर जाते हो।

जब तुम सच में ही सब गड्ढों से बाहर और स्वतंत्रता में होना चाहते हो, तुम्हें शरीर और मन दोनों का ही साक्षी बनना पड़ेगा। जब तुम साक्षी होते हो, और अपने साक्षीपन के कारण स्वच्छंद होते हो, तब वहां अद्वितीय स्वच्छंदता होती है।

अतः उस स्वच्छंदता से जो कि है अद्वितीय

बुद्ध से पूर्णतओं से भरपूर

और सरहा कहता है: सच्ची स्वच्छंदता बुद्ध की पूर्णतओं से परिपूर्ण होती है। बुद्ध की पूर्णताएं क्या है? दो: प्रज्ञान और करुणा--विजडम एंड कम्पैशन। यदि ये दो वहां हो, तुम्हारी स्वच्छंदता में प्रतिबिम्बित होती, तब वह अद्वितीय है।

प्रज्ञान का अर्थ जानकारी नहीं है। प्रज्ञान का अर्थ है--जागरूकता, ध्यान पूर्णता, मौन, सजगता, अवधानता। और उस अवधानता में से ही, उस मौन में से ही, समस्त प्राणिमात्र के प्रति करुणा बहती है।

सारा जगत पीड़ा झेल रहा है। जैसे ही आनंद तुम में घटने लगेगा, तुम दूसरों के लिए भी महसूस करना प्रारंभ कर दोगे। वे भी आनंद उठा सकते है, वे बस मन्दिर के द्वार पर खड़े हैं, और भीतर प्रवेश नहीं कर रहे बल्कि बाहर की और दौड़ रहे हैं। खजाना उसके पास भी है, वही खजाना जो तुम्हें प्राप्त हो गया है, वे भी उसे लिए घूम रहे हैं, परंतु वे उसका प्रयोग नहीं कर रहे क्योंकि उन्हें उसका पता ही नहीं है।

जब कोई भी व्यक्ति संबुद्ध होता है, उसका समस्त अस्तित्व करुण से भर जाता है--सभी प्राणियों के प्रति। करुणा की नदियां उससे बहना प्रारंभ करती हैं और हर किसी तक पहुंचना प्रारंभ कर देती है। पुरूषों तक, स्त्रियों तक, पशुओं तक, पक्षियों तक, वृक्षों तक, नदियों तक, पर्वतों तक, सितारों तक। सारा अस्तित्व उसकी करुणा में भागीदार होना प्रारंभ कर देता है। भ

बुद्धो के ये दो गुण हैं: कि वह समझता हैं, और वह महसूस करता है, वह परवाह करता है।

जब तुम्हारी स्वच्छंदता सच में ही जागरूकता की होती है, तुम करुणा के विपरीत कोई कृत्य नहीं कर सकते: तुम किसी की हत्या नहीं कर सकते। लोग मेरे पास आते हैं और पूछते हैं, 'आप स्वच्छंद होने के लिए कहते हैं परंतु कभी-कभी मेरी इच्छा होती है कि अपनी पत्नी का खून कर दूं--तब क्या किया जाए?' तुम हत्या नहीं कर सकते। कैसे तुम हत्या कर सकते हो? हां, अपनी पत्नी की भी नहीं--तुम हत्या कर ही नहीं सकते।

जब तुम्हारी स्वच्छंदता सजग हो, जब यह प्रकाशमान हो, तुम हत्या की सोच भी कैसे सकते हो? तुम जानोगे कि इसकी संभावना तक नहीं है, किसी की हत्या कभी नहीं की गयी। अस्तित्व तो आकाश है: तुम केवल बादल को छितरा भर सकते हो, परंतु तुम हत्या नहीं कर सकते। इसलिए क्या फायदा? और कैसे तुम हत्या कर सकते हो यदि तुम इतने सजग और इतने स्वच्छंद हो। करुणा साथ-साथ बहेगी, उसी अनुपात में। जैसे-जैसे तुम जागरूक बनते हो, उसी अनुपात में करुणा भी वहां बढ़ती जाती हैं।

बुद्ध ने कहा है: यदि जागरूकता के बिना करुणा हो, यह खतरनाक है। यहीं बात तो उन लोगों में है जिन्हें हम भला कृत्य करने वाले लोग कहते है। उनमें करुणा तो है पर जागरूकता नहीं। वे भला किये चले जाते है और भला अभी उनके अपने अस्तित्व में घटा नहीं है। वे दूसरों की मदद किये चले जाते हैं। यह संभव नहीं है। चिकित्सक, पहले स्वयं को निरोग करो!

बुद्ध कहते हैं: यदि तुम्हारे भीतर जागरूकता-विहीन करुणा है, तुम्हारी करुणा हानिप्रद होगी। ये तथाक्थित भला करने वाले लोग संसार में सबसे अधिक उपद्रवी लोग होते हैं। वे खुद ही नहीं जानते की वे क्या कर रहे है, लेकिन वे दूसरों की सहायता हेतु सदा कुछ न कुछ करते ही रहते हैं।

एक बार एक सज्जन मेरे पास आए...उन्होंने अपना सारा जीवन, करीब चालीस-पचास वर्ष समर्पित कर दिए हैं–वह उस समय सत्तर वर्ष के थे। जब वह बीस वर्ष के रहे होंगे, वह महात्मा गांधी के प्रभाव में आए और दुनियां की भलाई के काम मे लग गए। गांधी ने भारत में भला-कर्ताओं की सबसे बड़ी जमात निर्मित की, भारत अभी तक इन भला-कर्ताओ से पीड़ित है। उनसे छूटकारा पा जाना भी कठिन कार्य लगता है। ये सज्जन, महात्म गांधी के प्रभाव में, बस्तर में आदिवासियों के पास चले गए और आदिवासियों को शिक्षा देना प्रारंभ कर दिया। चालीस-पचास सालों तक अथक प्रयास से इस कार्य में लगे रहे। उन्होंने बहुत से स्कुल, हाईस्कूल खोले और अब वह एक कॉलेज खोलने जा रहे थे।

वह मेरे पास आए। कॉलेज खोलने के लिए मेरा सहयोग चाहते थे। मैंने कहा, 'बस मुझे एक बात बताइये, पचास वर्षों से आप उनके लोगो के साथ हैं–क्या आप निश्चय ही यह कह सकते हैं कि शिक्षा ने उनका भला किया है? कि वे जब अशिक्षित थे उसकी अपेक्षा, अब वे बेहतर स्थिती में हैं? क्या आपको सुनिश्चित हैं कि आपके पचास वर्षों के कार्य ने उन्हें अधिक सुंदर इंसान बना दिया है?

वह थोड़े से चकित हुए। उन्हें पसीना आने लगा, उन्होंने कहा, 'मैंने तो इस तरह कभी सोचा ही नहीं, परंतु शयाद आप सही कह रहे हैं। नहीं, वे बेहतर नही हुए। सच पूछो तो शिक्षा ने उन्हें चालाकी सिखा दी हैं। वे चालाक हो गए है, उनकी सरलता विलिन हो रही है। ठीक वैसे ही हो गए है जैसे और लोग है। जब पचीस वर्ष पहले मैं वहां पहूंचा था, वे अत्यंत सुंदर लोग थे। हां, अशिक्षित जरूर थे, परंतु उनमें एक गरिमा थी। पचास वर्ष पहले वहां एक भी हत्या नहीं होती थी। और अगर कभी कोई हत्या हो भी जाती थी, तब वह हत्यारा खुद ही अदालत चला जाता था। और कह देता था कि उससे हत्या हो गई। वहां उस समय कोई चोरी नही होती थी, अगर कोई चौरी कर भी लेता था तो खुद ही कबीले के मुखिया के पास जाता और अपना दोष स्वीकार लेता कि मैंने चौरी की है, क्योंकि मैं भूखा था–परंतु आप मुझे दंड दीजिए। पचास वर्ष पहले उन गांव में कोई ताला नहीं लगता था। वे सदा ही बड़े-मौन, शांतिपूर्ण ढंग से रहते थे।

तब मैंने उनसे पूछा, 'यदि आपकी शिक्षा न उनकी मदद नहीं की है...तब इस विषय पर फिर से सोच लिजिए। आपने दूसरों का भला करना प्रारंभ कर दिया बिना यह जाने कि आप कर क्या रहे हैं। आपने बस यह सोचा कि शिक्षा तो अच्छी चीज है ही।

'डी. एच. लारेंस ने कहा है कि यदि आदमी को बचाना है तो सौ वर्षों के लिए समस्त विश्वविद्यालय बंद कर दिए जाने चाहिए पूरी तरह से बंद। सौ वर्ष तक किसी को भी किसी भी तरह की शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए। एक सौ वर्षों तक सभी स्कुल, कॉलेज, विश्वविद्यालय बंद हो जाने चाहिए। एक सौ वर्ष का अंतराल। और आदमी को बचा लेने का यही एकमात्र उपाय है। क्योंकि शिक्षा ने लोगों को बहुत चालाक बना दिया है। अधिक शोषण कर सकने के लिए चालाक, दूसरों का साधन की भांति उपयोग कर सकने के लिए चालाक, अनैतिक हो जाने के लिए चालाक।

यदि तुम नहीं जानते कि तुम क्या कर रहे हो, तु सोच सकते हो कि तुम शुभ कर रहे हो, पर शुभ घट नहीं सकता।

बुद्ध कहते है: 'करुणा तभी शुभ है जब यह जागरूकता का अनुगमन करती हो, नहीं तो यह शुभ नहीं है। होश के बिना करुणा खतरनाक है, और करुणा के बिना होश स्वार्थ है। इसलिए बुद्ध कहते है: 'एक पूर्ण बुद्ध में

दोनों ही चीजें होंगी–होश भी और करुणा भी। यदि तुम होश पूर्ण हो जाओ और कहो, 'मैं क्यों चिंता लूं? अब मे आनंदित हूं,' तुम अपनी आंखे बंद कर लो, तुम दूसरों की मदद न करो, तुम जागरूक बनने में दूसरो की सहायता न करो–तब तुम स्वार्थी हो, तब एक गहन अहंकार अभी भी है।

जागरुकता आधे अहंकार को मार डालती है और बाकी का आधा करुणा द्वारा मार दिय जाता है। इन दो के बीच अहंकार पूरी तरह नष्ट हो जाता है। और जब जाकर कोई व्यक्ति निर-अहंकारी हो जाता है, वह बुद्ध हो जाता है।

सरहा कह रहे है:

अतः, उस स्वच्छंदता से जो कि है अद्वितीय

बुद्ध की पूर्णमाओं से भरपूर

जन्मती हैं चेतनाएं सभी

और आती है विश्राम हेतु वहीं

पर यह साकार है न निराकार है

वह कहते हैं: ऐसी अद्वितीय स्वच्छंदता से हम पैदा होते हैं। ऐसी भगवत्ता से हमारा जन्म होता है। और पुनः हम विश्राम हेतु उसी भगवत्ता में वापस चले जाते है।

इस बीच में, इन दोनों के मध्य में, हम बादलों से बहुत अधिक आसक्त हो जाते हैं। इसलिए जरुरत बस इस बात की है कि बादलों से आसक्त न हुआ जाए। इस एक शब्द में पूरा तंत्र समाया है–बादलों से आसक्त न होना, क्योंकि बादल

क्षण भर के लिए हैं। हम उस स्त्रोत से, उस निर्दोष स्त्रोत से आते है और विश्राम के लिए हम उसी स्त्रोत में चले जाते हैं। इन दोनों के बीच में बहुत से बादल होंगे–उनसे आसक्त मत होना। बस देखना। स्मरण रखना कि तुम बादल नहीं हो।

..जन्मती हैं चेतानाएं सभी

और आती हैं विश्राम हेतु वहीं

हम परमात्मा से हैं। हम परमात्मा हैं। और फिर हम परमात्मा में चले जाते हैं। बीच में हम हजार सपने देखने लग जाते हैं कि हम यह हैं कि हम वह हैं।

परमात्मा सबसे ज्यादा साधारण सचाई है। परमात्मा तुम्हारा स्त्रोत है। परमात्मा तुम्हारा लक्ष्य है। ईश्वर ठीक अभी यहां है। तुम्हारी उपस्थिति मात्र में ही परमात्मा की उपस्थिति है। जब तुम मेरी और देखते हो, यह परमात्मा ही है जो मेरी और देख रहा होता है। यह कोई और नहीं है। दृष्टी का जरा सा परिवर्तन, जरा सी बदलाहट, बादल से आकाश की और मोड़देना और फिर तुम अचानक मौन हो जाओगे, और अचानक तुम आनंद से परिपूरित महसूस करोगे, तब अपने को एक आशीर्वाद से घिरा हुआ अनुभाव करोगे।

पर यह साकार है न निराकार है

यह भगवत्ता–न तो मन है और न ही शरीर। मन अमूर्त है। शरीर मूर्त है, शरीर स्थूल है, मन सूक्ष्म है। शरीर पदार्थ है, मन विचार है। आंतरिक भगवता इन दोनों में से कुछ भी नहीं है। यह आंतरिक भगवता एक भावतितता है। और तंत्र अतिक्रणीयता है।

इसलिए यदि तुम सोचते हो कि तुम एक शरीर हो, तु बादलों से आच्छादित होते हो, तब तुम्हारी एक बादल से तादात्मय होती है। यदि तुम सोचते हो कि तुम एक मन हो, फिर तुम बादल से आच्छादित हो जाते

हो। यदि तुम किसी भी प्रकार से ऐसा सोचो जो तुम्हें शरीर या मन के साथ तादात्मयता बनाता हो, तब तुम लक्ष्य से चूक रहे होते हो।

यदि तुम जाग जाओ और अचानक तुम स्वयं को एक साक्षी की भांति देखो जो कि शरीर को देखता हो, मन को देखता हो, तुम एक सरहा हो गए–तीर छूट गया। चेतना के उस परिवर्तन में–यह बस गियर का जरा सा बदल जाना है–तीर छूट जाता है, तुम आ पंहुचे। सच तो यह है कि तुम कहीं गए ही नहीं थे।

वे करते हैं विचरण अन्य मार्गों पर

और गंवा बैठते हैं सच्चे आनंद को

उद्धीपक जो निर्मित करते है, खोज में उन सुखों की

मधु है उसके मुख में, इतना समीप...

पर हो जाएंगा अदृश्य, यदि तुरंत ही न करले वे उसका पान

यदि तुम आकाश के साथ एक नहीं हो रहे हो जिसके साथ तुम सच में ही एक हो, तब तुम दूसरे मार्गों पर चल रहे हो। दूसरे मार्ग लाखों हैं–सच्चा मार्ग एक ही है। आकाश कभी कहीं नहीं जाता–बादल जाते हैं...कभी पश्चिम में तो कभी पूरब में, और कभी दक्षिण में, और कभी उतर में, कभी इधर कभी उधर, वे बड़े महान यात्री होते हैं। वे हमेशा चलते हैं, वे मार्ग ढूंढते ही रहते है, वे नक्शे नहीं लिए रहते–पर आकाश तो बस वहां है। इसका कोई पथ नहीं है, यह कहीं नही जाता। इसको कहीं जाने को है ही नहीं, क्योंकि ये परिपूर्ण समस्त में है।

इसलिए वे लोग जो अपने आकाश-अस्तित्व का स्मरण रखते है, वे घर में है, विश्रांत में है। उन थोड़े से व्यक्तियों को या कहलो बुद्धों को छोड़कर, बाकी लोग बहुत से मार्गों पर चलते हैं, और इसलिए गंवा बैठते हैं सच्चे आनंद को।

इसे समझने का प्रयत्न करो। यह बड़ा गहन वक्तव्य है। जिस क्षण तुम किसी भी पथ पर चल रहे होते हो, तुम अपने सच्चे आनंद से दूर हो रहे हो–क्योंकि तुम्हारा सच्चा आनंद तो तुम्हारा स्वभाव है। इसे पैदा नहीं करना है, इसे प्राप्त नहीं करना है, इसे पाना नहीं है।

पथों के अनुगमन तो हम कहीं पहुंचने के लिए करते है–यह कोई लक्ष्य नहीं है। यह तो वहां है ही। यह तो पहले से ही है। अतः जिस क्षण तुम चलना प्रारंभ करते हो, तुम दूर ही होते जाते हो। न–चलना पहुंच जाना है। न–चलना ही सच्चा पथ है। ढूंढो और तुम चूक जाओगे: मत ढूंढो और तुम पा लोगे।

वे करते हैं विचरण अन्य मार्गों पर

और गंवा बैठते हैं सच्चे आनंद को

उद्धीपक जो निर्मित करते है, खोज में उन सुखों की ...

दो तरह के आनंद हैं। पहला है सशर्त–यह केवल कुछ परिस्थितियों में ही घटता है। तुम अपनी स्त्री को देखते हो, और आनंदित हो जाते हो। या फिर तुम धन के प्रेमी हो और तुम्हें सौ-सौ के नोटों से भरा हुआ एक थेला सड़क के किनारे पड़ा हुआ मिल जाता है। और तुम्हें बड़ा आनंद मिलता है। या कि तुम एक अहंवादी आदमी हो और तुम्हें नोवल पुरस्कार दिया गया–तुम तो नाच उठते हो, तब तुम्हें बड़ा आनंद आता है। ये सब सशर्त आनंद है। तुम्हें इसकी व्यवस्था करनी होती है। परंतु ये तो सब क्षणिक मात्र हैं।

एक सशर्त आनंद के साथ तुम कब तक आनंदित रह सकते हो? यह आनंद कब तक टिकेगा? यह तो बस एक झलक की भांति आता है, मात्र कुछ क्षणों के लिए, और फिर चला जाता है। हां, जब तुम सौ-सौ से भरा हुआ एक झोला पाते हो, तुम आनंदित तो होते हो परंतु कितनी देर के लिए। ज्यादा देर तक नहीं। सच तो यह है कि क्षण भर के लिए ऊर्जा की एक लहर उठेगी और तुम आनंद अनुभव करोगे और अगले ही क्षण तुम डर

जाओग–क्या तुम पकड़े तो नहीं जाओगे? यह किस का धन है? किसी ने देखा तो नहीं? और अंतःकरण कहेगा, 'यह ठीक नहीं है। यह तो एक तरह की चोरी ही है। तुम्हें अदालत में जाना चाहिए! तुम्हें पुलिस के पास जाना चाहिए–तुम्हें यह धन पुलिस में जमा कर देना चाहिए! तुम कर क्या रहे हो? तुम तो एक नैतिक व्यक्ति हो...' और तुम चिंता और अपराध भाव से भर जाओगे। पर तुम इसे घर ले आए, अब तुम इसे छिपा रहे हो। अब तुम भयभीत हो: शायद पत्नी को पता चल जाए; शायद किसी ने देख ही लिया हो; कोई देख भी सकता था कौन जाने? किसी ने कहीं पुलिस में शिकायत न कर दी हो। अब चिंता, एक भय, तुम्हें घेर लेता है।

और यदि किसी ने शिकायत न भी की हो, किसी ने देखा न भी हो, इस धन का तुम करोगे क्या? जो कुछ भी तुम इसके साथ करोगे, वह तुम्हें बस क्षण-क्षण ही प्रसंनता देगा। तुम एक कार खरीद लेते हो, और कार तुम्हारे अहाते में खड़ी है, उसे देख कर तुम क्षण भर के लिए गद्गद् हो जाते हो आनंद से भर जाते हो। फिर...? फिर वह कार कुछ ही दिनों में पुरानी हो जाती है। अगले दिन भी यह वही कार है परंतु कुछ दिनों के बाद तुम इस की और देखते भी नहीं।

ये क्षणिक प्रसनंता जो वह आती है और चली जाती है। यह एक बादल की भांति है। और यह नदी की भांति है, एक छोटी सी नदी जो जरा सी बारिश और इसमें बाढ़ आ जाती है। बारिश रूकी और बाढ़ का पानी समुंद्र में चला गया, फिर से छोटी सी नदी छोटी रह गई। एक क्षण इसमें बाढ़ आती है और अगले ही क्षण यह खाली हो जाती है। यह समुंद्र की भांति नहीं है जो न कभी बढ़ता है और न कभी घटता है।

एक और तरह का आनंद भी है, जिसे सरहा सच्चा आनंद कहता है। यह बिना शर्त है। तुम्हें कुछ विशिष्ठ स्थितियों की व्यवस्था नहीं करना होती है। यह वहां है? अपनी पूर्णता में। तुम्हें बस अपने में देखना है और तुम उसे वहां पाते हो। तब तुम्हें किसी स्त्री की आवश्यकता नहीं होती, तुम्हें किसी पुरुष की आवश्यकता नहीं होती, तुम्हें बड़ा घर नहीं चाहिए होता, तुम्हें बड़ी कार की जरुरत नहीं होती। तुम्हें किसी प्रतिष्ठा, किसी सता और पद की जरुरत नहीं होती–कुछ भी नहीं। यदि तुम बस अपनी आंखें बंद करो और भीतर जाओ, यह वहां होता है।

केवल बस यही एक आनंद है जो सदा-सदा के लिए हो सकता है। केवल यही आनंद शाश्वत रूप से तुम्हारा हो सकता है।

ढूंढने से तुम क्षणिक चीजें ही पाओगे। बिना ढूंढे, तुम इस शाश्वत आनंद को पा जाओगे।

वे करते हैं विचरण अन्य मार्गों पर
और गंवा बैठते हैं सच्चे आनंद को
उद्धीपक जो निर्मित करते है, खोज में उन सुखों की
मधु है उसके मुख में, इतना समीप...
पर हो जाएंगा अदृश्य, यदि तुरंत ही न करले वे उसका पान

मधु तुम्हारे मुंह में है–और तुम इसे ढूंढने हिमालय में, किसी पर्वत पर जा रहे हो? तुमने कहानियां सुनी हैं: हिमालय में बहुत मधु उपलब्ध है–और तुम उसे खोजने जा रहे हो। और मधु है जो तुम्हारे मुंह के भीरत ही है।

भारत में रहस्यवादियों ने सदा कस्तुरी मृग के विषय में बात की है। एक विशेष किस्म का मृग होता है, जिसकी नाभि में कस्तुरी होती है। जब वह कस्तुरी बढ़ना प्रारंभ करती है–यह केवल तभी होता है जब मृग सच में ही कामातुर होता है...कस्तुरी प्रकृति की एक तरकीब है, एक जैविक तरकीब: जब कस्तुरी में से सुगंध निकलनी प्रारंभ होती है, मादा मृग नर मृगों की और आकर्षित होने लगती है, वे कस्तुरी के कारण, उसकी सुगंध के कारण एक दूसरे के निकट आते है।

गंध सबसे अधिक कामुक इंद्रियों मे से एक है–यही कारण है कि आदमी न अपनी नाक को तो मार ही डाला है। यह खतरनाक इंद्रिय है। तुम सच में सूंघते ही नहीं। सच तो यह है कि यह शब्द तक बहुत निंदित हो गया है। यदि किसी के पास अच्छी, सुंदर आंखे हों, तुम कहते हो कि वह अच्छा दिखता है; यदि किसी के पास संगीत के लिए पूर्ण कान हो, तुम कहते हो कि वह अच्छा सुनता है–पर तुम यह नहीं कहते कि वह अच्छा सूंघता है। क्यों? सच तो यह है कि वह अच्छा सूंघता है। इसका अर्थ उल्टा ही होता है–इसका अर्थ है कि वह बदबू मारता है, न कि यह उसमें गंध लेने की क्षमता है। क्षमता तो खो जाती है।

आदमी गंध नहीं मारता। और हम अपनी कामुक गंधों को छिपाने की चेष्ठा करते है, सुगंध से , सफाई से, इससे, कभी उससे–हम छिपाते हैं। हम गंध से डरते हैं, क्योंकि गंध काम के समीपतम इंद्रिय है। पशु गंध से ही तो प्रेम में पड़ते हैं। पशु एक दूसरे को सूंघते है और जब वे महसूस करते हैं कि उनकी गंध मेल खाती हैं, केवल तभी वे संभोग करते हैं; तब उनके होने में लयबदिता एक संगीत होती है।

यह कस्तुरी मृग में तभी पैदा होती है, जब वह कामुकता में मस्त होता है, और उसे मादा कि अवश्यकता होती है। और मादा भी उसे ढूंढती आती है। लेकिन वह मुसीबत में फंस जाता है, क्योंकि वह भी कस्तुरी की सुंगध लेने लग जाता है। और वह यह नहीं समझ पाता है कि यह गंध उसी की नाभि से, उसी के शरीर से आ रही है। इसलिए वह पागलों कि तरह दौड़ता है यह जानने के लिए कि यह गंध कहां से आ रही है, यह बिल्कुल स्वभाविक है। वह कैसे सोच सकता है? आदमी तक सोच नहीं पाता कि आनंद कहां से आता है, सौंदर्य कहां से आता है, प्रसनंता कहां से आती है। मृग को तो क्षमा भी किया जा सकता है–वह तो बेचारा मृग है। वह कस्तुरी की तलाश में इधर-उधर दौड़ता रह सकता है। और जितना वह अधिक दौड़ता है, उतनी ही वह गंध जंगल में चारों तरफ भर जाती है। जहां कहीं भी वह जाता है, वहीं उसे उसकी ही गंध पीछा करती है, फैली मिलती है। कहा जाता है कि कभी-कभी तो वह बिलकुल पागल हो जाता है, बिना यह जाने कि कस्तुरी तो उसी के भीतर है।

और यही बात मनुष्य के साथ भी है: मनुष्य भी खोजते-खोजते ढूंढते-ढूंढते पागल हो जाता है–कभी धन में, कभी प्रतिष्ठा में, कभी इस में, कभी उस में, परंतु कस्तुरी तो उसके भीतर ही है। मधु तो तुम्हारे खुद के मुख में ही है। और देखो कि सरहा क्या कह रहा है:

मधु है उनके मुख में, इतना समीप
पर हो जाएगा अदृश्य, यदि तुरंत ही न करलें वे उसका पान

और फिर वह कहता है, तुम इसे तुरंत पी जाओ। एक क्षण की भी देर मत लगाओ। वरना यह गायब हो जाएगी। अभी या फिर कभी नहीं! तुरंत करो, जरा भी समय मत गंवाना। यह तुरंत किया जा सकता है, क्योंकि किसी तैयारी की कोई आवश्यकता नहीं है। यह तुम्हारा अंतरतम केंद्र है, यह मधु तुम्हारा है-देखो वह कस्तुरी तुम्हारी नाभी में छिपी है। तुम इसे अपने जन्म के साथ ही ले कर आये थे, और तुम हो कि इसे संसार में खोज रहे हो, ढूंढ रहे हो।

चोथा सूत्र:

पशु नहीं समझ पाते कि संसार
है दुख, पर समझते हैं वे विद्वान तो
जो पीते हैं इस स्वर्मिक अमृत को
जबकि पशु भटकते फिरते हैं
एंद्रिंक सुखों के लिए

बीस्ट शब्द हिंदी या संस्कृत शब्द पशु का अनुवाद है। इस शब्द का अपना एक अलग महत्व है। शाब्दिक रूप से, पशु का अर्थ है जानवर, बीस्ट पर ये एक रूपक है। पशु शब्द पाश से आता है–इसका मतलब होता है बंधन, बंधा हुआ। पशु का अर्थ है जो पास में बंधा हुआ है, प्रकृति ने जिसे बांध रखा है।

पशु वह है जो बंधन में है–बंधन शरीर का, अंतर्प्रतियों का, मुर्च्छा का, समाज का, मन का या फिर विचार का। पशु वह है जो बंधन में बंधा है।

पशु नहीं समझ पाते कि संसार...

कैसे वे समझ सकते हैं? उनकी आंखें देखने को स्वतंत्र ही नहीं है, उनके मन देखने को स्वतंत्र ही नहीं है, उनके शरीर महसूस करने को स्वतंत्र नहीं हैं। न तो वह पूर्णता सुन सकते है, न ही वे देख सकते है, न वे गंध लेते है, न वे छूते हैं, वे बंधन में है। सारी इंद्रियां पुंगु हो गई हैं, बंधन में बंध गई हैं।

वे संसार को कैसे समझ सकते हैं? संसार समझा जा सकता है केवल स्वतंत्रता में। जब कोई धर्मग्रंथ तुम पर बंधन नहीं बनता, और कोई दर्शन तुम्हारे हाथों में जंजीर नहीं बंधता, और जब कोई ब्रह्मविद्या तुम्हारे लिए केद नहीं बनती, जब तक तुम सभी बंधनों से बाहर नहीं होते हो, तब तक तुम इसे समझ नहीं सकते। समझ केवल स्वतंत्रता में घटती है। समझ केवल एक अबंधित मन में घटती है।

पशु नहीं समझ पाते कि संसार

है दुख...

और वह यह भी नहीं समझ सकते कि संसार एक दुखपूर्ण स्थान है। मन और शरीर द्वारा निर्मित तथा-कथित संसार एक मृगतृष्णा है। यह ऐसा प्रतीत होता है, यह बहुत सुंदर प्रतीत होता है, परंतु केवल प्रतीत ही होता है–परंतु वास्तव में ये ऐसा है नहीं। यह एक इंद्रधनुष है–कितना सुंदर, कितना रंगीन, तुम निकट आओ और यह अदृश्य हो जाता है। यदि तुम इंद्रधनुष को पकड़ना चाहो तो, तुम्हारे हाथ कुछ भी नहीं लगेगा, वह खाली ही रहेगें। वहां कुछ न होगा। यह एक भ्रम है। परंतु हमारी मुर्छा के कारण हम यह बात नहीं देख पाते है।

जागरूकता के साथ ही दृष्टी पैदा होती है, तब हम देख सकते हैं कि मृगतृष्णा कहां है, सत्य कहां है। कोई भी प्रसनंता जो किसी बाहरी संयोग से घटित होती है, एक मृगतृष्णा है और तुम उससे पीड़ित होओगे ही। यह धोखा है, मतिभ्रम है।

तुम अनुभव करते हो कि तुम एक स्त्री या एक पुरुष के साथ बहुत आनंदित हो, परंतु तुम दुख उठाने जा ही रहे हो। देर-सवेर तुम पाओगे कि सारा आनंद गायब हो गया है। देर-सवेर तुम पाओगे कि तुम इसकी मात्र कल्पना ही कर रहे थे। यह वहां था ही नहीं। शायद यह एक सपना था। तुम कल्पना में खोए हुए थे। जब स्त्री या पुरुष की वास्तविकता प्रकट होती है, तुम दो कुरुप पशुओं को आमने-सामने पाते हो, जो मात्र एक दूसरे पर आधिपत्य जमाने की चेष्टा कर रहे होते है।

मैंने सुना है:

दूल्हे का साथी उसे हिम्मत दिलाने की पूरी कोशिश में लगा था। 'तुम्हारी सारी हिम्मत कहां गई, यार?' उसने पूछा। 'तुम तो एक पत्ते की भांति कांप रहे हो।'

'मैं जानता हूं कि मैं कांप रहा हूं', दूल्हे ने उतर दिया, 'पर यह मेरे लिए बड़ा नस तोड़ देने वाला अनुभव है। सच में भयभीत होने के लिए मेरे पास कारण भी तो है, है न? क्योंकि मेरी पहले कभी शादी थोड़े ही हुई है।'

'निश्चित ही,' दोस्त ने कहा: 'यदि हुई होती तो तुम जितने भयभीत अब हो, उससे कहीं ज्यादा ही भयभीत हुए होते।'

जैसे-जैसे तुम जीवन को देखते हो, जैसे-जैसे तुम इसका निरीक्षण करते हो, जैसे-जैसे तुम इसके विषय में अधिक सीखेते हो, जानते हो, शनै-शनै तुम इससे .... । वहां कुछ भी नहीं है..बस तुम्हें पुकारती हुई मृगतृष्णाएं दिखेंगी। बहुत बार तुम मूर्ख बनाये जा चुके हो। कई बार तुम दौड़े, तुमने लम्बी यात्रा की, परंतु पाया कुछ भी नहीं।

यदि तुम सजग रहे, तुम्हारा अनुभव तुम्हें संसार से मुक्त कर देगा: और संसार से मेरा अर्थ वृक्षों से, सितारों से, और नदियों से और पर्वतों के इस संसार से नहीं है। और न ही सरहा का कहने का ये अर्थ है–संसार माया है, वह संसार इंद्रजाल है, वह इच्छा के द्वारा बनता है, वह विचारों के द्वारा निर्मित होता हैं। जब विचार और इच्छा अदृश्य हो जाते है, और बस जागरूकता, सजगता बचती है, तब केवल चेतना ही होती है। बिना किसी विशयवस्तु के, जहां विचारों के कोई मेध नही होते, बस मात्र चेतना होती है। और होता है आकाश, तब तुम वास्तविक संसार को देख पाते हो। यही वास्तविक संसार है, जिसे धर्म की भाषा में ईश्वर कहते है या बुद्ध उसे निर्वाण कहते है।

पशु नहीं समझ पाते कि संसार
है दुख, पर समझते हैं वे विद्वान तो
जो पीते हैं इस स्वर्मिक अमृत को
जबकि पशु भटकते फिरते हैं
एंद्रिंक सुखों के लिए

लेकिन जब तुम अपनी आशा में हार जाते हो, जब तुम अपने सपने में हार जाते हो, और तुम सोचते हो कि शायद 'यह' सपना गलत था, तब तुम दूसरा सपना देखना प्रारंभ कर देते हो। जब तुम अपनी इच्छा में परितृप्त नहीं होते, तुम सोचते हो कि तुमने उतना प्रयास नहीं किया होगा, जितना कि आवश्यक था। फिर से तुम धोखा खा जाते हो।

एक बस में बैठी हुई स्त्री ने देखा कि उसके बगल में बैठा पुरुष अपना सिर इधर से उधर एक पेंडुलम की भांति हिलाए जा रहा है। स्त्री की उत्सुकता जगी और उसने उस व्यक्ति से पूछा कि वह ऐसा क्यों कर रहा है।

उस व्यक्ति ने तुरंत उतर दिया: 'ताकि मैं समय बता सकूं।'

अच्छा तो बताइए कि अब क्या समय है? स्त्री ने पूछा।

'साढ़े चार', उसने सिर को उसी तरह हिलाते हुए उतर दिया।

'आप गलती में है–इस समय पौने पांच बजे हैं।'

'ओह, लगता है में धीमा पड़ गया!' उस व्यक्ति ने अपनी गति बढाते हुए उतर दिया।

बस ऐसे ही चलता रहता है: यदि तुम किसी चीज को प्राप्त नहीं कर पाते, तुम सोचते हो कि शायद तुम उतना प्रयास नहीं कर पा रहे हो, जितना कि करना चाहिए था। या कि तुम्हारी गति मंद थी, तुम्हारा प्रतियोगात्मक भाव दूसरों से प्रतियोगिता करने के लिए पर्याप्त न था। तुम पर्याप्त आक्रमक न थे। तुम पर्याप्त हिंसक न थे, कि तुम मंदगति और आलसी थे, कि अगली बार तुम्हें अपने आप को खींचना होगा। अगली बार तुम्हें अपना सार जोर लगा देना है–अगली बार तुम्हें अपनी तेजस्विता सिद्ध करके दिखानी ही देनी होगी।

तुम्हारी तेजस्विता से इसका कोई लेना देना नही है। तुम असफल हुए क्योंकि सफलता संभव ही नहीं है। तुम अपने प्रयास, गति, आक्रामकता के कारण से असफल नहीं हुए हो–नहीं। तुम इसलिए असफल नहीं हुए हो कि तुम्हारी कोई भूल थी। तुम इसलिए असफल हुए क्योंकि असफलता ही जगत में एक मात्र संभावना है। यहां

कोई कभी सफल नहीं होता। सफल हो ही नहीं सकता। सफलता संभव है ही नहीं। इच्छाएं पूरी हो नहीं सकती। और प्रक्षेपण तुम्हें कभी भी सचाई को देखने नहीं देते, और तुम सदा बंधन में ही रहते हो।

तुम भी उसी असफलता का बार-बार अनुभव करते हो जैसा कि मैंने किया है। तुम भी उसी असफलता को बार-बार अनुभव करते हो जैसे कि बुद्ध ने या सरहा ने किया है। तब अंतर क्या है? तुम असफलता का अनुभव तो करते हो पर तुम उससे कुछ सीखते नहीं। यही एकमात्र अंतर है। जिस क्षण तुम उससे सीखना प्रारंभ कर दोगे तुम एक बुद्ध हो जाओगे।

एक अनुभव, एक और अनुभव, एक और अनुभव, परंतु तुम इन अनुभवों को कभी इकट्ठा नहीं रखते–तुम निष्कर्ष नही निकालते! तुम कहते हो, 'यह स्त्री भयंकर सिद्ध हुई, माना–पर लाखों स्त्रियां और है। मैं दूसरी ढूंढ लूंगा।' यह स्त्री ही असफल सिद्ध हुई है, तुम फिर एक नई आशा करना, एक नया सपना देखना प्रारंभ कर देते हो, कि तुम कोई दूसरी स्त्री ढूंढने लग जाते हो। यदि एक स्त्री असफल हो जाती है, तो इसका मतलब ये नहीं की सभी स्त्रियां असफल हो गई। यदि एक पुरुष असफल हो गया तो, क्या दुनियां के सभी पुरुष असफल हो जायेगे। तुम्हारी उम्मीद सदा कायम रहती है। तुम आशा किए चले ही जाते हो। आशा तुम्हारे अनुभव के ऊपर जीतती चली जाती है। तुम न कभी थकते हो न रूकते हो और न सिखते हो।

एक संबंध एक बंधन हो जाता है, तुम महसूस करते हो कि कुछ गड़बड़ हो गई है–अगली बार तुम पूरी कोशिश करोगे कि यह बंधन न हो जाएं। लेकिन तुम सफल न हो सकोगे–क्योंकि यहां वस्तुओं के स्वभाव में ही सफलता नहीं है। असफलता की ही एक मात्र संभावना है: सफलता असंभव है।

जिस दिन तुम यह पहचानते हो कि असफलता ही एकमात्र संभावना है, कि सब संबंध झूठे है, कि वे सब आनंद जो दूर से चमकते हैं, झिलमिलाते हैं और चुंबक की भांति तुम्हें आकर्षित करते हैं। वे सब मात्र रिक्त स्थान हैं, इच्छाएं हैं, तुम स्वय को धोखा दे रहे हो–जिस दिन तुम इस तथ्य को पहहचानते हो, एक परिवर्तन, एक बदलाहट शुरु हो जाती है। तब एक नए आदमी का जन्म होता है।

दरवाजे को भड़भड़ाते हुए और स्कर्ट को फटकारते हुए हृष्टपुष्ट महीला ने रजिस्ट्रार के दफतर में प्रवेश किया।

'क्या आपने जॉन हेनरी से शादी करने के लिए यह लाइसेंस मुझे जारी किया था या नहीं?' एक कागज को मेज पर पटकते हुए वह कड़क कर बोली।

रजिस्ट्रार ने अपने चश्मे के पास लाकर उस कागज को गौर से देखा। ' हां, श्रीमती जी', उसने सावधानी पूर्वक कहा, 'मेरे खयाल में मैंने ही इसे जारी किया था। क्यों?'

'ठीक, तो फिर आप इस विषय में क्या करने जा रहे हैं?' वह चीखी। 'वह भाग गया है।'

सभी संबंध बस सतह पर सुंदर हैं, गहरे में वे एक तरह का बंधन ही हैं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि लोगों से संबध न बनाओ। मैं कह रहा हूं कि संबंध तो बनाओ पर यह कभी मत सोचो कि किसी भी संबंध से तुम्हें आनंद प्राप्त हो सकेगा। निश्चय ही संबंध तो बनाओ, संबंध तो तुम्हें बनाने ही होंगे–तुम संसार में जो हो। लोगों से संबंध तो तुम्हे बनाने ही होंगे–परंतु कोई संबंध तुम्हें आनंद नहीं दे सकेगा। क्योंकि यह कभी बाहर से नहीं आता है। यह तो सदा भीतर ही होता है। यह सदा अंदर ही बहता है।

और सरहा कहता है: जो व्यक्ति यह विश्वास करता है कि यह बाहर से आता है, वह एक जानवर है, पशु है–वह बंधन में है। और वह व्यक्ति जो इस तथ्य को पहचान लेता है कि यह कभी बाहर से नहीं आता, यह जब भी आता है सदा भीतर से ही आता है, बस वह व्यक्ति स्वतंत्र हो जाता है। वही मात्र आदमी होता है, वही सच

में मनुष्य कहलाया जा सकता है। अब वह पशु नहीं रहा। वह बंधन मुक्त हो गया। उस स्वतंत्रता के साथ ही मनुष्य का जन्म होता है।

पशु नहीं समझ पाते कि संसार

है दुख, पर समझते हैं वे विद्वान तो

जो पीते हैं इस स्वर्मिक अमृत को...

यह स्वार्गिक अमृत क्या है? यह उस मधु के ही सादृश्य है जो पहले ही से तुम्हारे मुख में है–और तुमने इसका स्वाद तक नही लिया है। तुम्हें स्वाद लेने का समय ही नहीं है। संसार इतना अधिक है और तुम एक स्थान से दूसरे स्थान तक दौड़ते रहते हो। तुम्हें उस मधु का स्वाद लेने की, जो पहले से ही ही मौजूद है, फुर्सत नही है।

यही वह स्वार्गिक अमृत है–यदि तुम इसे चख लो, तुम स्वर्ग में होते हो। यदि तुम इसका स्वाद ले लो, तब कोई मृत्यु नहीं है–यही कारण है कि यह स्वार्गिक अमृत कहलाता है: तुम अमृर्त्य हो जाते हो। तुम अमृर्त्य हो। तुमने यह देखा नहीं है पर तुम अमृर्त्य हो। कोई मृत्यु नहीं है: तुम मृत्यु-हीन हो। आकाश मृत्यु-हीन है। केवल बादल जन्मते और मरते है। नदियां जन्मती और मरती हैं, समुंद्र मृत्यु हीन है। ऐसे ही तुम भी हो।

सरहा ये सूत्र सम्राट से कह रहा है। सरहा उसे तार्किक ढंग से सुनिश्चित नहीं करा रहा है। सच में तो वह अपने अस्तित्व में सम्राट के लिए उपलब्ध करा रहा है। और वह उसे नया परिप्रेक्ष्य दे रहा है–सरहा की और देखने का। तंत्र जीवन की और देखने का एक नया परिप्रेक्ष्य है। और मुझे अभी तक कोई ऐसी चीज नहीं मिली जो तंत्र से गहन हो।

आज इतना ही

चौथा प्रवचन

प्रेम एक मृत्यु है

(दिनांक 24 अप्रैल 1977 ओशो आश्रम पूना।)

पहला प्रश्न: ओशो, आप में वह सब-कुछ हैं जो मैंने चाहा था, या जो मैंने कभी चाही या मैं कभी चाह सकती थी। फिर मुझ में आपके प्रति इतना प्रतिरोध क्यों है?

शायद इसी कारण–यदि तुममें मेरे प्रति गहन प्रेम है तो गहन प्रतिरोध भी होगा। वे एक-दूसरे को संतुलित करते हैं। जहां कहीं पर प्रेम है, वहां प्रतिरोध तो होगा ही। जहां कहीं भी तुम बहुत अधिक आकर्षित होते हो, तुम उस स्थान से, उस जगह से भाग जाना भी चाहोगे–क्योंकि अत्यधिक आकर्षित होने का अर्थ है कि तुम अतल गहराई में गिरोगे, जो तुम स्वयं हो वह फिर न रह सकोगे।

प्रेम खतरनाक है। प्रेम एक मृत्यु है। यह स्वयं मृत्यु से भी बड़ा घातक है, क्योंकि मृत्यु के बाद तो तुम बचते हो लेकिन प्रेम के बाद तुम नहीं बचते। हां, कोई होता है परंतु वह दूसरा ही होता है, आपमें कुछ नया पैदा होता है। परंतु तुम तो चले गए इसलिए भय है।

जो मेरे प्रेम में नही है, वे बहुत समीप आ सकते हैं और फिर भी वहां भय न होगा। जो मेरे प्रेम में है, वे हर कदम उठाने में भयभीत होंगे, झिझकते हुए वे ये कदम उठाएंगे। उनके लिए यह बहुत कठिन होगा–क्योंकि जितने वे मेरे समीप आते जाएंगे, उनका अहंकार उतना ही कम होता जाएगा। यही मेरा मृत्यु से तात्पर्य है। जिस क्षण वे सच में मेरे समीप आ गए होते है, वे नहीं रहते, ठीक वैसे ही जैसे कि मैं नहीं रहा।

मेरे समीप आना एक शून्य की अवस्था के समीप आना है। अतः साधारण प्रेम तक में प्रतिरोध होता है–यह प्रेम तो आसाधारण है, यह प्रेम तो अद्वितीय है।

यह प्रश्न आनंद अनुपम का है। मैं देखता रहा हूं। वह लगातर प्रतिरोध कर रही है। यह प्रश्न बौद्धिक मात्र नहीं है, यह अस्तित्वगत है। वह बड़ी लड़ाई लड़ रही है...सब बेकार है, वह तुम जीत तो सकती ही नहीं। तुम भाग्य शाली हो कि तुम नहीं जीत सकती। तुम्हारी हार निश्चित है, इसे एकदम सुनिश्ति ही समझो। मेने उस प्रेम को उसकी आंखों में देखा है, वह इतना शक्तिशाली है कि वह समस्त प्रतिरोध को समाप्त कर देगा, वह अहंकार के बचे रहने में सारे प्रयत्नों के ऊपर विजय पा लेगा।

जब प्रेम शक्तिशाली होता है, अहंकार चेष्टा कर सकता है। पर अहंकार के लिए यह एक पहले से ही हारता हुआ युद्ध होता है। यही कारण है कि इतने सारे लोग बिना प्रेम के जीते हैं। वे प्रेम की बातचीत तो करते है, परंतु प्रेम को जीते नहीं। वे प्रेम की कल्पना तो बहुत सुंदर करते है, पर उसे यथार्थ कभी नहीं करते–क्योंकि प्रेम को यथार्थ करने का अर्थ है कि तुम्हें अपने को पूरी तरह से नष्ट करना होगा।

जब तुम गुरु के पास आते हो, तब या तो पूर्ण विनाश होता है, या कुछ भी नहीं होता। या तो तुम्हें मुझ में विलीन होना होगा और मुझे तुममें विलीन होने देना होगा या तुम यहां हो सकते हो और कुछ भी न होगा। यदि अहंकार बना रहता है तो यह मेरे और तुम्हारे बीच में एक चीन की दीवार बन जाती है। और चीन की दीवाल को तो आसानी से तोड़ा भी नहीं जा सकता, परंतु अहंकार तो एक और भी अधिक सूक्ष्म ऊर्जा है।

लेकिन एक बार प्रेम जन्म जाए, तब अहंकार नपुसंक हो जाता है। और मैंने यह प्रेम अनुपम की आंखों में देखा है। ये 'वहां' है! एक बड़ा सघर्ष होने जा रहा है, पर अच्छा है! क्योंकि जो बहुत सरलता से आ जाते हैं, वे आते ही नहीं। जो बड़ा समय लेते है, जो इंच-इंच लड़ते है, सतत संघर्ष करते है केवल वे ही आते है।

मगर चिंता की कोई बात नहीं है। यह यात्रा बहुत बहुत लम्बी होने जा रही है। अनुपम को आने में समय लगेगा, शायद कई वर्ष, परंतु चिंता की कोई बात नहीं है। वह सही रास्ते पर है। परंतु उस बिंदु को जहां से वापस हुआ जा सकता है, उसे वह पार कर चूकि है। उस विराम बिंदु के पार जा चूकि है। अतः यह केवल समय का प्रश्न है। वह मुझे मंजूर है। क्योंकि मैं कभी किसी के साथ जबरदस्ती नहीं करता–क्योंकि उसकी कोई जरुरत ही नहीं होती। और उन्हें पर्याप्त समय और ढील देना अच्छा भी है। ताकि वे अपने से ही आ सकें। जब समर्पण स्वतंत्रता से आता है, इसमें एक सौंदर्य होता है।

पर तुम भरोसा कर सकती हो कि यह आ रहा है, यह मार्ग में ही है। तुम्हारे अस्तित्व के गहनतम केंद्र में तो यह घट ही चुका है, अब बस समय का ही प्रशन है, ताकि गहनतम केंद्र तुम्हारे ऊपरी मन को सूचित कर सके। अपने हृदय से तो तुम मेरे पास आ ही गई हो। केवल मन का संघर्ष तुम्हें धेरे हुआ है। केंद्र पर तो तुम मेरे समीप आ ही गई, केवल परिधि पर लड़ाई चल रही है। किले का समर्पण तो हो ही गया है।

तुमने उस जापानी सैनिक के विषय में सुना होगा जो बाद तक भी लड़ता रहा, द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हो चुका था। कितने साल बीत गए थे, द्वितीय विश्व युद्ध के बीस वर्ष बाद भी वह अभी लड़े ही जा रहा था–उसे पता ही न था कि जापान ने समर्पण कर दिया था। वह इंडोनेशिया के घने जंगलों में कहीं था और सोच रहा था कि वह जापान के सम्राट का सैनिक है, और युद्ध अभी चल रहा है। वह पागल रहा होगा! वह छिप कर रहता था, और लोगों को मार कर भाग जाता था–अकेला ही।

अभी जब कुछ वर्ष पहले वह जापान वापस गया, एक हीरो की भांति उसका स्वागत किया गया। एक तरह से वह हीरो है भी। उसे पता न था–पर वह बड़ा संकल्पवान व्यक्ति रहा होगा। उसने औरों से सुना था–ऐसा नही कि उसने सुना ही न था। बीस साल तक तुम बिना सुने कैसे रह सकते हो? कि जापान ने समर्पण कर दिया था, युद्ध समाप्त हो गया था। मगर उसका कहना था, 'जब तक मेरे कमांड़र की आज्ञा मुझे नहीं मिलती, मैं समर्पण नही करूंगा।' अब, कमांडर तो मर चुका था उसकी आज्ञा मिलने का कोई उपाय भी न था। और वह अपने सारे जीवन लड़ता ही रहने वाला था। उसे पकड़ पाना बहुत कठिन था, वह बड़ा खतरनाक था पर अंततः वह पकड़ा ही गया।

ठीक यही बात अनुपम के साथ भी है: प्रमुख कार्यालय ने समर्पण कर दिया है, कमांडर मर चुका है! बस परिधि पर, इंडोशिया के जंगलों में तुम लड़ रही हो, अनुपम। पर देर या सवेर, तुम चाहे कितनी ही पागल क्यों न होओ, समाचार तुम्हें मिल ही जाएगा...।

दूसरा प्रश्न: ओशो, मैं सत्य हो जाना चाहूंगा, पर यह क्या है और कैसे हुआ जाता है। मैं महसूस करता हूं कि मैं एक दुष्चक्र में, एक कारागृह में हूं। मैं बाहर आना चाहूंगा पर कैसे?

पहली बात: तुम कारागृह में नहीं हो–कोई भी वहां नहीं है, सच कभी वहां कोई नहीं रहा है। कारागृह एक मान्यता है। निश्चय ही तुम मूच्छित हो पर तुम कारागृह में नहीं हो। कारागृह तो एक स्वप्न है, एक दुखस्वप्न है जो तुमने अपनी नींद में देख लिया है। इसलिए आधारभूत प्रश्न यह नहीं है कि कारागृह से बाहर कैसे आया जाए, आधारभूत प्रश्न यह है कि नींद से बाहर कैसे आया जाए। और किस तरह से तुम प्रश्न निर्मित करते हो, इससे बड़ा अंतर पड़ता है। यदि तुम सोचना शुरू कर दो, 'कारागृह से बाहर कैसे निकला जाए?' तब तुम उस कारागृह से जो है ही नहीं–तुम लड़ना प्रारंभ कर दोगे, तब तुम गलत दिशा में चलना प्रारंभ कर दोगे।

यही तो लोग सदियों से करते आए है। वे सोचते है कि वे कारागृह में हैं, इसलिए वे लगातार कारागृह से लड़ते ही रहते है। वे इस तंत्र से लड़ते उस तंत्र से लड़ते है, वे दीवारों से लड़ते है! वे खिड़कियों की सलाखों से लड़ते हैं, वे बस किसी तरह से निकल भागना चाहते है। वे उस कारागृह का ताला खोलने की लाख चेष्टा करते

है, परंतु यह संभव ही नहीं है, न तो वहां ताले का अस्तित्व है और न वहां कि कारागृह का। जेलर, रक्षक, दीवारे, सलाखें और ताले ये सभी कल्पना मात्र हैं।

सच पूछो तो तुम एक गहरी नींद में हो, एक दुखस्वप्न देख रहे हो। मूल आधारभूत प्रश्न यह है कि नींद से बाहर कैसे आया जाए।

मैंने सुना है, ...

यही तुम्हारी स्थिति है। तुम ताले में बंद नहीं हो, तुम कारागृह में नहीं हो–तुम बस नशे में हो। तुम सोचते हो कि तुम कारागृह में हो। यह मात्र एक कल्पना है, एक विचार है। जो रह-रह कर तुम्हारे मन से उठता है, क्योंकि तुम स्वयं को सब और से बहुत सीमित अनुभव करते हो। उस सीमा के कारण ही तुम्हें कारागृह का विचार उठता है। जहां कहीं भी तुम जाओ, वही सीमा आ जाती है, तुम बस उतनी दूर ही जा सकते हो उससे आगे नहीं। सच में तो वहां कोई दीवाल है ही नहीं, जो तुम्हें रोक रही है। परंतु तुम अनुमान लगा लेते हो कि चारों और एक दीवार है। शायद अदृश्य, शायद बहुत पारदर्शी कांच की बनी हुई दीवाल। तुम उसके पार तो देख सकते हो पर जब भी तुम किसी भी दिशा में आगे बढ़ते हो तो टकरा जाते हो। और एक निश्चित बिंदु से आगे तुम जा ही नहीं पाते हो।

इसी सब से तुम्हारे मन में कारागृह का विचार उठता है कि तुम एक कारागृह में हो। परंतु यह सीमा भी नींद के ही कारण है। नींद में तुम्हारा तादात्म्य देह के साथ हो जाता है, अतः देह की सीमाएं तुम्हारी सीमाएं हो जाती है। और मन की भी अपनी सीमा है, उन सीमाओं को तुम पार ही नहीं कर पाते हो।

परंतु हो तुम असीम। तुम सीमा-रहित हो। जहां तक तुम्हारे शुद्ध अस्तितव की बात है, कोई सीमाएं नही हैं–तुम परमात्मा हो। परंतु इस भगवत्ता को जानने के लिए, कारागृह से लड़ई लड़ना बंद कर दो, वरना तुम इसे कभी न जान पाओगे। अगर तुम जितने अधिक पराजित होगे, उतनी ही अधिक हताशा तुम होते चले जाओगे। उतना ही ज्यादा तुम्हारा आत्म विश्वास खोता चला जाएगा, उतना ही ज्यादा तुम यह अनुभव करने लगोगे कि इससे बाहर निकल पाना तो असंभव है।

ज्यादा जागरूक बनने से प्रारंभ करो। थोड़े अधिक सजग, अधिक ध्यानपूर्ण होने से प्रारंभ करो। बस यही एकमात्र उपाय है, जो तुम्हें और अधिक सजग बनायेगा।

जैसे-जैसे तुम्हारी जागरूकता बढ़ेगी तुम महसूस करने लगोगे कि वे दीवारें जो बहुत समीप थी, अब उतनी समीप नहीं रही है, वे लगातार दूर होती जा रही है। तुम्हारा कारागृह बड़ा, और बड़ा होता जा रहा है। जितनी अधिक तुम्हारी चेतना विस्तृत होगी, उतना ही तुम देखोगे कि तुम्हारा कारागृह अब छोटा नहीं रहा। चलने के लिए, जीने के लिए, जानने के लिए, प्रेम के लिए, अब तुम्हारे पास अधिक विस्तृत चेतना के लिए स्थान उपलब्ध है। और फिर तुम आधार भूत बात को समझ जाओगे: जितना कम चैतन्य, दीवारें उतने ही समीप आ जाती है। अचेतन और दीवारे तुम्हें चारों और से तुम्हें छूने लग जाती हैं। तुम एक छोटी सी कोठरी में होते हो, जरा सा हिलना डुलना भी संभव नहीं होता।

इस वाक्य को स्मरण रखो: चेतना का विस्तार। उस विस्तार के साथ तुम फैलते हो। एक दिन जब तुम्हारी चेतना पूर्ण होती है, और भीतर अंधकार की एक छाया भी पीछे नहीं छूटती, जब तुम्हारे भीतर कुछ भी अचेतन नहीं बचता, सब चेतन हो गया होता है। जब प्रकाश चमकीला होकर जल रहा होता है। और भीतर तुम जागरूकता से प्रदीप्त होते हो–तब अचानक देखते हो कि आकाश भी तुम्हारी सीमा बनता, असल बात तो यह है कि तुम्हारी कोई सीमा है ही नहीं। यही सभी युगों के रहस्यवादियों का कुल अनुभव है। जब जीसस कहते हैं: 'मैं और स्वर्ग में मेरे पिता दोनों एक ही है।' उस समय उनका कहने का यही अर्थ है। वह कह रहे है, मेरी कोई

सीमाएं नही है। यह उसी बात को कहने का एक ढंग है, एक लाक्षणिक ढंग, एक सांकेतिक ढंग। 'मैं और स्वर्ग में मेरे पिता दो नहीं बल्कि एक ही है।' मैं, इस छोटे से शरीर में रहने वाला और सारे अस्तिव में फैला वह, हम दो नहीं एक ही हैं। मेरा स्त्रोत और मैं एक हैं मैं उतना ही विशाल हूं जितना कि यह अस्तित्व।

यही अर्थ तो है जब एक उपनिषद का ऋषि घोषणा करता है: 'अहं ब्रह्मास्मि'–मैं पूर्ण हूं, मैं ही परमात्मा हूं। यह वचन जागृति की एक ऐसी अवस्था में उच्चारित होता है जहां कोई मूर्च्छा नहीं होती।

यही तो अर्थ है जब सूफी, 'मंसूर' घोषणा करता है, 'अनल हक–मैं ही सत्य हूं।'

ये महान वचन बड़े महत्वपूर्ण हैं। ये बस इतना ही कहते हैं कि तुम उतने ही बड़े हो जितनी तुम्हारी चेतना–न जरा से अधिक, न जरा से कम: यही कारण है कि नशीली दवाओं में इतना आकर्षण है, क्योंकि वे रासायनिक ढंग से तुम्हारी चेतना को उससे कुछ अधिक विशाल बना देती है, जितनी की यह होती है। एल. एस. डी. या मारिजुआना या मेस्कालिन, ये चेतना का आकस्मिक विस्तार तुम्हें प्रदान करती है। निश्चय ही यह जबरदस्ती और हिंसा है। इसे नहीं किया जाना चाहिए। और यह रासायनिक है–तुम्हारी आध्यात्मिकता से इसका कुछ लेना-देना नही है। तुम इसके द्वारा विकसित नहीं होते, विकास तो स्वैच्छिक प्रयास से ही आता है। विकास सस्ता नहीं है, कि एल.एस.डी. की छोटी सी मात्रा, एक बहुत छोटी सी मात्रा तुम्हें आध्यात्मिक विकास प्रदान कर सके।

एलडुअस हक्सले बिलकुल ही गलत था जब उसने यह सोचना शुरू कर दिया कि एल. एस. डी. से उसने वही अनुभव प्राप्त कर लिया है जो कबीर, या एकहार्ट, या बाशो को मिला–नहीं यह वह अनुभव नहीं है। हां, कुछ समानता है इनमें, वह समानता केवल चेतना के विस्तर में हैं। परंतु बड़ी असमानता भी है, यह एक जबरदस्ती की बात है; यह तुम्हारी जैविकता व तुम्हारी रसायनिकता के साथ हिंसा है। और तुम वही बने रहते हो। तुम इससे विकसित नहीं होते। एक बार नशे का असर उतर जाए, तुम वही आदमी हो जाते हो, वहीं छोटा सुकड़ा आदमी।

कबीर फिर से वह कभी नही होंगे क्योंकि चेतना का वह विस्तार कोई थोपी हुई चीज न था–वह उसमे विकसित हुआ है। अब कोई वापसी नहीं है, यह उनकी पूर्णता में समा गया है। यह उनका होना हो गया है। उन्होने इसे अपने में समा लिया है। पर इसमें एक आकर्षण है, ये आकर्षण सदा से रहा है। आधुनिक पीढ़ी से इसका कुछ लेना देना नहीं है। यह सदा रहा है, वेदों के समय से ही: मनुष्य ने सदा ही नशे की और अदम्य आकर्षण का अनुभव किया है। यह एक झूठा सिक्का है, यह तुम्हें एक बड़े अस्वाभाविक ढंग से सच्चाई की एक झलक देता है, परंतु मनुष्य तो सदा से विस्तार खोजता रहा है। मनुष्य विशाल बनना चाहता है।

कभी वह धन के द्वारा विशाल बनना चाहता है–हां, धन तुम्हें विस्तार की एक अनुभूति प्रदान करता है, यह भी एक नशा है। जब तुम्हारे पास काफी धन होता है, तुम अनुभव करते हो कि तुम्हारी सीमाएं तुम्हारे बहुत समीप नहीं हैं–वो तुमसे काफी दूर हैं। तुम जितनी चाहो उतनी कारें रख सकते हो, तुम सीमित नहीं हो। यदि अचानक तुम एक रॉल्स रॉयस रखना चाहो, तुम रख सकते हो–तुम स्वतंत्र अनुभव करते हो। जब धन पास न हो, एक रॉलस रॉयस पास से गुजरती हो, इच्छा उठती है...परंतु सीमा।

तुम्हारा खीसा खाली है। तुम्हारे पास कोई बैंक-बैलेंस भी नहीं। तुम असाहाए महसूस करते हो–दीवाल सामने है; तुम इसके पार नहीं जा सकते। कार वहां है, तुम कार देखते हो, तुम इसे अभी लेना चाहोगे–परंतु तुम्हारे और कार के बीच में एक दीवार है: गरीबी की दीवाल।

धन तुम्हें विस्तार की, स्वतंत्रता की एक अनुभूति प्रदान करता है। परंतु वह भी एक झूठी स्वतंत्रता है। तुम बहुत सी चीजें उसके पास रख सकते हो, पर इससे तुम्हें विकसित होने में कोई सहायता नहीं मिलेगी। तुम

अधिक नही हो जाते–हां तुम्हारे पास अधिक होता है। परंतु तुम्हारा होना तो उतना ही रहता है। यही बात सत्ता के साथ भी है: यदि तुम किसी देश के प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति हो, तुम शक्तिशाली अनुभव करते हो–फौज, पुलिस, कानुन–राज्य का सारा ताम-झाम तुम्हारे हाथ में होता है। देश की सीमाएं तुम्हारी होती है। उस समय तुम अपने आप को बड़ा शक्तिशाली अनुभव करते हो। परंतु वह भी एक नशा है।

मैं तुमसे यह बात कह रहा हूं: राजनीति और धन दोनों उतने ही बड़े नशे हैं जितने कि एल. एस. डी. या मारिजुआना–और कहीं ज्यादा खतरनाक। यदि एल. एस. डी. और धन के बीच चुनाव करना ही पड़े, तो एल. एसी. डी. कहीं बेहतर है और अधिक धामिक है। क्यों में ऐसा कहता हूं? क्योंकि एल. एस. डी. से तो तुम केवल स्वयं को नष्ट करते हो, परंतु धन से तो तुम दूसरो का भी विनास कर देते हो। एल. एस. डी. से तो तुम मात्र स्वयं के रसायन को, स्वयं की जैविकी को नष्ट करोगे, लेकिन राजनीति द्वारा तुम लाखों लोगों का विनाश कर दोगे।

जरा सोचो, एडोल्फ हिटलर एक नशेड़ी हुआ होता, तो लाखों लोगो को इस तरह बेहरीमी से कत्ल न करवाता। संसार कहीं अधिक बेहतर और सुंदर बना होता। यदि वह एल.एस.डी. लेता होता, या उसके हाथ में सदा सिरिंज रहती, हम स्वयं को धन्य समझते, हमने परमात्मा को धन्यवाद दिया होता: यह तो बहुत अच्छा हुआ होता कि वह अपने घर में रहता, नशे के इंजेक्शन लेता रहता, पत्थर खाता रहता। उसके बिना संसार कितनी सरलता और सहजता से चल रहा होता।

धन या राजनीति कहीं अधिक खतरनाक नशे है। अब यह बड़ी विडंबना है: राजनेता सदा नशे के विरोध में है, धनवान सदा नशे के विरोध में है–और उन्हें यह पता ही नहीं कि वे स्वयं नशेबाज है। और उनके नशे की तरंग कहीं ज्यादा खतरनाक है, क्योंकि उनकी तरंग में दूसरों का जीवन भी समाहित है। एक आदमी जो चाहे वह करने के लिए स्वतंत्र है। एल.एस.डी. अधिक से अधिक आत्महत्या हो सकती है। यह हत्या तो कभी नही है। यह आत्महत्या है। और आत्म हत्या करने के लिए तो आदमी सदा स्वतंत्रता होनी चाहिए–क्योंकि यह तुम्हारा जीवन है, यदि तुम इसे नही जीना चाहते तो ठीक है। परंतु धन तो हत्या है, ऐसे ही सत्ता-राजनीति भी हत्या है–यह दूसरों को मार डालती है।

मैं तुम्हें यह नहीं कह रहा हूं कि तुम नशा चुन लो। मैं केवल इतना ही कह रहा हूं कि सभी प्रकार के नशे गलत है खराब है। चाहे वो धन, राजनीति, एल. एस. डी.,या वो मारिजुआना का हो। तुम इन चीजों को चुनते हो क्योंकि तुम्हें यह गलत ख्याल है कि ये तुम्हारी चेतना को विस्तरित कर देंगी। चेतना को बड़ी सरलता से बड़ी आसानी से विस्तार किया जा सकता है, क्योंकि सच तो यह है कि यह पहले से ही विस्तृत है। तुम एक गलत धरणा में जी रहे हो। तुम्हारी ये गलत धारणा ही तुम्हारी सीमा है, तुम्हारा कारागृह है।

तुम कहते हो: 'मैं सत्य हो जाना चाहूंगा...'

तुम यह चाह या अचाह नही सकते। यह तुम्हारे चुनाव का प्रश्न नहीं है। सत्य तो केवल है। तुम इसे चाहो या न चाहो, यह असंगत बात है। तुम झूठ चून सकते हो पर तुम सत्य नही चुन सकते–सत्य तो वहां है ही। यही कारण है कि कृष्णमूर्ति चुनाव रहित जागरूकता पर इतना जोर देते है। तुम सत्य का चुनाव नहीं कर सकते, इसका तुम्हारे चुनाव से तुम्हारी पसंद-नापसंद से कुछ लेना देना नही है।

जिस क्षण तुम अपना चुनाव छोड़ देते हो, सत्य वहां होता है। तुम्हारे चुनाव के कारण ही तो तुम उसे नहीं देख पाते। तुम्हारा चुनाव तुम्हारी आंख पर एक पर्दे का काम करता है। तुम्हारी पसंद-नापसंद ही तो समस्या है। तुम कुछ और चाहते हो इसीलिए तो तुम जो है उसे नहीं देख पाते, और लगातार चूकते चले जाते

हो। चाह-अचाह के द्वारा तुम अपनी आंखों को रंगीन चश्मे से ढ़क लेते हो। और तुम अस्तित्व का सच्चा रंग जैसा कि वह है तुम उसे देख ही नही पाते।

तुम कहते हो, 'मैं सत्य हो जाना चाहूंगा...।'

इसी कारण तो तुम असत्य रहते हो। सत्य तुम हो! चाह-अचाह को छोड़ दो! असत्य तुम कैसे हो सकते हो? होना सत्य है। अस्तित्व सत्य है। तुम यहां हो, जीवित, श्वास लेते हुए। तुम असत्य कैसे हो सकते हो? तुम्हारा चुनाव: चुनाव ही से तो तुम ईसाई, हिंदू या मुसलमान हो गए हो। सत्य से तुम हिंदू, मुस्लिम या ईसाई नहीं हो। चुनाव से ही तो तुम्हारा तादात्म्य भारत से, चीन से, जर्मनी से हो गया है। परंतु सत्य से तो समस्त तुम्हारा है और तुम समस्त के हो–तुम सर्विलौकिक हो। समस्त तुममें एक समष्ठि की भांति जीता है। चुनाव, पसंद-नापसंद किया नहीं की तुम गुमराह हो गए।

अब तुम कहते हो, 'मैं सत्य हो जाना चाहूंगा...' तब सत्य के नाम पर भी तुम असत्य हो जाओगे। इसी तरह तो एक व्यक्ति ईसाई हो जाता है, क्योंकि वह सोचता है कि ईसाइयत सत्य है और 'मैं सत्य होना चाहूंगा।' इसलिए वह ईसाई हो जाता है। कृपाय ईसाई मत बनो, हिंदू मत बनो। तुम एक ईसा हो, फिर ईसाई क्यों बनना? 'ईसा होना' तुम्हारा स्वभाव है। क्राइस्ट होने का जीसस से कोई मतलब नहीं है, यह तुम्हारी भी उतनी ही है, जितनी की जीसस की। क्राइस्ट होना तो एक चुनाव रहित जागरूता की दशा है।

इसलिए कृपया इच्छा के रूप में सोचना मत प्रारंभ करो: 'मैं सत्य हो जाना चाहूंगा।' अब यह तो असत्य होने का ढंग है। इस इच्छा को छोड़ दो–बस होओ, हो जाने की चेष्ठा मत करो। हो जाना असत्य हो जाना है: होना सत्य है। और इस अंतर को समझो।

हो जाना भविष्य में है, इसका एक लक्ष्य है। होना अभी-यहां है; यह एक लक्ष्य नहीं है, यह तो पहले से है ही। इसलिए जो कुछ भी तुम हो, बस वही हो जाओ, कुछ और हो जाने की चेष्टा न करो। तुम्हें आदर्श लक्ष्य सिखाए गए हैं–कुछ बनो। सदा तुम्हें कुछ और बन जाने के लिए विवश किय गया है।

मेरी शिक्षा कुल इतनी है: जो कुछ भी, कोई भी, कुछ भी तुम हो वहीं सुंदर है। यह पर्याप्त से भी अधिक है। तुम बस वही हो रहो। हो जाना छोड़ो...हो जाओ।

और फिर स्वाभाविकतः, जब तुम पूछते हो, 'मैं सत्य हो जाना चाहूंगा, पर यह क्या है और कैसे हुआ जाता है?' एक बार तुम हो जाने के ढंग में सोचना प्रारंभ कर दो, तब निश्चय ही तुम जानना चाहोगे कि लक्ष्य क्या है: यह क्या है? यह सत्य क्या है जो मैं हो जाना चाहता हूं? और तब यह स्वाभाविक है कि 'लक्ष्य' आता है, और 'कैसे' भी आता है: इसे कैसे प्राप्त किया जाए? फिर सारी तकनीक, विधि...।

मैं कह रहा हूं कि तुम वह हो। उपनिषद का ऋषि कहता है: तत्वमसि-तुम वह हो। तुम पहले से ही वह हो। हो जाने का प्रश्न ही नहीं है। परमात्मा कहीं भविष्य में नहीं है। परमात्मा तो अभी यहीं इसी क्षण, तुम्हारे भीतर-बाहर सब जगह, देखते हो चारों और केवल परमात्मा ही है, किसी और चीज का कोई अस्तित्व ही नहीं है। जो भी है वही दिव्य है।

इसलिए तुम केवल होओ। हो जाने का प्रयत्न मत करो। फिर एक बात से दूसरी बात निकलती है। यदि तुम हो जाना चाहते हो, तब स्वाभाविक रूप से विचार उठता है: क्या तुम आदर्श हो? मुझे क्या हो जाना है? तब तुम्हें एक आदर्श की कल्पना करनी होगी। की मुझे इन के जैसा बनना है, ईसा कि तरह, बुद्ध की तरह या फिर कृष्ण की तरह। तब तुम्हें एक प्रतिमा को चुनाना होगा, और तब तुम एक कार्बन कॉपी बन कर रह जाओगे।

कृष्ण कभी दोहराएं नहीं गए। क्या तुम एक सरल तथ्य नहीं देख सकते? कृष्ण दुबारा कभी नहीं हुए। क्या तुम एक इतना सरल तथ्य नहीं देख सकते कि बुद्ध को कभी दोहराया नहीं जा सकता। हर व्यक्ति अद्बितीय है, बिल्कुल अद्बितीय–और वही तुम भी हो। यदि तुम कोई और होना चाहोगे, तुम एक झूठ हो, मात्र कृत्रिम अस्तित्व। तुम एक कार्बन कॉपी हो गये हो। मूल बनो! अतः, तुम केवल स्वयं हो सकते हो। कहीं जाने को नहीं है, कुछ हो जाने को नहीं है।

लेकिन अहंकार कोई लक्ष्य चाहता है। अहंकार का अस्तित्व ही वर्तमान क्षण और लक्ष्य के बीच में होता है। जरा अहंकार की कार्य-विधि को तो देखो। जितना बड़ा तुम्हारा लक्ष्य होगा, उतना ही बड़ा अहंकार होगा। यदि तुम एक क्राइस्ट बनना चाहो, उतना ही बड़ा अहंकार होता है और शायद पवित्र भी। परंतु इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। पवित्र अहंकार भी उतना ही अहंकार है जितना कि कोई और अहंकार, शायद साधारण अहंकारों से कहीं अधिक खतरनाक।

यदि तुम एक ईसाई हो, तुम एक अहंकार-यात्रा पर हो। अहंकार का अर्थ इतना ही है कि तुम्हारे और लक्ष्य के बीच की दूरी। लोग मेरे पास आते है और पूछते है, 'अहंकार को कैसे छोड़े?' तुम अहंकार नहीं छोड़ सकते जब तक कि तुम

हो जाने के भाव को नहीं छोड़ते। तुम अहंकार तब तक नहीं छोड़ सकते जब तक तुम विचार, आदर्श, आशा, भविष्य को न छोड़ दो।

अहंकार रहता है वर्तमान क्षण और भविष्य के आदर्श के बीच में। आदर्श जितना बड़ा होगा, आदर्श जितना दूर होगा, अहंकार को रहने के लिए उतना ही बड़ा स्थान मिलेगा उतनी ही अधिक संभावनाएं मिलेंगी। यही कारण है कि एक धार्मिक व्यक्ति एक भौतिकवादी से अधिक बड़ा अहंकारी होता है। भौतिकवादी के पास उतना बड़ा स्थान नही हो सकता, जितना की धार्मिक व्यक्ति के पास संभव है। धार्मिक व्यक्ति तो परमात्मा होना चाहता है। अब यह बड़ी से बड़ी संभावना हो गई। इससे बड़ा और क्या आदर्श हो सकता है? धार्मिक आदमी मोक्ष पाना चाहता है, वह जन्नत, स्वर्ग जाना चाहता है। अब आपका अहंकार इस पूर्णता के विचार की छाया में जिएंगा।

मेरी बात को ध्यानपूर्वक सूनो! मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम्हें भगवान बनना है–मैं घोषणा करता हूं कि तुम भगवान हो। तब किसी अहंकार के उठ खड़े होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तुम तो वह हो ही। जरा ठीक से चारों और देखो...तुम वहीं तो हो। यहां और अभी होना है, स्वर्ग तो वर्तमान में है। यह वर्तमान क्षण का एक घटक है।

अहंकार फलता-फूलता तभी है, जब तुम्हारे पास लक्ष्य और आदर्श होते है। और अहंकार के साथ भी हजार समस्याएं हैं। एक और तो महान आदर्शो को रखना कितना भला जान पड़ता है। और दूसरी बात ये सदा तुम्हें अपराध भाव अनुभव कराते रहे है, निरंतर अपराध भाव क्योंकि तुम सदा उनसे कम रह जाते हो। वे आदर्श असंभव है, तुम उन्हें कभी प्राप्त कर ही नहीं सकते। उन्हें प्राप्त कर पाने का कोई उपाय ही नहीं है, इसलिए तुम सदा नीचे रह जाते हो। इसी तरह तो एक तरफ अहंकार फलता-फूलता है, और दूसरी तरफ अपराध भाव...यह अपाध भाव, अहंकार की छाया बन साथ चलता रहता है।

क्या तुमने कभी इस अदभुत बात की और ध्यान दिया है। अहंकारी व्यक्ति छोटी-छोटी बातों के प्रति भी बड़ा अपराध भाव अनुभव करता है। तुम एक सिगरेट फूंकते हो; यदि तुम अहंवादी हो, तुम अपराध भाव महसूस करोगे। अब धूम्रपान करना एक निर्दोष, मूर्खतापूण बात है–बहुत निर्दोष और मुर्खतापूर्ण। इसमें अपराध-भाव महसूस करने जैसा कुछ भी नही है, परंतु धार्मिक व्यक्ति अपराधी महसूस करेगा क्योंकि उसके

पास एक अहंकार है कि धूम्रपान करना एक गलत कार्य है। यह वास्तविकता है कि वह धूम्रपान करता है, दो बातें निर्मित करता है: आदर्श होना उसके मन में एक भली-अनुभूति पैदा करता है, कि 'मैं एक धार्मिक व्यक्ति हूं, मैं जानता हूं कि मुझे धूम्रपान नहीं करना चाहिए। मैं कोशिश भी करता हूं, मैं अपनी पूरी कोशिश कर रहा हूं... ,' परंतु वह अनुभव करता है कि वह बार-बार नीचे गिर जाता है। और जो व्यक्ति अपराध-भाव महसूस करता है वह हर किसी को अपराध भाव महसूस करवाना प्रारंभ कर देता है। यह स्वाविक है: कैसे तुम अकेले अपराध-भाव अनुभव करोगे? यह बहुत कठिन होगा, यह बहुत भारी होगा।

इसलिए अपराध-भाव से ग्रसित व्यक्ति चारों और अपराध-भाव निर्मित करता है। वह छोटी-छोटी बातों के लिए, महत्वहीन बातों के लिए हर किसी को अपराध-भाव अनुभव कराता है। यदि तुम्हारे बाल लंबे है, वह तुम्हें अपराध भाव महसूस कराएंगा। अब इसमें कोई बड़ी बात नहीं है, यह आदमी की अपनी जिन्दगी है–यदि कोई लंबे बाल रखना चाहे तो ठीक है! यदि तुम चीजों को अपने ढंग से कर रहे हो तो वह तुम्हें अपराध-भाव अनुभव कराएगी। तुम जो कुछ भी कर रहे होगे..., वह उसमें गल्तियां निकालेगे? गलतिया उसे निकालनी ही पड़ेंगी–वह अपराध भाव से पीड़ित है। कैसे वह अकेला पीड़ित होगा? जब हर कोई अपराध-भाव महसूस कर रहा होगा, तभी वह निश्चिंत होगा। कम से कम एक सांत्वना रहेगी एक दिलासा वह देता ही रहेगा कि, 'मैं अकेला ही इस नाव पर नहीं हूं, हर कोई इस नाव पर सवार है।'

दूसरों से अपराध-भाव अनुभव कराने की तरकीब है उन्हें आदर्श दे देना। यह एक बड़ी सूक्ष्म तरकीब है: माता-पिता बच्चों को आर्दश दे देते है कि 'इस' जैसा बनना है: वे स्वयं कभी इस जैसा नहीं रहे, कभी कोई नहीं रहा। अब ये बच्चों को आदर्श दे देते हैं, बच्चों को अपराध-भाव महसूस करने की बड़ी सूक्ष्म और चालाकी भरी तरकीब है। अब बच्चा बार-बार यह महसूस करेगा कि, 'मैं आदर्श के पास तक पहुंच नहीं पा रहा हूं, सच तो यह है कि मैं इससे दूर ही दूर होता जा रहा हूं।' अब इससे उसे एक पीड़ा होती है, जो हमेशा उसे नीचा दिखाती रखती है, हताशा बनाएं रखती है।

यही कारण है कि संसार में तुम इतना दुख पाते हो। यह वास्तविक नहीं है, नब्बे प्रतिशत तो उन आदर्शो के कारण है जो तुम पर थोप दिए गये है। और वे तुम्हें हंसनें नहीं देते, वे तुम्हें आनंदित नहीं होने देते। जिस व्यक्ति के पास कोई आदर्श नही है, वह कभी भी किसी अन्य को अपराध-भाव अनुभव नहीं करायेगा।

अभी उस श्याम एक नवयुवक मेरे पास आया और उसने कहा, 'मैं अपनी समयौनता (समलैंगिकता) के कारण बड़ा अपराधी अनुभव करता हूं। यह अप्राकृतिक है।' अब अगर वह महात्मा गांधी, वैटिकन पोप, या पुरी के शंकराचार्य के पास गया होता तो क्या हुआ होता? उन्होंने उसे सच में ही अपराध-बोध अनुभव कराया होता। और वह तैयार है किसी भी अत्याचारी के हाथों में पड़ने को। वह एकदम तैयार है, वह स्वयं ही निमंत्रण दे रहा है। वह महात्माओं को बुला ही रहा है। कि आओ और मुझे अपराध-भाव अनुभव कराओ। अकेला तो वह इस कार्य को ठीक से कर नही पा रहा है, अतः वह वह तथाकथित विशेषज्ञों को बुला रहा है कि आओ और आप मेरी मदद करो।

मगर वह आ गया गलत आदमी के पास। मैंने कहा: 'तो क्या हुआ। क्यों तुम इसे अप्राकृतिक मानते हो।'

उसने कहा, 'क्या यह अप्राकृतिक नहीं है?' वह बड़ा हैरान हुआ, उसे बड़ा धक्का लगा। 'यह प्राकृतिक नहीं है।'

मैंने कहा: 'यह अप्राकृतिक कैसे हो सकती है? प्रकृति की मेरी परिभाषा है, जो भी घटता है प्राकृतिक है। अप्राकृतिक घट ही कैसे सकता है?'

तुरंत, मेरे देखते-देखते वह बड्ढे से बहार आ गया। उसके चेहरे पर एक मुस्कान फैल गई। उसने कहा, 'यह अप्राकृतिक नहीं है? यह एक विकृति नहीं है? यह एक तरह कि असमान्यता नही है?'

और फिर मैंने उससे कहा: 'नहीं, ऐसा कुछ भी नही है।'

उसने कहा: 'परंतु, पशु तो समयौनी (समलैंगिक) नहीं होते।'

मैंने कहा: 'उनमें इतनी बुद्धिमता नहीं होती। वे तो बस एक सुनिशिचत जीवन जीते है। उनकी जैविकी उन्हें जैसी अनुमती देती है, वे उसी भांति जीते हैं। तुम जाओ और घास चरती हुई एक भैंस को देखो–वह बस एक विशिष्ठ घास ही खाती है, और कुछ भी नहीं। तुम सर्वोतम भोजन उसके सामने रख दो, वह पर्वाह ही नहीं करेगी, वह अपनी घास ही खाती रहेगी। उसके पास कोई विकल्प नहीं हैं। चैतन्य बहुत ही थोड़ा है, करीब-करीब न के बराबर। मनुष्य बुद्धिमान है। वह संबंधित होने के, जीने के नये ढंग खोजने का प्रयास करता है। मनुष्य एक मात्र ऐसा पशु है जो नये तरीके ढूंड़ता है। ऐसे तो एक मकान में रहना अस्वाभाविक है क्योंकि कोई पशु मकान में नही रहता–अतः क्या ये एक विकृति है? क्या कपड़े पहनना अप्राकृतिक है, कोई पशु कपड़े नहीं पहनता? भोजन पकाना अस्वाविक है, किसी पशु ने आज तक ऐसा नहीं किया। क्या पका हुआ भोजन खाना गलत है? लोगों का कुछ खिलाने या पिलाने के लिए आमंत्रित करना क्या अस्वाभाविक हैं–क्योंकि पशु तो जब भी खाना खाता है एकांत में चला जाता है। तुम एक कुत्ते को कोई चीज खाने की दो वह तुरंत उसे लेकर एक कौने में चला जायेगा। कुत्ते के लिए यह स्वभाविक है, परंतु तुम एक कुत्ते नहीं हो, तुम उससे कहीं अधिक उंचे हो। तुम्हारे पास अधिक बुद्धिमानिता है। तुम्हारे पास अनंत संभावनाएं है। आदमी हर काम को अपने ही ढंग से करता है–यही उसका स्वभाव है।

वह विश्रांत हुआ। मैं देख सकता था कि एक बड़ा बोझ, एक पहाड़ जो उसके सर पर था, अचानक उतर गया। मैं नहीं जानता कि कितने दिन तक वह स्वतंत्र और भारहीन रह सकेगा। कोई न कोई महात्मा उसे पकड़ ले सकता है, और फिर से यह विचार कि 'यह अस्वाभाविक है,' उसे दे सकता है। तुम्हारे महात्मा या तो परपीड़क होते है–या स्वयंपीड़क। उनसे जरा बचो। जब भी तुम किसी महात्मा को देखो, जितना तेज तुम भाग सकते हो, भागो। उससे पहले कि वह कोई अपराध-बोध तुम्हारे मन में ड़ाल दे।

जो कुछ भी तुम हो सकते हो, तुम हो। कोई लक्ष्य नहीं है। और हम कहीं नहीं जा रहे है। हम तो बस यहीं उत्सव मना रहे है। अस्तित्व कोई यात्रा नहीं है, यह तो एक उत्सव है। इसे एक उत्सव, एक आनंद ही समझो। इसे कृपा कर पीड़ा में न बदलो। इसे कर्तव्य में, कृत्य में न बदलो–इसे मात्र क्रीड़ा ही रहने दो।

धार्मिक होने से मेरा यही तात्पर्य है: न कोई अपराध, न भाव, न ही अहंकार, न किसी और तरह की कोई यात्रा–बस यहां-अभी रहना...रहना वृक्षों के साथ और पक्षियों के साथ, और नदियों के साथ, और पर्वतों के साथ, और तारों के साथ।

तुम कारागृह में नहीं हो। तुम प्रभु के घर में हो, तुम ईश्वर के मंदिर में हो–कृपया इसे कारागृह न कहो। यह कारागृह नही है। तुम गलत समझ रहे हो। तुमने इसकी गलत व्याख्या कर ली है। मुझे सुनते-सुनते भी तुम बहुत सी बातों की गलत व्याख्या कर ले सकते हो। तुम व्याख्याएं करते ही चले जाते हो।

दो दृश्य...पहला:

बागवानी विशेषज्ञ, जो गार्डन-कलब की बैठक से संबोधित था, उसने पुरानी घोड़े की लीद के लाभ बताएं, बसंत-बागीचों की खाद हेतु, उसके गुण गिनाएं। प्रश्नोत्तर समय में, शहर की एक महिला जो साथ-साथ नोट्स भी लेती जा रही थी, उसने हाथ उठाया। वक्ता ने उसकी और देखकर सिर को आज्ञा देने की मुद्रा में

हिलाया और आज्ञा दी की पूछो, 'आपने बताया की पुरानी घोड़े की लीद सर्वोतम खाद है, क्या आप बताने की कृपा करेंगे कि घोड़े की आयु कितनी होनी चाहिए?'

दूसरा:......

हर किसी के शब्दों की अपनी ही व्याख्याएं होती है। अतः जब मैं कोई बात कहता हूं, में नहीं जानता कि तुम उसका क्या अर्थ निकालोगे। हर किसी के पास उसके अचेतन मे छिपा एक निजी शब्दकोश है। उसका अपना शब्दकोश......

मैं तुम्हें स्वतंत्र हो जाने के लिए कहता रहा हूं। तुमने मुझे गलत समझ लिया–तुमने सोचा कि तुम एक कारागृह में हो। हां, मैं कहता हूं; 'स्वतंत्र हो जाओ!' तुरंत तुम इसकी व्याख्या कर लेते हो कि तुम एक कारागृह में हो। वह बात ही बदल गई। मेरा जोर 'तुम' पर था: स्वतंत्र हो जाओ। तुम्हारा जोर कारागृह पर चला गया। अब तुम कहते हो, 'मैं कारागृह में हूं! जब तक मैं कारागृह से बाहर न आऊं, मैं स्वतंत्र कैसे हो सकता हूं?' मेरा जोर था: स्वतंत्र हाओ, और यदि तुम स्वतंत्र हो, तब कहीं कोई कारागृह नहीं है। कारागृह बनता ही नही अस्वतंत्र रहने की तुम्हारी आदत के कारण।

देखो! पर जोर दो और अर्थ सारा बदल गया–और लगता है कि बात वही है। जब मैं कहता हूं, 'स्वतंत्र हो जाओ,' तो क्या अंतर है यदि कोई कहे, 'हां, मैं कारागृह मं हूं?'–बहुत अंतर है, महान अंतर है। सारी बात ही पलट गई। यह एक दूसरी ही बात है, जब तुम कहते हो, 'मैं कारागृह में हूं।' तब तो कारागृह, वहां का रक्षक, वे उतरदीयी हो जाते है। तब तो जब तक वे अनुमति न दें, तुम कारागृह से बाहर आ कैसे सकते हो? तुमने जिम्मेदारी किसी और के ऊपर थोप दी।

जब मैं कह रहा था 'स्वतंत्र हो जाओ।' मैं यह कहा रहा था कि जिम्मेवार तुम हो। स्वतंत्र होना या न होना यह तुम्हारा अपना मामला है। यदि तुमने स्वतंत्र न होना ही चुना है, तब कारागृह भी होगा, रक्षक भी होंगे, कैदी भी होगा। और यदि तुमने स्वतंत्र होना चुना, रक्षक, कारागृह, और हर वो चीज जो भ्रम बनाए हुए थी, वह सब गायब हो जाती है। अब तुम परतंत्र रहने की आदत को छोड़ दो।

कैसे तुम इसे छोड़ सकते हो? स्वंतत्रता और सजगता साथ-साथ रहती है। जितना ज्यादा सजकता बढ़ेगा, उतनी ही ज्यादा स्वतंत्रता, कम सजगता, कम स्वतंत्रता। पशु कम स्वतंत्र हैं क्योंकि वे कम सजग है। चट्टान और भी कम स्वतंत्र है क्योंकि चट्टान के पास सजगता ही नहीं है। करीब-करीब न के बराबर। मनुष्य सबसे ज्यादा विकसित प्राणी है, कम से कम इस पृथ्वी पर तो। मनुष्य को थोड़ी सी स्वतंत्रता है–फिर एक बुद्धपुरुष को पूर्ण स्वतंत्रता है: उसकी सजगता।

इसलिए यह बस सजगता की श्रेणियों का ही प्रश्न है। तुम्हारा कारागृह तुम्हारे ही अचेतन की पर्तों से बनता है। और स्मरण रखो, मन बड़ा चालाक है। यह सदा तुम्हें मुर्ख बनाने के उपाय ढूंढ़ता रहता है। इसने मुर्ख बनाने की बहुत सी तरकीबें सीख ली हैं। मन अब कोई दूसरा शब्द प्रयोग कर लेगा, और तुम्हें अंतर का पता भी नहीं चलेगा–अंतर इतना सूक्ष्म हो सकता है कि यह लगभग पर्यायवाची होगा। और मन ने एक तरकीब इस्तेमाल कर ली।

इसलिए जब भी मैं कुछ कहता हूं, कृपया उसकी व्याख्या मत करो। बस उसे जितना ध्यान पूर्वक हो सके सुनो। एक, एक शब्द भी न बदलो, एक अर्द्धविराम तक नहीं। बस जो मैं कह रहा हूं, उसे सुनो। अपना मन बीच में मत लाना, वर्ना तुम कुछ और ही सुनोगे। मन की चालबाजी के प्रति सदा सजग रहो। और वह चालबाजी तुमने विकसित कर ली है। तुमने उसका विकास किया है अपने लिए नहीं, तुमने दूसरों के लिए इसका विकास

किया है। हम हर किसी को मूर्ख बनाने का यत्न करते है, धीरे-धीरे मन मूर्ख बनाने में दक्ष हो जाता है। आखिर में यह तुम्हें ही मूर्ख बनाना शुरू कर देता है।

मैंने सुना है, एक पत्रकार की मृत्यु हुई। स्वाभाविक ही था क्योंकि वह एक पत्रकार था, और राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री के निवास स्थान पर भी उसका स्वागत किया जाता था, उसे तुरंत अंदर बुला लिया जाता था, किसी अपाइंटमेंट की जरूत ही न पड़ती थी। वह एक महान पत्रकार था। इसलिए वह स्वर्ग की और दौड़ा–भला वह नरक क्यों जाएगा? परंतु सेंट पीटर ने उसे रास्ते में ही रोक लिया और कहा: 'रुको, यहां और पत्रकारों की अब आवश्यकता नहीं है। हमारा कोटा पहले ही भर चुका है; हमें बस एक दर्जन पत्रकार ही चाहिए–सच तो यह है कि वे भी यहां बेकार है, क्योंकि यहां स्वर्ग में कोई समाचार-पत्र ही नहीं छपता।'

सच तो यह है कि यहा समाचार जैसी कोई खबर ही नहीं होती। न खून, न हत्या कुछ भी नहीं होता। सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा है। तब समाचार बनेगा कैसे? और संतों के बारे में क्या समाचार तुम सोच सकते हो: ये अपने-अपने बृक्षों, बोधिवृक्षों के नीचे बैठे ध्यान कर रहे है। इसलिए समाचार-पत्र भी मात्र औपचारिकता निभाने के लिए, कि समाचार-पत्र छापना है, इसलिए समाचार-पत्र छपता भी है तो उसकी केवल दिनांक बदल दी जाती है, और लिख दिया जाता है 'डिट्टो' वह रोज पहले के जैसा।

'हमें यहां पत्रकारों की कोई आवश्यकता ही नहीं है–तुम नरक में जाओ। और वहां ज्यादा से ज्यादा पत्रकारों की आवश्यकता पड़ती ही रहती है। क्योंकि वहा समाचार ही समाचार है, वहां समाचार पत्र भी अधिक छपते है...और अब तो मैंने सुना हैं वहां पर और भी नये-नये समाचार-पत्रों की योजना बनाई जा रही है। वहां तुम चले जाओ,तुम्हें वहां काम भी मिलेगा, और वहां तुम्हारी मौज भी रहेगा।

परंतु वह पत्रकार स्वर्ग छोड़ कर जाना नहीं चाहता था,वह वहीं रहना चाह रहा था। इसलिए उसने सेंट पीटर को कहा: 'आप एक काम करें। मैं पत्रकारों को जानता हूं...यदि मैं किसी पत्रकार को नरक में जाने के लिए राजी कर लूं, तो उसका स्थान मुझे दे दिया जाएगा?'

सेंट पीटर को उस पर तरस आ गया; उन्होंने कहा: 'ठीक है, तुम्हें किसी एक पत्रकार को नरक में जाने को राजी करने लिए कितना समय चाहिए।'

उसने कहा: 'चौबीस घंटे, मात्र चौबीस घंटे।'

अतः चौबीस घंटों के लिए उसे स्वर्ग में प्रवेश की इजाजत मिल गई। उसने तुरंत एक अफवाह फैलानी शुरू कर दी कि 'एक महानतम समाचार-पत्र की योजना बनाई जा रही है, और उसके लिए प्रमुख संपादक, उपप्रमुख संपादकों, सह-संपादकों की आवश्यकता है–बड़ी अच्छी संभावनाएं है भविष्य में, परंतु इस के लिए तुम्हें नरक जाना होगा।

चौबीस घंटे वह घूमता ही रहा। वह सभी पत्रकारों से मिला, और चौबीस घंटों के बाद जब वह सेंट पीटर के पास यह देखने के लिए गया कि क्या कोई पत्रकार नरक गया या नहीं। उस को देख कर सैंट पीटर ने तुरंत स्वर्ग के द्वार बंद कर दिए और कहा: 'अब तुम बाहर मत जाओ, क्योंकि वे सबके सब ही स्वर्ग छोड़ कर चले गए है।

परंतु उस पत्रकार ने कहा: 'नहीं, अब तो मुझे जाना ही होगा–शायद उसमें कुछ बात सच ही हो। अब आप मुझे न रोकें। मुझे जाना ही होगा।' उसने स्वयं ही तो वह अफवाह फैलाई है, परंतु जब बारह लोग उसमें विश्वास करने लगें, तब वह व्यक्ति उसपर खुद भी विश्वास करने लग जाता है। क्या पता बात सही हो ही।

इसी तरह से ही तो हमारा मन चालाक हो गया है, तुम धोखा देते आए हो, देते आए हो, यह धोखा देने में इतना कुशल हो गया है कि यह तुम्हें भी धोखा दे देता है।

दुर्घटना में घायल एक व्यक्ति ने, जो कि व्हीलचेयर पर बैठे कर अदालत में आने वाले उस वादी ने क्षतिपूर्ति के रूप में एक बड़ी रकम हासिल कर ली थी। गुस्से में भरकर प्रतिवादी के वकील ने कुर्सी के पास जाकर चिल्लाया..'तुम धोखेबाज हो, मैं जानता हूं कि तुम धोखेबाजी कर रहे हो, 'इसलिए हे ईश्वर, मेरी मदद कर–मैं सारी जिंदगी तुम्हारा पीछा करूंगा जब तक कि मुझे सबूत न मिल जाए।'

वकील भली-भांति जानता था कि वह आदमी धोखेबाज था, विहिल-चेयर बेठना तो मात्र एक दिखावा था। वह एक दम ठीक था, उसके शरीर में कहीं भी कोई गड़बड़ नहीं थी।

इसलिए उसने कहा: 'ईश्वर मेरी भी मदद करे। मैं सारी जिंदगी तुम्हारा पीछा करुंगा जब तक कि मुझे सबूत न मिल जाए।'

'आप मेरे अतिथि बन मेरे साथ ही रहिए, 'व्हीलचेयर पर बैठे उस व्यक्ति ने मुस्कुराते हुए कहा। 'मैं आपको अपनी योजनाएं बता दूं। पहले तो मैं लंदन जा रहा हूं कुछ कपड़ों खरीदने के लिए, फिर जाऊंगा डिवेरिया धूप सेंकने, उसके बाद, फिर लोरडस चमत्कार के लिए।'

मन हमारा इतना चालाक है; यह सदा कोई न कोई उपाय ढूंढ ही लेता है। यह लोरडेस जा सकता है... परंतु एक बाद तुम दूसरों के साथ चालबाजी करने लग जाओ, देर सवेर तुम खूद भी एक दिन इसके भी शिकार हो जाते हो। अपने स्वयं के मन से सावधान रहो। इसका भरोसा मत करो, इस पर संदेह करो।

यदि तुम अपने मन पर संदेह करना प्रारंभ कर देते हो, यह एक महान क्षण है। जिस क्षण मन पर संदेह उत्पन्न होता है, तुम स्वयं पर भरोसा करना बंद कर देते हो। यदि तुम मन पर श्रद्धा करते हो, तुम स्वयं पर संदेह करते हो, यदि तुम मन पर संदह करते हो, तो स्वयं पर श्रद्धा करना प्रारंभ करने लग जाते हो।

एक गुरु पर श्रद्धा करने का कुल यही तो अर्थ है। जब तुम मेरे पास आते हो, यह तो तुम्हारी सहायता करने की एक मात्र विधि है, कि तुम अपने मन पर संदेह कर सको। जब तुम मन पर भरोसा करना आरंभ करते हो; तुम कहते हो: 'मैं आपकी सुनूंगा, अब मैं अपने मन की नहीं सुनूंगा, बहुत सून ली है अपने मन की। यह कहीं नहीं ले जाता बस गोल-गोल ही घूमाता रहता है, यह उसी मार्ग पर बार-बार ले जाता है, यह एक दोहराव है, यह बस एकस्वरीय है।' फिर तुम कहते हो, 'मैं आपकी ही सुनूंगा।'

गुरु तो मात्र एक तरकीब है, मन से छुटकारा पाने की। एक बार तुम्हें मन से छुटकारा मिल जाए फिर गुरु पर भरोसा करने की जरुरत नहीं रहती। क्योंकि तुम अपने स्वयं के गुरु के पास आ गए होते हो। गुरु तो एक मार्ग तुम्हें देता है, कि तुम तुम स्वयं के गुरु के पास पहुंच जाओ। गुरु तो बस एक द्वार है इससे होकर गुजरना है, गुरु से होकर गुजरने में सरलता आ जाती है, उसे अंदर जाने का एक मार्ग मिल जाता है। वर्ना तो मन उसे बार-बार इधर-उधर भटकाता ही रहता है, कभी दीवालों से कभी खिड़कियों से टकराता ही रहता है। मन इतना चालाक है कि कभी तुम्हें मार्ग या द्वार देखने ही नहीं देगा।

गुरु को सुनते-सुनते, उस पर भरोसा करते-करते, धीरे-धीरे मन अपेक्षित हो जाता है। और बहुत सी बार तुम्हें मन की छोड़नी पड़ती है, क्योकि गुरु कभी-कभी कोई ऐसी बात कह देता है, जो मन के विपरीत जाती है–गुरु बात सदा ही मन के विपरीत जाती है। उपेक्षित जाती है, सही कहूं तो गुरु की बातें सदा मन के विपरीत ही जाएगी। जब तुम बार-बार मन कि उपेक्षा करते चले जाते हो, तो वह मरना शुरू हो जाता है। जब उस पर भरोसा नही किया जाता, मन मरना शुरू हो जाता है। यह अपने सही आकार में आ जाता है, अभी तो यह छल-कपट से भरा है। अभी तो यह ऐसा प्रदर्शन कर रहा है जैसे कि यह तुम्हारा समस्त जीवन है। परंतु मन यह जानता है कि वह एक छोटा सा मात्र एक यंत्र है, आप उसका प्रयोग करे तो अच्छा है। परंतु यंत्र अगर मालिक हो जाए तो खतरना हो जाता है।

मन कहता है, 'चलो कुछ बन जाओ।' परंतु गुरु कहता है, ' मात्र हो जाओ।' मन कहता है, 'तुम्हें अभी बहुत दूर जाना है।' गुरु कहता है, 'नहीं! कहीं नहीं जाना, तुम तो पहुंच गए, तुम हो गए सराह–तुमने लक्ष्य को भेद ही रखा है।'

तीसरा प्रश्न: ओशो, सभ्यता के विषय में आप क्या सोचते हैं? क्या आप इसके बिलकुल विरोध में है?

सभ्यता जैसी कोई चीज कहीं है ही नहीं–इसलिए मैं उसके विरोध में कैसे हो सकता हूं? उसका अस्तित्व है ही नहीं। यह तो एक दिखावा मात्र है। हां, मनुष्य ने अपनी आदिम, मूलभूत निर्दोषिता को खो जरूर दिया है, परंतु मनुष्य सभ्य नहीं हो पाया है। क्योंकि सभ्य होने का कोई तरीका नहीं है। सभ्य होने का एकमात्र तरीका है, कि तुम स्वयं को उस निर्दोषिता पर आधारित करो, उस आदिम निर्दोषपन पर स्वयं को आधारित करो और फिर वहां से तुम विकसित हो सकते हो।

इसीलिए तो जीसस कहते है: जब तक कि तुम पुनः पैदा नहीं होते, जब तक कि तुम पुनः एक बालक नहीं हो जाते, तुम कभी नहीं जान पाओगे कि सत्य क्या है।

यह तथाकथित सभ्यता तो झूठी है, यह तो एक नकली सिक्का है। यदि मैं इसके विरोध में हूं तो, मैं सभ्यता के विरोध में नहीं हूं, क्योंकि यह सभ्यता है ही नहीं। यह झूठी सभ्यता है।

मैंने सुना है, किसी ने एक बार भूतपूर्व प्रिंस ऑफ वेल्स से पूछा: 'सभ्यता के विषय में आपका क्या विचार है?'

प्रिंस ने उतर दिया: 'यह एक अच्छा विचार है, किसी को इसे शुरू करना ही चाहिए।'

मुझे यह उतर बहुत पसंद आया। हां, किसी को तो इसे शुरू करना ही चाहिए–अभी तक तो इसकी शुरूआत ही नहीं हुई है। आदमी अभी सभ्य नहीं है, वह बस मात्र सभ्य होने का दिखावा भर कर रहा है। और तुम्हारे दिखावे के मैं विरुद्ध हूं। मैं पाखंडों के विरोधी मैं हूं। आदमी ने सभ्य होने का एक झूठा परसोना पहन लिया है। एक पाखंडों की लकीरें, उसे तुम जरा सा खरोंचो, और तुम अंदर वही असभ्य आदमी ही पाओग। जरा सा उसे खरोंचा नहीं कि वह अपने असली रूप में आपके सामने आ जाएगा। बस एक ऊपरी लीपापोती, वह जो शुभ का दिखावा कर रहा है, वह मात्र एक उपरी लकीर है। भीतर गहरे में तो आज भी वहीं अशुभ भरा है, उसे ही बैठा हुआ पाओगे। बस तुम्हारी खाल जितनी गहरी है तुम्हारी सभ्यता। सब कुछ ठीक-ठाक लग रहा है, तुम मुस्कुरा रहे हो, सब कुछ कितना अच्छा हो रहा है, बस किसी ने एक शब्द तुम्हारी और फेंका नहीं कि तुम उछल पड़ते हो, किसी ने तुम्हें एक गाली दी और तुम पागल हो जाते हो, तुम एक दम से विक्षिप्त हो जाते हो, उस आदमी को मार देना चाहते हो। बस एक पल पहले तक तो तुम मुस्कुरा रहे थे, एक शब्द ने तुम्हारी सभ्यता को उतरा फैका। तुम्हारी हत्यारी प्रवृतियां उपर आ गई, तुम सब कुछ को भूल गए। ये किस तरह की सभ्यता है तुम्हारी।

एक व्यक्ति केवल तभी सभ्य हो सकता है, जब वह सच में अंदर से जाग गया है, होश से भर गया है। ध्यान से भर गया है। केवल वही व्यक्ति जगत में सच्ची सभ्यता ला सकता है। केवल बुद्ध पुरुष ही सभ्य होते है।

और यही विरोधाभास है: कि बुद्धपुरुष आदिम के विरोध में नहीं है–वह आदिम का उपयोग आधार की भांति कर लेते है, वे बालवत निर्दोषिता का उपयोग आधार की भांति कर लेते हैं। और फिर उस आधार पर एक बड़ा मंदिर खड़ा हो जाता है। यह सभ्यता तो बालपन की निर्दोषिता को नष्ट कर देती है और फिर यह तुम्हें झूटे सिक्के मात्र दे देती है। पहले तो यह तुम्हारी आदिम निर्दोषिता को नष्ट करती है। यदि एक बाद आदिम निर्दोषिता नष्ट हो जाए, तुम चालाक, चतुर, हिसाबी-किताबी बन जाते हो, और फिर तुम फंस गए इस सभ्यता के जाल में। तब समाज अपना कार्य आसानी से करता रहता है और तुम्हे सभ्य बनाए ही चला जाता है।

पहले तो यह तुम्हें तुम्हारी अपनी सता से अगल कर देता है। एक बार तुम अपनी सत्ता से बेदखल हुए तब तुम्हें ये झूटे सिक्के दे देता है। तबतुम्हें इन के ऊपर हमेशा निर्भर रहना पड़ता है। सच्ची सभ्यता तुम्हारे स्वभाव के विरोध में है, तुम्हारे बाल-पन, तुम्हारे कंवारे-पन के विरोद्ध में है। सच्ची सभ्यता तुम्हारे कवांर-पन के विरोद्ध में नही होगी, यह उसके खिलाफ खड़ी नही होगा। यह ऊंची और ऊंची उठती चली जायेगी, ऊतंग आकाश में, परंतु इसकी जड़े तो आदिम निर्दोषिता में ही होंगी।

यह सभ्यता तो तुम्हें मात्र पागल बनाने वाली है और कुछ भी नहीं। क्या तुम देख नहीं सकते कि सारी पृथ्वी एक बड़ा पागलखाना बन गई है। लोगों ने अपनी आत्मा खो दी है, उन्होंने अपना व्यकित्व खो दिया है, अपना सब कुछ खो दिया है। वे बस दिखावा बन कर रहे गए है। उन्होंने अपने मुख पर परसोने चढ़ा लिए है, भुल गए है लोग अपने मौलिक चहरो को। खो दिए है अपने असली चहरे।

मैं कैसे सभ्याता के विरोध में हो सकता हूं, पूरी तरह से मैं उसके पक्ष में हूं। परंतु जिसे तुम सभ्यता कहते हो, यह भी कोई सभ्यता है। इसलिए मैं इसके विरोध में हूं। मैं चाहूंगा कि आदमी सच में ही सभ्य हो, सच में ही सुसंस्कृत हो, पर यह संस्कृति केवल विकसित हो सकती है–इसे बाहर से लादा नही जा सकता। यह केवल भीतर से ही आ सकती है। यह परिधि की ओर फैल सकती है, परंतु इसे उठाना तो केंद्र से ही होगा। यह वहीं से उठ सकती है।

आपकी यह सभ्यता तो उलटा ही काम कर रही है, यह चीजों को बाहर से लाद रही है। सारे जगत में एक अहिंसक धर्मोपदेश–महावीर, बुद्ध, जीसस ये सब अहिंसा की शिक्षा देते है। वे अहिंसा की बात करते है, क्योंकि उन्होंने अहिंसा का आनंद लिया है। लेकिन उनके पीछे चलने वाले उनके अनुयायी? उन्होंने तो कभी भी अहिंसा के किसी क्षण का आनंद नहीं लिया है। वे तो मात्र एक हिंसा को ही जानते, उसी में वे जीए है, परंतु वे अनुयायी है, इसलिए वे अहिंसक होने का दिखावा करते है, वे एक अहिंसा अपने ऊपर लादते है, वे एक चरित्र का निर्माण करते है। जो चरित्र उनके चारों और दखिता है, यह मात्र एक कवच है। जो ऊपर से पहन लिया है। भीतर गहरे में तो वे उबल ही रहे होते है। विस्फोट होने के लिए अंदर तैयार है। ऊपर सतह पर वह एक झूठी मुस्कान बिखरते रहते है। वह मुस्कान एक प्लास्टिक जैसी है जो उन्होंने चिपका रखी है।

यह सभ्यता नहीं है। यह तो बड़ी कुरूप बात है। हां, मैं चाहूंगा कि अहिंसा भीतर से निकले, उसकी सहायता की जाए, उसका बाहर से ही विकास न किया जाए। यही तो शिक्षा शब्द का मूल अर्थ है। यह लगभग वैसे ही है जैसे कि कुएं से पानी को बाहर निकालना: एजुकेशन का अर्थ होता है बाहर उलीचना, एजुकेशन शब्द का यही अर्थ होता है। लेकिन शिक्षा क्या करती है? यह कभी कोई चीज बाहर नही निकालती, बस भीतर बलपूर्वक डाले जाती है। यह बच्चों के सर में चीजें जबरदस्ती उंडेल ही जाती है, बच्चे की तो कोई चिंता करता ही नहीं। बच्चो के तो विषय में यह शिक्षा कुछ सोचती ही नहीं। बस जबरदस्ती उनका भला किये चली जाती है। उन्हें मात्र एक यंत्र बना दिया है, जिसमें अधिक से अधिक सूचनाएं भरी जा सके। यह तो कोई शिक्षा नहीं हुई।

बच्चे की आत्म उसके संस्कार को बाहर लाना है, बच्चे में भीतर छिपा है उसे बाहर लाने में सहयोग देना है। बच्चों को कोई ढांचा नहीं देना, उसकी सवतंत्रता को अछूता रहने देना है, और उसकी अंतस कि चेतना का विकास करना है। उसके विकास में सहभागीदार होना है। सूचनाओं की अधिकता कोई शिक्षा नहीं है। अधिक जागरूकता शिक्षा है, अधिक प्रेम शिक्षा है। और शिक्षा ही सभ्यता का निर्माण करती है।

यह सभ्यता झूठी है, इसकी शिक्षा झूठी है। यही कारण है कि मैं इसके विरोध में हूं। मैं इस के विरोध में इसलिए हूं कि यह वास्तव में सभ्यता ही नहीं है।

चौथा प्रश्नः ओशो, मैं आपक चुटकुलों पर बहुत अधिक हंसता हूं। मैं एक प्रश्न पूछना चाहूंगाः एक चुटकुले पर इतनी हंसी कैसे आती है?

पहली बात, तुम्हें कभी हंसने ही नही दिया गया है, तुम्हारी हंसी दमित है। यह एक दबे हुए स्प्रिंग की भांति है–कोई भी बहाना बस काफी है, उसे बाहर फैकने के लिए। तुम्हें दुखी रहना, लंबे चेहरे रखना सिखाया गया है। और गंभीरता ने तुम्हें चारों और से घेर लिया है।

यदि तुम गंभीर हो, कोई नहीं सोचता कि तुम कोई गलत बात कर रहे हो; इसे स्वीकार कर लिया गया है। यहीं तो ढंग है, इसी तरह से तो जीना चाहिए। परंतु अगर तुम हंस रहे हो, बहुत अधिक हंस रहे हो, तब लोग तुम्हारे साथ रहना, कुछ अटपटा सा महसुस करेंगे। वे सोचने लगते है कि कुछ तो गड़बड़ है। 'यह आदमी हंस क्यों रहा है?' और यदि तुम बिना किसी कारण के हंस रहे हो, तब तो तुम पागल करार कर दिए जाओगे। तुम्हें मनोचिकित्सक के पास ले जाया जायेगा। तब तो वे तुम्हें जरूर अस्पताल में भर्ती करा ही देंगे। वे कहेंगे, 'यह आदमी बिना कारण हंसता है! बिना कारण तो केवल पागल ही हंसते है।'

एक बेहतर जगत में, एक सभ्य जगत में, एक वास्तव में ही सभ्य संसार में हंसी को स्वभाविक स्वीकार किया जाएगा। केवल जब कोई व्यक्ति दुखी होगा, तब हम उसे अस्पताल में भर्ती करेंगे।

दुख रोग है, हंसी स्वास्थ्य है। अतः, क्योंकि तुम्हें हंसने नहीं दिया गया, कोई भी छोटा सा बहाना... चुटकुले हंसने का बहाना बन जाते है, तुम बिना पागल कहलाएं हंस सकते हो। तुम कह सकते हो, 'चुटकुले के कारण...' और चुटकुले में एक तरकीब होती है यह तुम्हें खुलने में बहुत सहायता करता है। चुटकुले की कार्यविधि बड़ी जटिल है, देखने में तो ये सीधा सा दिखता है, गहरे में बहुत ही जटिल होता है। चुटकुला कोई मजाक नहीं है। यह एक कठिन बात है। थोड़े से शब्दों में, थोड़ी सी पंक्तियों में, यह सारे वातावरण में एक ऐसी बदलाहट ले आता है। होता क्या है?

जब कोई चुटकुला तुम्हें सुनाया जाता है, एक तो तुम यह आशा करने लग जाते हो कि हंसी आएगी ही। तुम इसके लिए तैयार हो जाते हो। शायद तुम ऊंध रहे हो, या सो रहे हो, परंतु चुटकुले के नाम पर सजग हो जाते हो। तुम्हारी रीढ़ की हड्डी सीधी हो जाती है। तुम उसे बहुत ध्यान से सुनते हो, और अधिक जागरूक हो जाते हो। और फिर कहानी चलती भी ऐसे है कि तुममें और तनाव अधिक तनाव उत्पन्न करती है। तुम निष्कर्ष जानना चाहते हो। चुटकुला एक तल पर चलता जाता है, चुटकुले जैसी बात उसमें कुछ जान भी नही पड़ती, और फिर अचानक उसमें एक मोड़ आ जाता है। और यह अचानक आया मोड़ तुम्हारी स्प्रिंग को छोड़ देता है। तुम तनाव से भरते जा रहे थे, प्रतीक्षा और प्रतीक्षा किये जा रहे थे...और तुम्हें लग रहा था कि इसमें तो कुछ है ही नहीं। और अचानक तुम पाते हो कि कुछ तो है! और यह इतने आकस्मिक ढंग से होता है, जैसे आकाश फटा हो, कि तुम अपनी गंभीरता भूल जाते हो। उस आकस्मिकता में तुम पुनः एक बच्चे हो जाते हो–और तुम हंस पड़ते हो। तुम्हारी दबी हुई हंसी ऊपर उभर आती है।

चुटकुले तो सिर्फ इतना बताते हैं कि यह समाज बिलकुल भूल ही गया है, कि हंसा कैसे जाए। एक बेहतर संसार में जहां लोग अधिक हंसा करेंगे, हमें फिर इन चुटकुलों की जरूरत नहीं रह जाएंगी। लोग आपको हंसते-खेलते ही चारों और मिलेंगे। लोग आनंदित होंगे। क्यों? हर पल हंसी का पल होगा। और अगर तुम जीवन को पुर्णता से देखते हो तो यह एक चुटकला ही तो है। परंतु तुम्हें देखने नही दिया जाता। तुम्हारी आंखों पर पट्टीे बांध रखी है, बस तुम उतना ही देखे सकते हो। जितना तुम्हें दिखाया गया है। तुम्हें इसकी हास्यास्पदता नहीं देखने दी जाती–यह हास्यास्पद है।

बच्चे इसको अधिक आसानी से देख पाते हैं। यही कारण है कि बच्चे अधिक सरलता से और अधिक आसानी से देख पाते हैं, यही कारण है कि बच्चे अधिक सरलता से और आसानी से हंस पाते है। और उनकी ये हंसी उनका व्यवहार माता-पिता में एक व्याकुलता पैदा कर देता है। क्योंकि वे यह सब बकवास हो रही है उसे देख पाते है। क्योंकि उनकी आंखों पर अभी पट्टी नहीं बंधी है। पिता बच्चे से कहता है, तुम सदा सच बोलो, सचे बनो। और फिर कुछ देर में कोई द्वार खटखटाता है, और फिर पुछता है तुम्हारे पिता घर पर है। पिता कहता है कि, 'जाओ और उसे कह दो की पिता घर पर नहीं है।' तब बच्चा पिता को देखता है, और अंदर से हंसता है। उसे विश्वास नहीं होता कि यह क्या हो रहा है? यह हास्यास्पद है! और बच्चा द्वार खटखटाने वाले महानुभाव को जाकर कहता है, 'पिताजी कह रहे है कि वह घर पर नहीं है।' वह इसमें से पूरा रस खींच लेता है। वह इसका पूरा आनंद लेता है।

हम आंखों पर बंधी पट्टी के साथ जीते है। हमारा विकास इस ढंग से किया गया है कि हम जीवन की हास्यास्पदता को नहीं देख पाते है, वर्ना यह तो हास्यास्पद है। यही कारण है कि कभी-कभी बिना चुटकुले के भी, किसी छोटी सी बात में...उदाहरण के लिए: फोड फिसल कर जमीन पर गिर पड़ा। वे सब लोग जो आस पास खड़े थे बहुत जोर से हंसे। उन्होंने शायद इसका प्रदर्शन न भी किया हो, पर हंसी उन्हें बहुत जोर की आई।

जरा सोचो: यदि कोई भिखारी केले के छिलके पर फिसल जाए, तो कोई भी इस बात की परवाह नही करेगा। परंतु यदि किसी देश का राष्ट्रपति केले के छिलके पर फिसल जाए, सारी दुनिया हंसेगी। क्यों? क्योंकि केले के छिलके ने सही काम किय। केले के उस छिलके ने दिखा दिया की आप भी उतने ही इंसान हो जितना कि एक भिखारी। और केले का छिलका कोई अंतर भी नहीं करता, भिखारी और राष्ट्रपति में। भिखारी आए, राष्ट्रपति आए, प्रधानमंत्री आए केले के छिलके स्वभाव में कोई अंतर नहीं आता। केले का छिलका तो बस केले का छिलका ही है, वह किसी की परवाह नहीं करता।

यदि कोई साधारण व्यक्ति गिर जाये तो थोड़ी सी हंसी आयेगी ज्यादा नही, क्योंकि वह एक साधरण व्यक्ति है। उसने कभी भी यह सिद्ध करने की कोशिश नहीं कि की वह एक विशेष आदमी है। इस लिए ज्यादा हंसी की कोई बात नहीं है। लेकिन यदि कोई राष्ट्रपति केले के छिलके पर फिसल जाए, अचानक इसकी हास्यास्पदता, इसकी सचाई कि ये सज्जन सोच रहे थे कि यह दूनिया की छत पर हैं–किसे आप मूर्ख बनाने की चेष्टा कर रहे हो? एक केले का छिलका तो मूर्ख बनाया नहीं जा सकता। और अचानक तुम हंस पड़ते हो।

गौर से देखो–जब कभी भी तुम हंसते हो, जीवन की हास्यास्पदता तुम्हारी आंखों पर बंधे बंधन में से प्रवेश कर जाती है। तुम पुनः एक बालक बन जाते हो। चुटकुले तुम्हारा बचपन तुम्हारी निर्दोषिता वापस लोटा लाते है। कुछ क्षण के लिए तुम्हारी आंख पर बंधी हुई धारणा की पट्टी खिसक जाती है, इस में चुटकुले सहयोग देते है।

अब कुछ चुटकुले:

एक स्थानिय व्यक्ति असामान्य परिस्थियों में मृत पाया गया था। मृत्योन्वेषक अधिकारी ने मृत्यु की जांच के लिए एक समिति बनाई और उस औरत को, जिसके बिस्तर पर उस व्यक्ति ने दम तोड़ा था, गवाही देने के लिए बुलाया गया। फोरमैन न उसे आश्वासन दिया कि वहां उपस्थित सभी व्यक्ति एक दूसरे को जानते थे और यह कि उसे अपने शब्दों में बता देना चाहिए कि क्या हुआ था?

स्त्री ने बताया कि वह और वह व्यक्ति, अब मृतक, एक स्थानिय शराबघर में मिले थे, और जब शराबघर का समय समाप्त हुआ तो वे दोनों एक और पैग पीने के लिए उस स्त्री के घर चले गये थे। बात से बात बढ़ी और

दोनों बिस्तर पर पहुंच गए थे। अचानक उसने उस व्यक्ति की आंखों में एक विचित्र सा भाव देखा जिसका कि उसने मृत्योन्वेषक समिति को इन शब्दों में वर्णन किया: 'आ रहा है, मैंने सोचा, परंतु वह तो जा रहा था।'

दूसरा चुटकुला:

एक बूढ़े पादरी को, जिसे एक होटल में रात बितानी पड़ रही थी। एक ऐसा कमरा दिया गया जिसमें तीन एकल बिस्तर लगे हुए थे। जिसमें से दो पहले ही भरे हुए थे। बत्ती बुझने के साथ ही उनमें से एक इतने जोर से खर्राटे लेने लगा कि पादरी सो ही न सका। और जैसे-जैसे रात गहराने लगी, शोर भी बढ़ता गया और अधिक भयंकर होता चला गया। अर्द्धरात्रि के लगभग दो-तीन घंटों के उपरांत खर्राटे लेने वाले ने बिस्तर पर करवट ली, एक डरावनी कराह उसके मुंख से निकली और फिर मौन हो गया।

पादरी तो सोच रहा था कि तीसरे सज्जन सोये हुए हैं पर इसी समय उसने उन्हें खुशी से चिल्लाते सुना, 'वह मर गया, धन्यवाद, हे ईश्वर तेरा वह मर गया।'

और अंतिम:

बड़ा कीमती है–इसके ऊपर ध्यान करो:

एक दिन जब जीसस एक गांव से होकर गुजर रहे है, उन्हें एक क्रुद्ध भीड़ दिखाई दी। जिसने एक स्त्री को एक दीवार के साथ खड़ा कर रखा था और अब पत्थर मारने की तैयारी कर रहे थे।

अपना हाथ ऊपर उठा कर जीसस ने भीड़ को शांत किया और तब गुरुतापूर्वक बोले: 'अब जो पाप रहित है, पहला पत्थर उसे ही फेंकने दो।'

तुरंत एक छोटे कद की बूढ़ी स्त्री ने एक बड़ा सा पत्थर उठाया और उस स्त्री की और फेंका। 'मां' दांत भींचते हुए जीसस ने कहा, तुम मुझे खिझाती हो।'

और अंतिम प्रश्न:

ओशो, यह स्पष्ट है कि आपको गैरिक रंग से प्रेम है–लेकिन फिर आप स्वयं गैरिक क्यों नहीं पहनते?

मुझे और गैरिक रंग से प्रेम? ईश्वर न करे! मैं तो इससे सख्त नफरत करता हूं। यही कारण है कि मेंने तुम्हें इसे पहनने को मजबूर कर रखा है। यह तो तुम्हारे लिए एक प्रकार का दंड है, तभी तक, जब तक कि संबुद्ध न हो ही जाते।

आज इतना ही

पांचवां प्रवचन

मनुष्य एक कल्पना है

(दिनांक 25 अप्रैल 1977 ओशो आश्रम पूना।)

सूत्र:

सड़े मांस की गंध पर रीझने वाली मक्खी को
चंदन की सुगंध भी, जान पडती है दुर्गंध
प्राणी जो तज देते है निर्वाण
लोलुप हो जाते हैं क्षुद्र संसारिक विषयों के
जल से भरे ताल में बैल के पदचिंह
जल्दी ही हो जाते हैं शुष्क, वैसे ही वह दृढ़ मन
जो भरपूर है उन गुणों से जो है अपूर्ण
शुष्क हो जाएंगी ये अपूर्णताएं समय पर
समुद्र का नमकीन जल जैसे हो जाता है मधुर,
जब पी लेते है मेघ उसे
वैसे ही वह स्थिर मन, काम जो करता है
औरों के हेतु बना देता है अमृत
उन एंन्द्रिक-विषयों के विष को
यदि वर्णनातित घटे, कभी नहीं रहता कोई असंतुष्ट
यदि अकल्पनिय, होगा यह स्वयं आनंद ही
यद्यपि भय होता है मेघ से तड़ित का
फसलें पकती है जब यह बरसता है जल

मनुष्य मात्र एक कल्पना है, और सबसे ज्यादा खतरनाक कल्पना--क्योंकि यदि तुमने विश्वास कर लिया कि मनुष्य है, फिर तुम मनुष्य को विकसित करने का जरा भी प्रयत्न नहीं करते, तुम्हें उसकी कोई आवश्यता ही नहीं होती। यदि तुमने मान ही लिया कि तुम मनुष्य हो तो तमाम विकास के रास्ते रूक जाते हैं।

तुम अभी मनुष्य नहीं हो, तुम मनुष्य होने की संभावना मात्र हो। तुम मनुष्य हो भी सकते हो। और तुम नहीं हो भी सकते। तुम चूक सकते हो। इस सच्चाई को याद रखो, तुम इसे चूक भी सकते हो।

मनुष्य पैदा नहीं होता, यह कोई दिव्य तथ्य नहीं है। तुम इसे मान ले नहीं सकते। यह तो मात्र एक संभावना है। मनुष्य एक बीज की भांति है, वृक्ष की भांति नहीं--कम से कम अभी तक तो नहीं। मनुष्य अभी वास्वविक नहीं है, और संभावना और वास्तविकता के बीच बड़ा अंतर है।

जैसा कि मनुष्य अभी है, वह तो मात्र एक यंत्र है। हां, वह काम जरूर करता है, वह संसार में सफल होता है, हां, वह एक तथा कथित जीवन जीता है और मरता भी है। परंतु समरण रखो की वह है नहीं। उसका काम एक यंत्र का काम है, वह एक रोबर्ट मानव है।

मनुष्य एक यंत्र है। हां, इस यंत्र में ऐसा कुछ विकसित हो सकता है जो यांत्रिकता के पार चला जाए। यह यंत्र कोई साधारण यंत्र नहीं है। इसमें स्वयं के पार जाने की अपार संभावना है, यह अपने स्वयं के ढांचे के पार

की विषय वस्तु को भी प्राप्त कर सकता है। परंतु तुम कभी यह मत मान लेना की तुम अभी एक मनुष्य हो। हां, कभी-कभी इसने किसी बुद्ध, किसी महावीर, किसी ईसा, किसी गुरजिएफ को उत्पन्न जरूर किया है। परंतु तुम तो कदाचित नही हो। यदि तुमने ऐसा मान लिया तो यह तुम्हारे लिए आत्मघात जैसा ही होगा–क्योंकि एक बार हम मान लेते है, कि हम हैं। तब आने वाली सभी संभावनाओं को ताला बंद कर देते है। तब हम इसे निर्मित करना बंद कर देते है, तब हम इसका अन्वेषण करना बंद कर देते हैं, तब हम इसका विकास करना बंद कर देते हैं।

जरा सोचो: एक बीमार व्यक्ति, एक बहुत बीमार व्यक्ति अगर सोचता हो की वह स्वस्थ है। तब बताओ भला वह डॉक्टर के पास क्यों जाएगा? वह कोई औषधि क्यों लेगा? वह कोई इलाज क्यों करवाएगा? वह अस्पताल जाने के लिए राजी ही नहीं होगा? उसे तो विश्वास है कि वह स्वस्थ है, वह पूर्ण स्वास्थ्य की दशा में है...और वह मर रहा है। उसका विश्वास ही उसे मार डालेगा।

इसलिए मैं कहता हूं कि यह कल्पना बड़ी खतरनाक है, पंडित-पुरोहितो और राजनेताओं द्वारा कभी भी विकसित की गई सबसे खतरनाक कल्पना: कि पृथ्वी पर मनुष्य तो पहले से ही है। पृथ्वी पर रह रहे ये लाखों करोड़ो लोग मात्र संभावनाएं है। और दुर्भाग्य से इनमें से बहुत से यंत्र की भांति ही मर जाएंगें।

मेरा क्या अर्थ है, जब मैं कहता हूं कि मनुष्य एक यंत्र है? कि मनुष्य अतित में जीता है। मनुष्य एक मृत ढांचे से जीता है। मनुष्य एक आदत से जीता है। मनुष्य एक क्रम-बद्ध जीवन जीता है। आदमी बार-बार उसी घेरे में, उसी ढर्रे में घूमता ही रहता है। क्या तुम अपने जीवन में इस दुष्चक्र को नहीं देखते? तुम प्रति दिन वही काम करते आ रहे हो, आशा करना, क्रोधित होना, इच्छा करना, महत्वकांक्षी होना, एंद्रिक, कामुक होना, निराश होना, फिर आशा करना, फिर से सारा चक्कर शुरू हो जाता है। हर आशा निराशा में ले जाती है, इससे विपरीत कभी नहीं होता, और हर निराशा के बाद एक नई आशा–और चक्र फिर से घूमना शुरू हो जाता है।

पूरब में हम इसे संसार चक्र कहते है। यह एक चक्र है! इसकी तील्लियां वही के वही हैं। और तुम बार-बार इसके द्वारा धोखा खाते हो। तुम फिर से आशा करना प्रारंभ कर देते हो। और तुम जानते हों–तुमने पहले भी आशा की है, तुमने लाखों बार आशा की है, और उस आशा से कुछ भी नहीं होता। बस चक्र घूमे चला जाता है–और तुम्हें मारे चला जाता है। तुम्हारे जीवन को नष्ट किए चला जाता है।

समय तुम्हारे हाथों से निकला चला जा रहा है। हर क्षण जो खो जाता है सदा के लिए खो जाता है, और तुम लगातार पुराने को ही दोहराएं चले जाते हो।

यही है मेरा तात्पर्य जब मैं कहता हूं कि मनुष्य एक यंत्र है। मैं जॉर्ज गुरजिएफ की इस बात से पूरी तरह से सहमत हूं। गुरजिएफ कहते थे की अभी तुम्हारे पास कोई आत्मा नहीं है। यह बात कि तुम्हारे पास कोई आत्मा नहीं है, इतने प्रबल रूप से इस बात को कहने वाला वह पहला व्यक्ति था। हां, आत्मा तुम्हारे भीतर पैदा हो सकती है, उसे जन्म दिया जा सकता है। तुम्हें इसे जन्म देना होगा। तुम्हें इसे जन्म दे सकने के योग्य बनना होगा।

सदियों-सदियों से पंडित-पुरोहित तुम्हें बताते चले आ रहे है कि आत्मा तुम्हारे पास है। यानी मनुष्य तो तुम पहले से ही हो। लेकिन ऐसा नहीं है। तुम्हारे भीतर केवल इसकी संभावना है। तुम सच वास्तव में एक मनुष्य हो सकते हो, परंतु पहले इस कल्पना को नष्ट करना होगा। इसके तथ्य को भीतर से देखो, इसे जानों, कि तुम चेतन-अस्तित्व नहीं हो, और यदि तुम चेतन अस्तित्व नहीं हो, तब मनुष्य कैसे कहलाएं जा सकते हो?

एक चट्टान में और तुम में क्या अंतर है? एक पशु में और तुममें क्या अंतर है? एक वृक्ष में और तुम में क्या अंतर है? अंतर है चेतना का परंतु चेतना तुम है ही कितनी? जरा सी एक टिमटिमाहट इधर, जरा सी

उधर। बस कभी-कभी, किन्ही दुर्लभ क्षणों में, तुम चेतन होते हो, और वह भी बस कुछ क्षणों के लिए और फिर से तुम मूर्च्छा में गिर जाते हो। हां, कभी-कभी ऐसा घटता है, क्योंकि यह तुम्हारी संभावना है। क्योंकि कभी-कभी तुम्हारे बावजूद यह घटना घट जाती है।

किसी दिन सूर्य उदय हो रहा होता है और तुम अस्तित्व के साथ एकलयहो जाते हो–तब अचानक ये घटना घटती है। इस का सौंदर्य, इसका आशीर्वाद, इसकी सुगंध, इसका प्रकाश तुम पर बरस जाता है। अचानक यह (चेतना) वहां तुम्हें घेर लेती है। तुम्हारे मुख में एक स्वाद भर जाता है, तुम्हारे नासापुट एक अदभुत सुगंध से भर जाते है। परंतु जैसे ही तुम सजग हुए, तुमने सोचना शुरू किया कि तुम चूकेबस पल भर के लिए होता है वहा कुछ फिर तुम वही लोट आते हो अपने संसार में अपने विचारो में। केवल एक मधुर स्मृति पीछे रह जाती है। यह आती है, किन्हीं दुर्लभ क्षणों में, कभी प्रेम में, कभी किसी बच्चे को खेलते देखते हुए उसकी किलारियां मारते समय, कभी-कभी संगीत सुनते हुए, कभी किसी एकांत में मधुर झरने के कलरव गान में, परंतु ऐसे क्षण विरल ही होते हैं।

यदि एक साधारण व्यक्ति, एक तथाकथित साधारण व्यक्ति अपने समस्त जीवन में जागरूकता के सात क्षण भी मुश्किल से प्राप्त कर पता है। यह काफी अधिक है। यह भी मुश्किल से बहुत ही मुश्किल से, बस कभी एक किरण प्रवेश करती है, फिर कुछ ही क्षण में वह जा चुकि होती है। और फिर तुम अपनी वहीं पुरानी जिंदगी में वापस लौट आते हो, पहले कि ही तरह सुस्त और मुर्दा। और ऐसा केवल साधारण लोगों के साथ ही नहीं होता, तुम्हारे तथाकथित असाधारण लोगों के साथ भी ऐसा ही होता है।

अभी उस दिन मैं कार्ल जुंग, इस युग के महानतम मनस्विदों में से एक के विषयमें पढ़ रहा था। और बड़ी हैरानी भी होती है कि ऐसे लोग मनस्विद कहे भी जाएं या नहीं। वह एक बड़ा ही बैचेन व्यक्ति था, बहुत ही अशांत। वह एक क्षण के लिए भी टिक कर नहीं बैठ सकता था। वह कुछ न कुछ हमेशा करता ही रहता था, और यदि करने को कुछ भी नहीं है तो वह अपना पाइप पीने लग जाता था। और वह निरंतर धूम्रपान करने वाला व्यक्ति था। फिर एक दिन उसे दिल का दौरा पड़ा और चिकित्सकों ने उससे धुम्रपान बंद कर देने के लिए कहा। अब यह तो उसके लिए बड़ा ही कठीन था। उसे अपनी बैचेनी और भी अधिक महसूस होने लगी। वह तो लगभग पागल जैसा हो गया। वह बस कमरे में इधर से उधर टहलता रहता या बाहर बगिचे में बिना किसी कारण के घूमता रहता। वह कभी इस कुर्सी पर बैठता, कभी उस कुर्सी पर बैठता। अपनी बैचेनी से बचने का एक तथ्य उसे समझ आया ये पाइप उसकी बहुत सहायता कर सकता है। ये मात्र एक विसर्जन था, अपनी बैचनी को पाइप की सहायता से मुक्त करना। इसलिए उसने चिकित्सको से पूछा, 'क्या मैं खाली पाइप अपने मुंह में रख सकता हूं? क्या इसकी इजाजत मुझे मिलेगी? खाली पाइप! 'इससे मुझे सहायता मिलेगी।'

इस बात की उसे अनुमती दे दी गई, और फिर वर्षो तक वह खाली पाइप अपने मुंह में दबाए रखता था, बस यह दिखावा करता हुआ कि वह धूम्रपान कर रहा है। कभी वह उस पाइप की और देखता और उसे हाथ में लेता, उस के साथ खेलता। और यह इस युग के एक महान मनस्विद की बात है! कितनी मूर्च्छा! यह देखने से ही कितना बचकाना जान पड़ता है। और फिर उसे हम युक्ति संगत ठहराने के उपाय ढूंढते रहते है। फिर हम स्वयं से आडंबर करते रहते हैं, हम स्वयं को बचाते है और उसकी सुरक्षा करते भी करते हैं, कि हम ऐसा क्यों कर रहे है।

पैंतालीस वर्ष की आयु में कार्ल जुंग एक जवान स्त्री के प्रेम में पड गया। वह एक विवाहित व्यक्ति था, उसकी एक बड़ी प्यारी पत्नी थी। इसमें कुछ गलत न था परंतु यह भी एक प्रकार की बैचेनी ही रही होगी। यह लगभग हमेशा होता है कि पैंतालीस की आयु के आस-पास जाकर आदमी यह महसूस करने लग जाता है कि

सारा जीवन तो चला गया। मौत करीब आ रही है। और मौत करीब आने के कारण या तो तुम आध्यत्मिक हो जाते हो या फिर अधिक कामुक हो जाते हो।

ये दो ही सुरक्षाएं है: या तो तुम सत्य की, शाश्वत की खोज की तरफ मुड जाते हो, जहां कि कोई मृत्यु नहीं है, या तुम अधिक कामुक कल्पनाओं में अपने आप को डुबो देते हो। और विशेष रूप से बौद्धिक व्यक्ति, जिंहोंने अपना सारा जीवन सिर में ही जिया है। पैंतालीस की आयु में जाकर अधिक शिकार बनते है। फिर कामुकता उनसे बदला लेती है, इसे इंकार किया गया है, अब मृत्यु समीप आ रह है। और फिर कौन जानता है कि तुम यहां होओगे या नहीं, फिर से ये जीवन होगा या नहीं। यहां मृत्यु समीप आ रही है, और अभी तक तो तुम अपने सिर से ही जिएं हो। कामुकता प्रतिशोध की भावना के साथ फूट पड़ती है।

कार्ल गुस्ताव जुंग एक नवयुवती के प्रेम में पड़ गया। अब यह बात तो उसकी प्रतिष्ठा के बिलकुल विपरीत थी। पत्नी भी परेशान थी, क्योंकि पत्नी ने उसे बहुत प्रेम किया था। उस पर बहुत भरोसा किया था। देखो उसने इसे भी किस सुंदर ढंग से युक्तिसंगत ठहरा दिया। उसकी तरकीब तो देखो–इसी तरह तो मूर्च्छित व्यक्ति जिए चला जाता है। वह अचेतन ढंग से कोई काम करेगा, फिर उसे युक्तिसंगत ठहराएगा, और यह साबित करने की कोशिश भी करेगा कि यह अचेतन नहीं है: 'मैं इसे बड़े होश से कर रहा हूं–सच तो यह है कि इसे सभी को किया ही जाना चाहिए।'

उसने क्या किया? उसने एक सिद्धांत विकसित किया कि संसार में दो तरह की स्त्रियां होती है: एक मां के वर्ग की, देखभाल करने वाली श्रेणी की, दुसरी पत्नी के किसम की, प्रेमिका जैसी, एक रखेल जैसी, जो तुम्हारी प्रेरणा बन जाती है। और आदमी को दोनों की जरूरत होती है–और कार्ल गुस्ताव जुंग जैसे व्यक्ति को तो निश्चित दोनों की ही जरूरत होती है। उसे तो प्रेरणा की आवश्यकता भी है,और उसके देख भाल करने वाली स्त्री की भी जरुरत है। इस कार्य को उसकी पत्नी पूरा कर रही है–वह प्रेम करने वाली है, वह मां की श्रेणी की है। मगर इससे उसकी आवश्यकता तो पूरी होती नहीं–उसे तो प्रेरणा भी तो चाहिए, उसे एक रोमांटिक स्त्री भी चाहिए, एक प्रेमिका जो उसे गहरे सपनों में ले जा सके, उसके लिए यह आवश्यक अति आवश्यक है। जुंग ने इस सिद्धांत का विकास किया। यह मांग एक युक्तिसंगत है।

अब देखों मन की चालबाजी, उसने इस सिद्धांत का दूसरा भाग विकसित नहीं किया, पुरुष भी तो दो प्रकार के होते है, यही तो तुम जान सकते हो कि यह भी एक युक्तिसंगत बात है। अगर यह एक सच्ची अंतर्दृष्टि होती, पिता किस्म के और प्रेम किस्म के...फिर तो जुंग की पत्नी को भी दो की आवश्यकता हो सकती है। और होनी भी चाहिए! यदि जुंग भी सोचता है कि वह प्रेमी किस्म का है, तब उसे पिता किसम के पुरुष की आवश्यकता होगी। और यदि वह यह समझता है कि पिता किस्म का है तो उसे प्रेम किस्म के व्यक्ति की जरूरत होगी। परंतु वह दूसरा सिद्धांत तो उसने कभी विकसित किया ही नही। इसी से तुम देख सकते हो कि यह अंतदृष्टि नहीं है। यह बस एक चालबाज मन है, एक युक्ति संगतता है।

हम युक्तिसंगतता किए चले जाते है। हम चीजों को बेहोशी में करते चले जाते हैं। हम उन्हें करते है बिना यह जाने कि हम ऐसा क्यों करते आ रहे है। परंतु हम इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते की ये सब एक यंत्रवत हम कर रहे है: 'मैं भला कोई ऐसा काम कर सकता हूं, जिसके प्रति मे सजग नहीं हूं, मैं इसे बिना जाने ही कर रहा हूं।' मन की इन चालबाजीयों से इन युक्ति संगतताओं से सावधान रहो। और फिर इस तरह के लोग दूसरों की किस तरह से सहायता कर सकते हैं। यह एक जाना माना तथ्य है, कि काल जुंग के बहुत से रोगियों ने आत्महत्या कर ली थी। क्यों? वे तो सहायता प्राप्त करने के लिए आये थे–उन्होंने आत्महत्या क्यों कि? कोई बात जरूर आधारभूत रूप से गलत होगी। उसका विश्लेषण सब बकवास था। वह एक बड़ा घमंडी व्यक्ति था, एक

अहंकारी, सदा लड़ने को तत्पर रहता था। शायद उसका सारा मनोविश्लेषण ही सिग्मंड फ्रॉयड के विरोध में उसके अहंकार से विकसित हुआ। शायद पुनः यह एक युक्तिसंगतता मात्र है, क्योंकि वह स्वयं उन्हीं समस्याओं से पीड़ित जान पड़ता है, जिनके विषय में वह दूसरों की सहायता करने की सोच रहा है।

जुंग सदा भूत-प्रेतों से भयभीत रहता था, अपने बुढ़ापे में भी वह भूत-प्रेतों से डरता था। अपने जीवन काल में उसने अपनी सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक को प्रकाशित न किया, क्योंकि वह डरता था कि लोगों को तथ्यों का पता चल जाएगा। इसलिए उसके संस्मरण प्रकाशित तो हुए। परंतु उसके लिए उसने यह सुनिश्चित कर लिया था कि उसे उसकी मृत्यु के बाद प्रकाश्ति करें। अब, यह किस ढंग का सत्य और प्रामाणिकता है? वह गलत पाए जाने, या भूल में होने से इतना डरता था कि उसने अपने जीवन काल मे अपने जीवन से संबंधित कोई तथ्य प्रकशित न होने दिया।

मैं एक घटना पढ़ रहा था:

एक व्यक्ति मनोचिकित्सक के पास आया और उसने चिकित्सक के सामने अपनी सारी जिंदगी की कथा खोल कर रख दी, अपने बचपन के अनुभाव, अपनी भावनात्मक जिंदगी, अपनी भोजन की आदतें, अपनी कामकाजी समस्याएं, और जो कुछ भी वह सोच सकता था। 'हूं' चिकित्सक ने कहा: 'मुझे तो ऐसा नहीं लगता कि तुम्हारे साथ कुछ गड़बड़ है। तुम तो उतने ही स्थिर बुद्धि जान पड़ते हो जितना कि मैं हूं।'

'लेकिन, डॉक्टर' रोगी ने प्रतिरोध किया, आतंक का एक स्वर उसकी आवाज में झलक आया था, 'ये जो तितलियां हैं, इन्हें मैं बिलकुल बर्दाश्त नहीं कर सकता। जो मेरे पूरे शरीर पा चढ़ी हुई है।'

'भगवान के लिए', डॉक्टर पीछे हटते हुए चिल्लाया, 'कृपाय उन्हें मेरे उपर तो मत झाड़ो।'

तुम्हारे रोगी हो चिकित्सक, सब एक ही नाव में सवार हैं। मनोविश्लेषक और विश्लेषी एक-दूसरे से बहुत दूर नहीं है। यह एक खेल है। शायद मनोविश्लेषक अधिक चतुर है, पर ऐसा नहीं है कि वह सचाई को जानता है–क्योंकि सचाई को जानने के लिए तुम्हें अत्यंत होशपूर्ण होना होगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। यह बौद्धिक चिंतन का प्रश्न नहीं है। तुम्हारी दार्शनिकता से इसका कुछ लेना-देना नहीं है। सत्य को जानने के लिए व्यक्ति को सजगता में विकसित होना ही होता है।

गुर्जिएफ एक भविष्य के मनोविज्ञान की बात करता था। वह कहता था कि मनोविज्ञान अभी है नहीं, क्योंकि यह हो कैसे सकता है। अभी तो मनुष्य ही नहीं है। जब मनुष्य ही नहीं है तो उसके विषय में मनोविज्ञान कैसे हो सकता है। पहले तो मनुष्य को अस्तित्व में आना होगा, फिर मनुष्य के विषय में कोई विज्ञान अस्तिव में आ सकता है। अभी तो, जो कुछ भी है उसे मनोविज्ञान तो नहीं कह सकते, शायद उस यंत्र के विषय में है, जो आज मनुष्य है।

मनोविज्ञान केवल एक बुद्ध के आस-पास ही खड़ा हो सकता है। क्योंकि बुद्ध पुरूष जीता है होशपूर्वक। क्या उसका मनस है, क्या उसकी आत्मा है, यह तुम खोज ले सकते हो। साधारण आदमी जीता है बिना किसी आत्मा के। हां, तुम उसकी यंत्र-रचना में कोई गड़बड़ी पा सकते हो, और वह गड़बड़ी ठीक भी की जा सकती है। आज जिसे हम मनोविज्ञान की तरह से जानते है, वह और कुछ भी नहीं बस यह यही यंत्र सरचना है। और इस अर्थ में पावलॉक और स्किनर, फ्रॉयड और जुंग से कहीं अधिक सच है–क्योंकि वे सोचते है कि मनुष्य एक यंत्र है। और ये ठीक भी है, जैसा आज मनुष्य है, वे उस विषय में सच ही सोचते है। क्योंकि वे सोचते है कि यही अंत है: मनुष्य और कुछ भी नहीं हो सकता। यही उनकी सीमा है, वे सोचते है कि मनुष्य केवल यंत्र ही हो सकता है। जहां तक वर्तमान समय के मनुष्य का प्रश्न है, वे सही हैं, मनुष्य एक यंत्र है–परंतु वे यह भी सोचते है कि मनुष्य और कुछ हो भी नहीं सकता। यहां बात अधुरी है, यहां वे गलती पर हैं। लेकिन फ्रॉयड, जुंग और एडलर तो और

भी गलत है, क्योकि वह तो सोचते हैं कि मनुष्य अभी इस प्रथ्वी पर है ही। अवश्यकता तो बस इस बात की है कि तुम उसका अध्यन करो और फिर तुम उसे जान जाओगे। पर मनुष्य वहां है ही नहीं। वहां तो एक बड़ी अचेतन घटना है।

मनुष्य एक कल्पना है–इसे एक सर्वाधिक आधार भूत अंतर्दृष्टि बनने दो। यह तुम्हारी सहायता करेगी, तुम्हें झूठ से बाहर निकलने में, धोखे से बाहर निकलने में।

तंत्र तुम्हें और भी अधिक होशपूर्ण बनाने का एक प्रयास है। तंत्र शब्द का अर्थ ही है, 'चेतना का विस्तार।' यह एक संस्कृत शब्द मूल 'तन' से आता है: 'तन का अर्थ है विस्तार। तंत्र का अर्थ हो गया चेतना का विस्तार–और मौलिक तथ्य, सर्वाधिक आधारभूत तथ्य जो समझना है वह यह है कि तुम गहन निंद्रा में हो, तुम्हें जगाया जाना है।'

तंत्र भरोसा करता है, समूह-विधियों में–यह बात भी समझ ली जानी चाहिए। उस अर्थ में गुर्जिएफ इस युग के सर्वाधिक महान तांत्रिकों में से एक है। उदाहरण के लिए: यदि कोई सौया हुआ है तो बहुत कम संभावना है कि वह अकेला जाग सकेगा। इसे इस तरह से समझो: नववर्ष पर तुम सोचते हो, जैसा कि तुमने सदा सोचा है, और कितने ही नव दिवस बीत गए, सदा तुमने कसम खाई कि दुबारा अब कभी धूम्रपान नहीं करोगे–और फिर से नया वर्ष आ गया है और तुम सोचने लग जाते हो कि इस बार तो यह होगा ही। तुम कसम खाते हो कि तुम अब कभी धूम्रपान नहीं करोगे, परंतु यह बात जाकर तुम दूसरे लोगों से नहीं बताते, तम्हें एक डर लगता है। दूसरों को यह बताना खतरनाक है, क्योंकि स्वयं को तो तुम जानते ही हो: बहुत बार तुमने अपनी कसम तोड़ी है–यह बड़ी प्रतिष्ठा-नाशक बात है। इसलिए तुम इसे अपने तक ही सिमित रखते हो: अब सौ मे से बस एक कि ही संभावना है कि कसम बनी रहेगी; निन्यान्वे संभावनाएं यहीं है कि देर-सवेर यह टूटेगी।

तुम एक अचेतन प्राणी हो, तुम्हारी कसम का कोई खास मतलब नहीं है। मगर यदि तुम जाओ और शहर में हर किसी को बता दो–मित्रों को, सह-कर्मियों को, बच्चों को, पत्नी को, तुम हर किसी से जाकर कह दो कि, 'मैंने कसम खाई है कि अब मैं धूम्रपान नहीं करूंगा,' तब संभावनाएं अधिक हैं, कम से कम दस प्रतिशत, कि तुम धूम्रपान न करोगे। पहले केवल एक संभावना थी, अब दस हो गई। नब्बे प्रतिशत संभावना अभी भी यही है कि तुम धूम्रपान करोगे, परंतु धूम्रपान न करने के पक्ष में अब पहले से अधिक भूमि है। एक ज्यादा ठोस आधार है। एक प्रतिशत से बढ़कर यह दस प्रतिशत हो गया। परंतु यदि तुम किसी धूम्रपान न करने वाले समूह मे शामिल हो जाओ, उस तरह कि किसी संस्था के सदस्य हो जाओ, तब संभावना और भी अधिक बढ़ जाती है। निन्यान्वे प्रतिशत संभावना है कि तुम धूम्रपान न करोगे। क्या हो गया?

जब तुम अकेले होते हो, तुम्हें बहार से कोई सहयोग नहीं मिलता–तुम अकेले हो, तुम आसानी से नींद में गिर सकते हो। और किसी को पता भी नहीं होता, इसलिए तुम्हें चिंता भी नहीं होती। जब सब को पता होता है, उनकी जानकारी ही तुम्हें अधिक सज रखने का काम करती है। अब तुम्हारा अहंकार दांव पर है, तुम्हारी प्रतिष्ठा और सम्मान दांव पर है। परंतु अगर तुम अधूम्रपानियों की किसी संस्था में शामिल हो जाओ, तब तो संभावना और अधिक है–क्योंकि तुम आदतों से जीते हो! कोई सिगरेट का पैकेट अपने खीसे से निकालता है और अचानक तुम भी अपने खीसे को टटोलने लग जाते हो। तुम बस यांत्रिक हो, कोई धूम्रपान कर रहा है और तुम सोचने लगते हो कि धूम्रपान में कितना मजा था। कोई भी धूम्रपान नही करता और तुम गैर-धूम्रपानियों के साथ हो, तब कोई तम्हें याद भी नही दिलाएगा, और आदत धीरे-धीरे अदृश्य हो जाएगी। यदि किसी आदत का उपयोग न किया जाए, वह धीरे-धीरे अदृश्य हो जाती है, यह तुम्हारे ऊपर से अपनी पकड़ खो देती है।

तंत्र कहता है कि मनुष्य केवल समूह विधियों द्वारा, स्कूलों द्वारा, जाग सकता है। यही कारण है कि मैं संन्यास पर इतना जोर देता हूं। अकेले, तुम्हें कोई मौका नहीं है। साथ-साथ संभावना काफी अधिक है। यह ऐसा ही है जैसे कि दस आदमी एक रेगिस्तान मे खो जाएं, और रात में बहुत खतरा हो, दुश्मन उन्हें मार दे सकता है, जंगली जानवर उन्हें मार दे सकते है, डाकू आ सकते है, हत्यारे आ सकते हैं, बड़ी विपत्ति है। अब वे एक समूह-विधि का निर्माण करते है, वह कहते है, 'हम में से प्रत्येक एक-एक घंटे जागेगा।' यह सोचना कि उनमें से हर व्यक्ति रात में आठ घंटे जाग सकेगा, एक मूर्च्छित व्यक्ति से यह आशा करना बहुत अधिक है, परंतु हर व्यक्ति एक घंटे तो जागा ही रह सकता है। और इससे पहले कि वह सोने लगे, वह किसी अन्य को जगा देगा, तब इस बात की अधिक संभावना है कि उस समूह में कम से कम एक व्यक्ति तो सारी रात जागता रहेगा।

अथवा, जैसे कि गुर्जिएफ कहा करता था: तुम एक कारागृह में हो और तुम कारागृह से बाहर आना चाहते हो। अकेले बाहर आने के अवसर बहुत ही कम है, लेकिन यदि सभी कैदी समूह बना लें, तब काफी संभावना हो जाती है। वे गॉर्ड को उठा कर फैंक सकते है, वे गॉड को मार सकते है। वे दीवार तोड़ ले सकते है। यदि सभी कैदी एक साथ हो जाएं तो संभावना अधिक हो जाती है कारागृह से बाहर आने की।

मगर संभावनाएं और भी अधिक बढ़ जाएगी यदि ऐसे लोगों से संपर्क हो जो कि कारागृह के बाहर है। जो कि पहले से ही स्वतंत्र हो चूके है। गुरू खोज लेने का कुल इतना ही अर्थ है, किसी ऐसे व्यक्ति को खोज लेना जो कारागृह के बाहर है। वह अत्यंत सहायक हो सकता है–कई कारणों से। वह उन आवश्यक चीजों की पूर्ति कर सकता है जिनकी कारागृह से बाहर आने

के लिए तुम्हें आवश्यकता पड़ सकती है। वह तुम्हें यंत्र भेज सकता है, आरियां, ताकि तुम सींकचे काट कर बाहर आ सको। वह बाहर से देख सकता है कि कब गॉड बदलतें हैं, तब तुम्हें सूचित कर सकता है–उस अंतराल में तुम बाहर निकलने संभावना बन जाती है। वह तुम्हें सूचना दे सकता है कि जब गॉड रात में सो जाते है। वह ऐसी भी व्यवस्था कर सकता है कि गॉड किसी रात्रि विशेष में शराब पीकर बेहोश हो जाएं। वह जेलर को अपने घर किसी पार्टी में आमंत्रित कर ले सकता है। वह हजार तरह कि संभावानएं पैदा कर सकता है, जिसे तुम कारागृह के भीरत से नहीं कर सकते। वह तुम्हारी बाहर से सहायता कर, ऐसा वातावरण निर्मित कर सकता है ताकि जब तुम कारागृह से बाहर आओ, लोग तुम्हें स्वीकार कर लें, तुम कारागृह के बाहर आ भी सकते हो परंतु समाज तुम्हें पुनः कारागृह के अधिकारियों को सौंप देगा।

किसी ऐसे व्यक्ति के संपर्क में आना, जो पहले से ही जागा हुआ हो, ये अत्यंत आवश्यक है। और ऐसे लोगो का साथ होना भी अति आवश्यक है, जो जागने के लिए तैयार हो, या सोच रहे हो। संघ का या समूकि विधि का यही अर्थ है। तंत्र एक समूह विधि है। यह कहता है: साथ रहो। सारी संभावनाएं जान लो, बहुत से लोग साथ हो सकते है, कोई अधिक बुद्धिमान है, और कोई प्रेमपूर्ण है। दोनों ही अधुरे है, पर अगर साथ हो जाएं तो उनमें एक सम्पूर्णता आ जाती है।

पुरुष आधा है स्त्री भी आधी है। तंत्र के अतिरिक्त सभी साधको ने दूसरो के बिना चलने का प्रयत्न किया हे। पुरुष ने अकेले प्रयत्न किया है, स्त्री ने भी अकेले प्रयत्न किया है। तंत्र कहता है: क्यों न हम सब मिल कर साथ हो लें, मिलकर साथ चले एक दूसरे के सहयोग के साथ? स्त्री आधी है, पुरुष भी आधा है–मिलकर वे एक बड़ी ऊर्जा हैं, पूर्ण वर्तुल, एक अधिक स्वस्थ ऊर्जा। दोनों साथ हो जाओ। यिन और यांग को साथ-साथ काम करने दो। इससे बाहर निकल जाने की तब ज्यादा संभावना होगी।

दूसरी विधियां लड़ाई और संघर्ष का प्रयोग करती है। पुरुष अपने भीतर की स्त्री से लड़ना शुरू कर देता है, और स्त्रियों से बचकर भागना शुरू कर देता है। एक दूसरे की सहयता की संभावना थी जहां, उस का उपयोग

न कर के वह एक दूसरे के शत्रु जैसे हो जाते है। तंत्र कहता है कि यह महज मूढ़ता है, तुम स्त्री से लड़ने में व्यर्थ अपनी ऊर्जा नष्ट कर रहे हो–क्योंकि लड़ने के लिए और बड़ी बाधाए है। लड़ने की बजाए स्त्री के साथ रहना कहीं अधिक बेहतर है। एक इकाई की भांति साथ-साथ रहो और अचेतन प्रकृति का सामना करने की तुम्हारी अधिक संभावना होगी।

सभी संभावनाओं का उपयोग कर लो, तभी कुछ संभावना है कि तुम एक चेतन प्राणी के रुप में विकसित हो सकोगे, तुम एक बुद्ध बन सकोगे।

अब सूत्र प्रवेश करते है–बड़े ही महत्वपूर्ण सूत्र हैं।

पहला सूत्र:

सड़े मांस की गंध पर रीझने वाली मक्खी को

चंदन की सुगंध भी, जान पडती है दुर्गंध

प्राणी जो तज देते है निर्वाण को

लोलुप हो जाते हैं क्षुद्र संसारिक विषयों के ...

पहली बात: जैसा कि मैंने अभी कहा–मनुष्य एक यंत्र है। मनुष्य जीता है आदतों से, अतीत से, स्मृतियों से। मनुष्य जीता है उस जानकारी से जा उसने जान रखी है। जो पहले से ही प्राप्त है, इसलिए वह नए से हमेशा चूक जाता है,...और सत्य है सदा नया। वह उस मक्खी की तरह से है जिसे सड़े मांस की गंध तो भाती है, वह गंदी बदबूदार दुर्गंध, परंतु वह मक्खी को चंदन की सुगंध नहीं महसूस होती उसे वह बदबू लगती है। उसकी मजबूरी है क्योंकि उसके पास स्मृतियों को एक विशिष्ठ ढांचा है। जो उसके पूर्वजों ने अतित से उसे महसूस किया है। उसने सदा सोचा कि सड़े मांस की गंध ही सुगंध है। वही उसका ज्ञान है, वही उसकी आदत है, वही उसकी चर्या है–वही उसका मृत अतित है। वही उसका ज्ञान है, वही उसकी आदत बन गया। चंदन की सुगंध उस मक्खी को बहुत बदबूदार और खराब दुर्गंध जान पड़ेगी।

हैरान मत होना...तुम्हारे साथ भी यही हो रहा है। यदि तुम देह में बहुत अधिक जिए हो, तब ऐसे व्यक्ति जो आत्मा में जी रहा है, उसके समीम भी आना तुम्हें ऐसा लगेगा तुम अब मिटे तुम अंदर तक सिहर जाओगे। एक बुद्ध के पास आकर तुम सुगंध का अनुभव नहीं करोगे, हो सकता हैं तुम्हें दुर्गंध आनी शुरू हो जाए। तुम्हारी अपनी व्याख्या–वर्ना तो लोग क्यों ईसा मसीह की हत्या करते? जीसस एक चंदन थे! और लोगों ने उसे मार डाला। लोगों ने सुकरात को जहर दे दिया। सुकरात भी एक चंदन ही था। लेकिन मक्खियों–वे अपने अतित को समझती है, वे अपने अतित के अनुसार ही व्याख्या करती है।

एक दिन में पढ़ रहा था: एक वैश्या, एथेंस की सबसे मशहूर वैश्या, एक दिन सुकारात के पास आई। वहां केवल कुछ ही लोग सुकरात के पास बैठे थे। सुकारात उनसे बातें कर रहे थे। उस वैश्या ने चारों और देखा और सुकरात से कहा, 'क्यों? आप जैसा महान व्यक्ति और इतने थोड़े से व्यक्ति ही उसे सुनने के लिए बैठे है। मैं तो सोचती थी सारा एथेंस ही यहां पर पहूंच गया होगा। और यहां के सर्वाधिक सम्मानित, आदरणीय, राजनेताओं, पंडित-पुरोहितों को यहां देख नहीं रही हूं। क्या कारण है इसका? सुकरात, कभी तुम मेरे घर पर आओ–तुम इन सब को एक पंक्ति में खड़ा वहां पाओगे।'

सुकरात ने कहा: 'तुम सही कहती हो–क्योंकि तुम एक सार्वभौमिक आवश्यकता की पूर्ति करती हो–मैं नहीं करता। मैं तो थोड़े से लोगों को आकर्षित करता हूं, कुछ थोड़े से चुने हुए लोग। दूसरे मेरी सुगंध महसूस नहीं कर सकते। वे बचते है। यदि वह मेरे रास्ते में पड़ भी जाते है कभी तो देख कर तुरंत भाग जाते है। वे बहुत भयभीत हो जाते है। क्योंकि मेरी सुगंध भिन्न है।

वह वेश्या अत्यंत बुद्धिमती रही होगी। उसने सुकरात की आंखों में देखा, और उसके चरणों म ेंझूकी और कहां: 'सुकरात, मुझे अपना मित्र स्वीकार कर लो,' और कहते है कि फिर वहां से वह कभी नहीं गई, उस छोटे से समुदाय का एक अंग बन कर रह गई।

सच ही वह एक अत्यंत जागरूक स्त्री रही होगी—इतना अचानक परिवर्तन। वह पल में यह बात समझ गई, परंतु देखों एथेंस ने उसी सुकारत को जहर देकर मार डाला। उन्हें वह आदमी पसंद नहीं आ रहा था। वह आदमी बड़ा ही खतरनाक जान पड़ता था। उसके खिलाफ बहुत से झूठे आरोप लगाये गये। उसमें से यह एक था कि वह लोगों के विश्वास को नष्ट कर रहा है। वह नवयुवको के मन को भ्रष्ट कर रहा है। वह एक अराजकवादी है। यदि उसे और जिंदा रहने दिया गया तो, वह सारे समाज कि जड़ें उखाड़ जाएगी।

वह एक अलग ही काम कर रहा था, वह अ-मन की एक स्थिति निर्मित करने की कोशिश कर रहा था। लेकिन लोगों ने सोचा, 'कि वह लोगों के मन को नष्ट कर रहा है, वे भी अपनी जगह सही है, मक्खियां। हां, नवयुवक सुकरात की और बहुत आकर्षित हो रहे थे—क्योंकि केवल नौजवान ही इस सूगंध से प्रभावित हो सकते है, केवल यौवन में ही सहास है, ये केवल शरीर की बात नहीं अंतस के यौवन की बात है। आप जवान हो कर भी युवक नहीं हो और एक साठ साल का व्यक्ति आपको युवा लगेगा। जिविंत्ता की बात है ऊर्जा की बात है। कुछ वृद्ध लोग मेरे पास आते है, सुकरात के पास भी आते होंगे, जो जवान ही होते है। इसी कारण तो वे आते है, वर्ना तो वे आ ही नहीं सकते। शायद उनका शरीर वृद्ध जरूर हो गया है, अगर कोई वृद्ध व्यक्ति या स्त्री मेरे पास आती है, इसलिए कि उनकी आत्मा अभी भी जवान है। उनके अंदर का यौवन आज भी ताजा है, वे नए को समझना उसमें डूबना चाहते है, युवक में ही सहास हो सकता है। कहावत है कि एक बुढे कुत्ते को कोई नए करतब नही सिखा सकता। यह अत्यंत ही कठीन कार्य है। वह जिन्ह पूराने करतबों को जानता है उन्हें ही दोहराता रहता है। इसी तरह से एक बूढ़ा मन कोई नई चीज सिख पाने में कठीनाई महसूस करेगा।

और ये सब बातें आमूल रूप से इतनी भिन्न हैं, तुम्हें जो कुछ भी सिखाया गया है, उस सबसे इतनी नितांत विपरीत है कि कोई व्यक्ति सच में युवा न हो, वह इन्हें सून और समझ ही नहीं सकता।

इसलिए बुद्ध की और नौजवान हमेशा से आकर्षित होते आए हैं। यह एक संकेत है कि शाश्वत जैसी कोई चीज है वहां, आस्तित्व की कुंवारी अनछूई किरण सुकरात में कहीं तो बह रही थी।

जब जीसस जीवित थे, तुम नवयुवाओं को उसके पीछे चलते हुए पाओगे। तुम युवा लोगों को पोप के पास जाता न पाओगे—वहां केवल बूढ़े लोग, मुर्दा लोग, जो काफी सालों पहले मर चुके है उन्हें ही पाओगे। जब मौलिक शंकराचार्य जीवित थे, तुम उनके आस-पास चारों तरफ युवा लोगों को पाते हो। लेकिन पुरी के शंकराचार्य को केवल मुर्दा लोग, जो मात्र अब एक लाश है उसे बैठे हुए पाओगे। जीवंत लोग—जो अभी ऊर्जा से लवरेज है, उसे नही पाओगे।

तुम जाकर किसी भी मंदिर में देख सकते हो, और तुम केवल बूढ़े आदमियों और बूढ़ी स्त्रियों को ही वहां पाओगे—युवा वहा नहीं होते। सच तो यह है कि जब कभी भी कोई धर्म सच में ही है, वह युवा को आकर्षित करता है, सत्य जब होता है, वह ऊर्जा से लवरेज होता है, उतुंग ऊर्जा। और जब सत्य पुराना हो जाता है, लगभग मृत, तब वह मृत लोगों को ही आकर्षित करता है।

बूढ़े लोग धर्म के प्रति अगर आकर्षित होते है तो केवल मृत्यु के भय के कारण। बुढ़ापे में ता नास्तिक भी आस्तिक हो जाते है...मृत्यु भय के कारण। जब कोई युवा व्यक्ति सत्य की और आकर्षित होता है, वह खिंचाव मृत्यु भय के कारण नहीं होता, क्योंकि मृत्यु बोध तो अभी उसने जाना ही नही, वह तो अभी भी कौसो दूर है।

परंतु उसका खिंचाव जो होता है, जीवन के प्रति अत्यधिक प्रेम के कारण होता है। सच्चे और झूठे धर्म के बीच बस यही तो भेद है। झूठा धर्म मृत्युन्मुखी हो जाता है, और सच्चा धर्म जीवनोन्मुखी होता है।

तुमने यह शब्द जरूर सुना होगा, लगभग संसार की सभी भाषाओं में यह कुरूप शब्द है: 'ईश्वर-भीरु'। यह शब्द मृत, कुरूप, मंदबुद्धि, बूढ़े लोगों द्वारा निर्मित किया गया होगा। ईश्वर-भीरु? ईश्वर से भी कोई कैसे डर सकता है और क्यों? अगर तुम ईश्वर से भी डर रहे हो तो उससे प्रेम कैसे कर सकते हो? भय से भी कभी प्रेम उपजा है, उससे तो मात्र घृणा ही उत्पन्न हो सकती है। भय से तो तुम ईश्वर के विरुद्ध हो सकते हो, क्योंकि वह तुम्हारा शत्रु होगा, तुम उसे प्रेम कैसे कर सकते हो? क्या तुम अपनी मां से कभी डरे हो, यदि तुम उससे प्रेम करते हो? तुम अपनी स्त्री से कभी डरे हो, यदि तुम उससे प्रेम करते हो? यदि तुम प्रेम करो, तब वहां पर कोई भय नहीं होता। प्रेम तो सब भय को दूर कर देता हैं। ईश्वर प्रेम..ईश्वर के साथ रोमांटिक तरीके से प्रेम में, ईश्वर के साथ परमानंदित रूप से प्रेम में।

पर यह एक युवा मन के लिए ही संभव है। वह युवा मन अभी युवा शरीर में है या बुढ़े शरीर में है, ये बात गौंण है, असंगत है, परंतु यह तो संभव केवल युवा मन के लिए ही हैं। अब सुकरात को मृत्यु दंड दिया जाता है, क्योंकि वह युवा लोगों को अपनी और आकर्षित कर रहा था। परंतु इस बात को सदा स्मरण रखो: जब कभी भी कोई धर्म पैदा होता है, संसार के सब कोनों से युवा लोग उस तरफ खिंचते चले जाते है, उस तरफ दौड़ते हुए चले आते है।

ये मात्र एक संकेत है, इस बात का कि कुछ जरूर वहां घट रहा है। जब बूढ़े लोग किसी तरफ दौड़े, तुम सुनिश्चित कर सकते हो कि वहां कुछ भी नहीं हो रहा है। वहां पर कुछ भी क्रियात्मक नहीं घट रहा, और जहां नवयुवक जा रहे है, उस स्थान पर जरूर कुछ न कुछ नवनुतन घट रहा है। कुछ सकारात्मक हो रहा है।

सड़े मांस की गंध पर रीझने वाली मक्खी को

चंदन की सुगंध भी, जान पडती है दुर्गंध

प्राणी जो तज देते है निर्वाण को

लोलुप हो जाते हैं क्षुद्र संसारिक विषयों के सत्य अनजान है, रहस्यपूर्ण है। अपनी पुरानी आदतों के साथ तुम इस तक नहीं पहुंच सकते। तुम इस तक तभी पहुंच सकते हो, जब तुम सभी आदतों से निर्वस्त्र हो जाओ।

ईसाई पादरी के चोगे को 'दि हैबिट' (आदत) कहते हैं–यह हैबिट शब्द का सुंदर उपयोग है। हां, मैं कहता हूं, जब तुम सभी आदतों से निर्वस्त्र हो जाते हो, सभी आदतों को उतार फैंकते हो, नग्न हो जाते हो। सब संसार के थोपे हुए वस्त्र उतर जाते है, तब तुम स्मृति से नहीं जागरूकता से काम करते हो, यह देखने के दो भिन्न ही ढंग है। जब तुम स्मृति से कार्य करते हो, तुम वह नहीं देखते जो है। तुम वही देखते चले जाते हो जो तुमने पहले देखा था। तुम अतित के संदर्भ में ही वर्तमान की व्याख्या किये चले जाते हो। तुम कुछ ऐसी व्याख्या आरोपित किये चले जाते हो जो है ही नहीं। तुम उन चीजों को देखते चले जाते हो, जो है ही नहीं। और उस सत्य को नहीं देख पाते जो घट रहा है। तुम्हें अपनी स्मृतियों उठा कर अलग रखनी होगी। माना स्मृति एक अच्छी चीज है, उसका उपयोग करो, पर सत्य को कभी भी स्मृति से नहीं जाना जा सकता। सत्य को तो तुम कैसे स्मृति से जान सकते हो? तुमने अपने अतित में तो पहले सत्य को कभी जाना नहीं है।

सत्य को जाना नहीं जा सकता, उसे केवल अनुभुत किया जा सकता है। उसे पिया जा सकता है उसमें जीया जा सकता है। पहले तुम्हें अपनी सभी स्मृतियों को अलग रखना होगा। तुम्हें अपने मन से कहना होगा, 'शांत रहो, मुझे केवल देखने दो, मैं स्पष्टिता से देखना चाहता हूं, आंखों पर पड़े विचार के, विश्वास के, धर्मग्रंथो के, संस्कारों के, तुम्हारी व्याख्यों के, धर्म के पर्दो से परे केवल कवांरा हो कर देखना है, जहां केवल सत्य हो और

वहां कुछ भी नहीं और तो और मैं भी नहीं, बस होना ही रह जाए।' केवल तभी तुम अस्तित्व के रहस्य के साथ लयबद्ध हो सकते हो।

और याद रखना: सत्य कभी स्मृति नहीं बनता। तुमने अगर इसे जान भी लिया तब भी यह स्मृति में समाविष्ट नहीं हो सकता। और जब कभी यह फिर होगा, और तुम इसे जानोगे, यह फिर नया और कवांरा ही होगा। यह कभी भी पुराना नहीं दोहराया जाता। यह सदा नया है और नया ही रहता है। यह अनछूया है, ताजा है यही इसका सबसे बड़ा गुण है। सह सनातन है यह कभी पुराना नहीं होता। यह सदा युवा होता है।

इसलिए यदि हे राजन, तुम सत्य को जानना चाहते हो, मुझे जो घटा है, तब आप अपने मन को अलग हटा दिजिए। मैं यह अच्छी तरह से जातना हूं कि हम सबने एक मक्खी की भांति ही इस जीवन को जीया है। देह से और मन से उससे अधिक हम नही जानते। उसके पार भी कोई अदृश्य आलोकिल लोक है आप नही जानते। मैं आपके सामने यहां खड़ा हूं, मैं अब उन दोनों के पार हूं। और हमारे मन के अनुसार इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, इसका कोई भी उपाय नहीं है। यह व्याख्यतित है, यदि तुम सच में ही इसकी अनुभूति करना चाहते हो, तब तुम इसका अनुभव तो कर सकते हो। परंतु इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती।

ईश्वर की परिभाषा नहीं की जा सकती। उसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। कृपया इस बात का समरण रखें, इस कि व्याख्या कभी मत करना, क्योंकि यदि तुमने इसकी व्याख्या की, तुम इसे रूपांतरित कर दोगे। जो शब्दों में आयेगा वह कुछ और ही होगा। ईश्वर किसी विचार द्वारा समाहित नहीं किया जा सकता, लेकिन ईश्वर को जिया जा सकता है, वह तुम में घट सकता है, तुम में बरस सकता है, तुम्हें आपनी अनुभूति से अल्हादित कर सकता है, आनंदित कर सकता है। तुम ईश्वर हो सकते हो। यह संभव है। परंतु हमारे मन में ईश्वर समाविष्ट नहीं हो सकता। मन तो एक बहुत ही छोटा सा पात्र है, यह तो तुम्हारी एक चाय के चमच के जैसा है, इसमें प्रशांत महासागर की विशालता को नहीं समेटा जा सकता। इसमें उसकी विशलता के संकेत न मिलेगे, उस में कोई तुफान न उठेगा, कोई उतंग लहरों की तरंग नहीं आयेगी। हां, परंतु एक बात सत्य है उसका स्वाद जरूर सागर के जैसा ही होगा।

सरहा कहता है: 'हे राजन, आदि आप मुझे देखना ही चाहते हो कि मुझे क्या घटा है, तब आपको अपने मन को दूर रखना होगा–आपके पास एक मक्खी जैसा मन है। सोचने की, महसूस करने की, आपकी विशिष्ट आदतें है। आपने देह का और मन का एक जीवन जिया है, और अधिक से अधिक जो भी जाना है, बस उसके द्वारा सुना हुआ है–आपने बस धर्मगंथ पढ़ लिए है।

क्योंकि पहले सरहा स्वयं राजा को धर्मग्रंथ पढ़कर सुनाता रहा है। वह यह बात भी अच्छी तरह से जानता है कि राजा क्या जानता है, कितना जानता है। सरहा कहता है: 'मुझे यह जो कुछ भी हुआ है, इसे देख पाने के लिए आपको देखने की एक भिन्न गुणवता प्राप्त करनी होगी।'

मन सत्य से कभी नहीं मिल पाता, उसका सत्य से कभी सामना नहीं होता। मन के ढंग और सत्य के ढंग एक दम भिन्न है। यह एक अलग ही आयाम है। इसलिए संसार के सभी रहस्यदर्शियों का जौर अ-मन की अवस्था को प्राप्त करने पर है। ध्यान बस यही तो है, अ-मन की एक अवस्था, अ-विचार की एक अवस्था–परंतु पूर्ण तरह से जागरूक, समपूर्ण रोेएं-रेसा जगरूकता से प्रदीप्त हो जाए भर जाए। तब वहा कोई विचार नही होता। तुम्हारा आकाश तब मेधों से मुक्त होता है। फिर सूर्य द्युतिमान होकर चमकता है।

साधारणतः हम इतने विचारों, इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं, स्वप्नों से भरे होते है, मेधाच्छादित होते है कि सूर्य पूर्णता से चमक ही नहीं पाता। यह उन काले मेधो के पीछे छिप जाता है। इच्छा एक मेध है, विचार एक मेध है, कल्पना एक मेध है–और उस सत्य को जानने के लिए व्यक्ति को मधो से मुक्त तो होना ही होगा।

सरहा कहता है:

प्राणी जो तज देते है निर्वाण को

लोलुप हो जाते हैं क्षुद्र संसारिक विषयों के ...

संसार का अर्थ है जीना देह की भांति, मन की भांति, अहंकार की भांति। संसार का अर्थ है बाहर की और जीना। संसार का अर्थ है वस्तुओं के साथ जीना। संसार का अर्थ है, इस विचार के साथ जीना कि सब कुछ बस पदार्थ है, और कुछ भी नहीं। संसार का अर्थ है तीन विष: शक्ति, प्रतिष्ठा, प्रभाव–संसार में जीना इस विचार के साथ कि अधिक शक्ति हो, अधिक धन हो, अधिक प्रभाव हो...यह भी हो, वह भी हो, बस वस्तुओं में जीना और वस्तुओं के लिए जीना। संसार शब्द का यही अर्थ है।

जरा अपना निरीक्षण करो: क्या तुम कभी व्यक्तियों के साथ जिए हो अथवा या तुम मात्र वस्तुओं के ही संग जिए हो। तुम्हारी पत्नी एक व्यक्ति है या कि एक वस्तु? तुम्हारा पति एक व्यक्ति है या वस्तु? क्या तुम अपने पति के साथ जो व्यवहार करते हो एक व्यक्ति की भांति, एक श्रेष्ठ आंतरिक रूप से, किसी मुल्यवान व्यक्तित्व की भांति, अथवा मात्र एक उपयोगिता की भांति–कि वह घर की रोटी-दाल जुटता है। या कि तुम्हारी पत्नी वह घर की साज-संभाल करती है, बच्चों की देखभाल करती है? क्या तुम्हारी पत्नी स्वयं में ही एक साध्य है, या कि केवल उपयोगिता मात्र, उपयोग में लाई जाने वाली एक वस्तु की तरह। कभी तुम उसका उपयोग कामपूर्ति के लिए या फिर अन्य तरीको की तरह उसका उपयोग करते हो–परंतु व्यक्ति का उपयोग करने का अर्थ है कि तुम्हारे लिए वह व्यक्ति वस्तु नहीं है, वह एक व्यक्ति है जो अपने में खुद एक पूर्ण अस्तित्व रखता है।

व्यक्ति का उपयोग नहीं किया जा सकता, केवल वस्तुओं का उपयोग किया जा सकता है। व्यक्ति को खरीदा नहीं जा सकता, केवल वस्तुओं को खरीदा जा सकता है। व्यक्ति का इतना अधिक मूल्य है, इतनी दिव्यता, ऐसी महिमा–व्यक्ति का उपयोग तुम कैसे कर सकते हो? हां, वह अपने प्रेम के कारण आपको समरपर्ण कर सकती है या कर सकता है। पर उपयोग तुम नहीं कर सकते। और तुम्हें आभारी होना चाहिए। क्या तुम कभी अपनी पत्नी के आभारी हुए हो? क्या तुम अपने पिता के, अपनी मां के आभारी हुए हो? क्या तुम कभी अपने मित्रो के आभारी हुए हो? कभी-कभी तुम एक अजनबी के तो आभारी हो सकते हो परंतु अपने लोगों के आभारी कभी नहीं होते–क्योंकि उन्हें तो तुम केवल मान ही देते हो।

वस्तुओं के साथ जीना संसार में जीना है, व्यक्तियों के साथ जीना निर्वाण में जीना है। और एक बार तुम व्यक्तियों के साथ जीना प्रारंभ कर दो, वस्तुएं अदृश्य होने लग जाती है। साधारणतः तो व्यक्तियों को ही वस्तुओं में परिवर्तित किया जाता है। और जब कोई व्यक्ति ध्यानी होना आरंभ करता है, तब उसके लिए वस्तुएं भी व्यक्ति होना आरंभ कर देती है, एक वृक्ष भी व्यक्ति हो जाता है। एक चट्टान भी व्यक्ति बन जाती है। उसकी संवेदना के कारण उसकी जागरूकता के कारण हर चीज एक व्यक्तित्व का रूप लेना आरंभ कर देती है। क्योंकि ईश्वर तो जल-थल नब, चर-अचर में अपने पूर्ण अस्तित्व के साथ फैला है।

सरहा कहता है: हे राजन, आप संसार में जिए हैं और आप निर्वाण के ढंग को नहीं समझ सकते। यदि आप सच में ही इसे समझना चाहते हैं, तो आपको इसे जीना होगा–इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है। इसके स्वाद को जानने के लिए इसका कुछ स्वाद आपको लेना होगा। और अभी तो मैं यहां हूं, आपके सामने खड़ा हूं–और जो कुछ व्याख्याएं आप पूछ रहे है? निर्वाण आपके सामने खड़ा है, और आप अब भी सिद्धांतों की बात पूछ रहे हो? इतना ही नहीं–आपको एक दम अंधा होना चाहिए–आप मुझे अपने संसार में वापस ले जाने के लिए समझाने आये है! एक मक्खी मुझे मांस की सड़ी दुर्गंध के लिए चंदन के जंगल और उसकी सुगंध को छोड़ देने के लिए समझाने आए है। क्या आप पागल हो गए है?

सराह ने राज से कहा। मुझे अपने संसार में ले जाने के लिए समझाने की अपेक्षा, तुम मुझे मेरे संसार में आने के लिए समझाने दो। मैंने तुम्हारे संसार को जाना है, और मैंने इस नए आयाम में भी प्रवेश किया है, आपके संसार के अलावा मैंने एक शाश्वत सत्य को भी जाना है। तुम तो केवल आपना श्रुद्र संसार ही जानते हो...तुम मुझे और मेरी सच्चाई को नहीं देख या जान पा रहे हो, फिर तुम तुलना भी कैसे कर सकते हो।

जब कोई बुद्धपुरुष कहता हो कि यह संसार माया है, इसके ऊपर ध्यान दो–क्योंकि उसने तो इस संसार को भी जाना है। जब कोई नास्तिक, भौतिकवादी, कोई साम्यवादी कहता हो कि निर्वाण का जगत तो माया है, उस विषय में चिंता लेने की कोई आवशयकता नहीं है–क्योंकि उसने तो अभी उसे जाना ही नही है। वह तो केवल इस संसार को ही जानता है। उस दूसरे संसार के विषय में उसके कथन पर तुम भरोसा नहीं कर सकते। उसने तो कभी ध्यान किया ही नहीं है, तब इस आयाम के बारे में उसे वो बात उठाने का हक ही नहीं है। उसने कभी उस में प्रवेश ही नही किया है।

इसे जरा गोर से देखो: जिन्होंने भी ध्यान किया है उनमें से एक भी व्यक्ति इस आंतरिक सचाई को इंकार नहीं कर सका। कभी किसी एक ने भी इसे नहीं नकारा! निरपवाद रूप से सभी ध्यानी रहस्यदर्शी रहे हैं। जिन्होंने ध्यान नहीं किया है वे केवल मक्खी के संसार को और उसे सड़े मांस की खराब और बदबूदार दुर्गंध के सांसार को ही जानते हैं। वे वस्तुओं के दुर्गंघ युक्त संसार में ही जीते है, परंतु वे केवल उसी को जानते हैं, और निश्चय ही उनके किसी भी वक्तव्यों पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए। एक बुद्ध के वचनों पर भरोसा किया जा सकता है। उन्होंने दोनों को जाना है। उन्होंने निम्न को भी जाना है और उच्च को भी, और उच्च को जानकर जब वे निम्न के विषय में कुछ कहते हो, उसके ऊपर ध्यान दिया ही जाना चाहिए। उसे एकदम अस्वीकार मत कर देना।

उदाहरण के लिए, मार्क्स, एनजेल्स, लेनिन, स्टालिन, माओ इन लोगों ने कभी ध्यान नहीं किया है–और वे कहते है कि ईश्वर है ही नहीं। अब यह तो ऐसा ही है, जैसे कोई व्यक्ति वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में कभी गया ही न हो, और विज्ञान के विषय में कुछ कहने लगे। वह कहने लगे कि सापेक्षवाद का सिद्धांत सब बकवास है–क्या आप इस आदमी पर भरोसा कर सकते है। तुम्हें प

हले प्रयोगशाला में जाना होगा, तुम्हें उच्च गणित में जाना होगा, उसे पहले जानना होगा–तब तुम्हें इसे साबित करना होगा! क्योंकि तुम इसे समझ ही नहीं सकते, तुम्हें इसे नकारने की अनुमति ही नहीं दी जा सकती।

बहुत कम लोग ऐसे हैं जो सापेक्षवाद के सिद्धांत को समझते हों। ऐसी कहा जाता है कि जब आईंसटीन जीवित थे, उसे जब उन्होंने इस सिद्धांत को दुनिया के सामने रखा तो मात्र बारह ही आदमी इसे समझ पा रहे थे–मात्र बारह। और कुछ ऐसे लोग भी है जो मानते है कि ये एक अतिश्योक्ति है, संख्या सही नहीं है, बारह व्यक्ति भी ऐसे नहीं थे जो इस सिद्धांत को समझ सकते थे। परंतु इस वजह से तुम यह नहीं कह सकते की यह सिद्धांत सही नहीं है। तुम इसके विषय में वोट नहीं दे सकते, तुम इसे एक चुनाव में हरा नहीं सकते। तुम्हें भी पहले उसी प्रक्रिया से गुजरना होगा।

अब, मार्क्स का यह कहना कि ईश्वर नहीं है, बस एक मूढ़ता पूर्ण वक्तव्य है, न तो उसने कभी ध्यान के बारे में जाना और न ही किया, न उसने इस विषय पर चिंतन-मनन किया, न कभी प्रार्थना की। उसका ये कहना एक दम से असंगत है, एक मुर्ख का वक्तव्य। जिन्होंने कभी ध्यान किया है, जो अपने अंतस में डूबे है, जिन्होंने अपनी सत्ता की खुदाई कि है, या वे लोग जो इस सत्य तक पहुंचे गए, उन की बात मे कुछ दम है, उनकी बात को महत्व देना चाहिए।

प्राणी जो तज देते है निर्वाण

लोलुप हो जाते हैं क्षुद्र संसारिकविषयों के

सरहा कह रहा है: 'तुम निर्वाण को तो छोड़ देते हो और छलावों के पीछे दौड़ते-फिरते हो। हे राजन, आप मुझे समझाने आए है, तब मेरी और देखो, मेरे आनंद में झांको, उसे महसूस करो। उसकी तरंगों को छूने दो अपने अंतस को खोल दो जरा उसके द्वार। देखो मेरी और, क्या मैं अब वहीं आदमी हूं? जो आपके दरबार को छोड़ कर आया था, नहीं मैं एकदम से भिन्न ही आदमी हूं।

वह जानता है कि राज प्रज्ञावान है, तभी वह यह बात कह रहा है। वह राजा की जागरूकता को वर्तमान ़क्षण में लाने का प्रयास कर रहा है। वह राजा की आंखों को देख रहा है, कि वह सफल होता जा रहा है। सच में ही राजा बड़ी विद्यमानता का व्यक्ति रहा होगा। उसने राजा को मक्खियों के संसार से, उस सड़े मांस के संसार से क्षण में बाहर खींच लिया। वह देख रहा है राजा के नासापुट चंदन की सुगंध को पी रहे है, वह चंदन के संसार की और खींच रहा है।

जल से भरे ताल में बैल के पदचिन्ह

जल्दी ही हो जाते हैं शुष्क, वैसे ही वह दृढ़ मन

जो भरपूर है उन गुणों से जो है अपूर्ण

शुष्क हो जाएंगी ये अपूर्णताएं समय पर

वह कहता है: हे राजन देखो! एक बैल चला है और भूमि पर उसके पदचिन्ह बन गए है। वह पदचिंह पानी से, वर्षा के पानी से भर गया है, वह पानी कितनी देर वहां रहेगा? देर-सवेर यह वाष्प हो जायेगा ही। और पानी से भरा बैल का पदचिन्ह कहां बचेगा। परंतु सागर को देखो वह तो सदा से है और रहेगा। यद्यपि बैल के पदचिन्ह में भरा जल भी सागर का ही है, फिर भी कुछ अंतर है।

सागर सदा वहां का वहां ही रहता है, न बढ़ता है न घटता है। बड़े मेध उससे उठते हैं, फिर भी यह घटता नहीं। विशाल नदियां अपना जल इसमे उलट देती है, यह कभी बढ़ता नहीं है। यह सदा उतना ही रहता है। पर बैल के पैर का यह छोटा सा चिन्ह अभी तो पानी से भरा है, कुछ ही घंटों या दिनों में यह चला जाएगा, यह सूख जाएगा। ऐसे ही आदमी की खोपड़ी है। यह बस एक बैल का पदचिंह है, बस इतना सा छोटा। बस जरा सा पानी वहां है–इस पर बहुत भरोसा मत करना, यह सूख ही रहा है। यह अदृश्य हो जाएगा। खोपड़ी एक बहुत छोटी सी है बहुत छोटी सी। यह कभी मत सोचना कि तुम अपनी खोपड़ी में पूरे ब्रह्माड को समा सकते हो।

और यह केवल क्षणिक हो सकती है, यह कभी भी शाश्वत नहीं हो सकता।

जल से भरे ताल में बैल के पदचिंह

जल्दी ही हो जाते हैं शुष्क, वैसे ही वह दृढ़ मन

जो भरपूर है उन गुणों से जो है अपूर्ण

शुष्क हो जाएंगी ये अपूर्णताएं समय पर

और तुम अपनी इस छोटी सी खोपड़ी में क्या भर रहे हो? इसमें क्या-क्या चीजें हैं? इच्छाएं, सपने, महत्वाकांक्षाएं, विचार, कल्पनाएं, संकल्प, भावनाएं–यही तो वहे चीजें हैं जो तुम भीतर भर रहे हो। ये तो सब सूख जायेगी। सभी चीजें शुष्क हो जाएगी। इसलिए जोर चीजों से बदलकर पात्र पर ले आओ। यही तो तंत्र का कुल रहस्य है। पात्र को देखो, पात्र के अंदर की भरी चीजों को मत देखों। आकाश मेधों से भरा है, मेधों को मत देखो, आकाश को देखो। मत देखो कि तुम्हारे सिर में क्या है? तुम्हारे मन में क्या है? बस अपनी चेतना को देखा।

वह व्यक्ति जो विषय-वस्तुओं से जीता है, वह एक यंत्र का जीवन जीता है। और वो व्यक्ति जो अपना जोर विषय-वस्तु से पात्र की और बदलना प्रारंभ कर देता है वह जागरूकता का, बुद्धत्व का जीवन जीना आरंभ कर देता है।

और सराह कहता है: हे राजन, अपने मन में जो भी धारणाएं आपने बना रखी या भर रखी है, वे जल्दी ही सूख जाएंगी–बैल के पदचिंह को देखिएं। आपका सिर इससे बड़ा नहीं है, ये खोपड़ी इतनी बड़ी नहीं है। परंतु आपकी चेतना अनंत है।

अब यह बात समझ लेनी चाहिए: भावनाएं आपके सिर में है, परंतु चेतना आपके सिर में नही है। परंतु सच इसके बिलकुल ही उलटा है, तुम्हारा सर तुम्हारी चेतना में है। चेतना अति विशाल है, अनंत है। भावनाएं, इच्छाएं, महत्वकांक्षाएं, तुम्हारे सिर में है, वे तो शुष्क हो जाएंगी। लकिन जब तुम्हारा सिर पूरी तरह से गिर जाएगा और मिट्टी मे विलीन हो जाएगा। तब उसमे चेतना कहां रहेगी? वह भी पल में विलीन हो जाएगी। चेतना तो तुम्हें अपने सिर के भीतर रखती है, यह तुमसे बहुत ही बड़ी है।

लोग है जो कभी-कभी आते है और मुझसे पूछते हैं...'मनुष्य के शरीर में आत्मा कहां रहती है? हृदय में? नाभी में? सर में? आत्मा कहां है?' वे सोचते है कि वह बड़ा ही महत्वपूर्ण प्रश्न पूछ रहे है। सच तो यह है कि यह हमारे शरीर में कहीं भी नहीं रहती। आत्मा तुम्हारे शरीर से बहुत ही बड़ी घटना है। आत्मा ने तुम्हें घेर रखा है, वह तुम्हें चारों और से घेरे हुए है।

और इसे ध्यान से सूनो, तुम्हारी आत्मा और मेरी आत्मा कोई भिन्न नहीं है। हम अस्तित्व में रहते है। हम एक आत्मा के सागर के बने बुलबुले है, धरातल के नीचे तो पूर्ण सागर है। वह पूर्णत्य हम में चारों और समाविष्ट है, भीतर से भी और बाहर से भी। यह सब एक ही ऊर्जा है। मेरी आत्मा भिन्न और अपकी आत्मा भिन्न, नहीं ऐसा कदाचित नहीं है, हमारे शरीर आकार-प्रकार भिन्न जरूर है, परंतु हम सब एक ही अस्तित्व की लहर है। इसे कुछ इस तरह से समझो कि बिजली तो एक है, वह रेडियों में दौड़ती है, वही बल्ब में भी दौड़ती है, टी. वी. में भी वहीं बिजली दोड़ रही है, पंखे को घुमा रही है...और हजार काम कर रही है। परंतु ढांचा गत परिस्थियों के कारण उसके रूप, आकार, प्रकार बदल जाते है। परंतु आपने देखा जो बिजली उन में दौड़ रही थी वह एक ही थी।

हम सब एक ही ऊर्जा हैं। हमारी अभिव्यक्तियां भिन्न हैं पर हमारी सचाई एक ही है। यदि तुम विषय-वस्तु को देखो, यदि मैं विषय-वस्तु को देखूं तो मेरे सपने तुम्हारे सपनों से भिन्न है। निश्चय ही यह सच दिखता है। हम अपने सपनों को बांट नहीं सकते। मेरी अपनी महत्त्वकांक्षाएं हैं, तुम्हारी अपनी महत्वकांक्षाएं हैं। और ऐसा नहीं है कि हम केवल अपने सपने बांट ही नहीं सकते: हमारे सपनों में आपस में संधर्ष भी है। मेरी महत्वकांक्षा तुम्हारी महत्वकांक्षा के विरूद्ध भी है, तुम्हारी महत्वकांशा मेरी महत्वकांशा के बिलकुल ही विपरीत है। परंतु यदि हम विषय-वस्तु को भूल जाएं और बस चेतना और विशुद्ध चेतना की और, मेध-विहिन आकाश की और देखें तब कहां 'तूं' और कहां 'मैं' बचता है? हम एक हैं?

उस क्षण में एकता है। और उस क्षण में सार्वभौतिक चेतना है। समस्त चेतना सार्वभौमिक है। अचेतना (मूर्च्छा) निजी है। चेतना सर्वव्यापी है। जिसे-जिसे सच में ही तुम एक मनुष्य होते हो, तुम एक सर्वव्यापी मनुष्य बन जाते हो। यही तो अर्थ है बुद्ध का, सर्वव्यापी मनुष्य जो पूर्ण और समस्त जागरूकता को उपलब्ध हो गया है।

मनुष्य एक यंत्र की तरह से भी है, और भिन्न भी है। यह बात समझ ली जानी चाहिए। यदि तुम्हारी किडनी में कोई खराबी है, मेरी में नहीं है। यदि मेरे सिर में दर्द है...और तुम्हारे में नहीं, तब अगर तुम मुझ से प्रेम भी करते हो तो, मेरा सर दर्द तुम बांट नहीं सकते। अगर मैं तुमसे कितना ही प्रेम करता हूं, परंतु तुम्हारा

दर्द मैं ले नहीं सकता। परंतु अगर हम साथ-साथ बैठे हो ध्यान भी कर रहे हों, तब एक क्षण ऐसा भी आता है, जब न तो मेरे मन में विषयवस्तु है, और न ही तुम्हारे मन में कोई विषयवस्तु हो, उस क्षण हम दो नहीं रह जाते एक इकाई मात्र बन गए। ध्यान हम शुरू तो अलग-अलग करते है, परंतु अंतस गहरे जैसे ही जाते है तो एक हो जाते है।

यदि तुम सब ध्यान मैं बैठे मुझे सुन रहे हो, तब तुम अनेक नहीं हो, तब सब एक हो गए। तब तुम एक ही नहीं हो, वक्ता और श्रोता अलग नहीं रहे। तब हम सब जुड़ गए। एक कमरे में ध्यान करते हुए बीस ध्यानी, जब वह गहरे ध्यान की स्थिती में होते है, तब वह बीस नहीं होते, कमरे में उसे समय एक ध्यान पूर्ण गुणवत्ता होती है।

एक कथा: कुछ लोग बुद्ध से मिलने आए। आनंद कक्ष के बाहर बैठा पहरेदारी कर रहा है। पर उन लोगों ने इतना अधिक समय लिया कि आनंद चिंतित हो गया। कई बार उसने भीतर झांका पर वे लोग बैठे ही रहे, बैठे ही रहे...फिर वह यह देखने के लिए कि अखिर हो क्या रहा है? वह कक्ष में भीतर गया, परंतु उसे तो बड़ा अचरज हुआ की वहां तो कोई भी नहीं था। बस अकेले बुद्ध बैठे हुए थे। इस लिए उसने उत्सुकता वस पूछा, 'वे सब लोग कहां गए? और बाहर जाने का कोई दूसरा द्वार तो है नहीं। इस एक मात्र द्वार पर तो मैं बैठा हुआ हूं, तो आखिर वे सब लोग गए कहां?'

तब बुद्ध ने कहा: 'वे सब लोग ध्यान कर रहे है।'

यह एक सुंदर कथा है। वे सब ध्यान में उतर गए और आनंद उन्हें न देख सका क्योंकि वह अभी भी एक ध्यानी न था। वह इस नई घटना को, ऊर्जा के इस समग्र स्थानांतरण को न देख सका। वे वहां न थे क्योंकि वे अपने शरीर की भांति वहां न थे, वे अपने मन की भांति वहां न थे। वह एक पूर्णता में डूब गये थे, उनका अहंकार विलीन हो गया, उनका मय भाव मिट गया था। आनंद वहीं सब देख सकता था जो वह है, अपनी गहराई के अतिरिक्त हम नहीं देख सकते, एक नई सचाई जो घटी है, वह आनंद पकड़ से बाहर थी।

एक बार प्रसनजित भगवान बुद्ध से मिलने के लिए आया। क्योंकि उसके प्रधान मंत्री ने उसे समझाया और मना लिया कि राज्य की जनता के लिए यह भी जरूर है कि आप संतों के पास जाओं उनका सम्मान करो, जनता के मन में आपके प्रति प्रेम बढ़ेगा। जैसे कि सभी नेता शंकालु होते है इसी तरह राजा भी बड़ा ही शंकालु था। उसे हर बात पर संदेह करना ही पड़ता है। पहली बात तो वह वहां जाना ही नहीं चाहता था। उसकी कोई रूची ही नहीं थी, परंतु लोग बात करने लगे थे कि राज बुद्ध के विरोध में है, सब लोग बुद्ध को प्रेम करते थे, फिर भला ऐसे राजा को कौन पसंद करेगा जो बुद्ध के विरूध हो। तो अपनी छबि बचाने के लिए एक कूटनीति चाल के कारण वह बुद्ध से मिलने को गया।

अपने प्रधानमंत्री के साथ जब वह उस कुंज के पास पहुंचा जहा पर भगवान बुद्ध अपने दस हजार शिष्यों के साथ ठहरे हुए थे। अचानक वह बहुत ही भयभीत हो गया। उसे कुछ षडयंत्र की गंध महसूस हुई। और उसने तत्काल अपनी तलवार म्यान से बाहर निकल ली। और अपने प्रधान मंत्री से कहां: 'यह क्या मामला है? क्योंकि तुमने तो कहा था कि वहां पर दस हजार व्यक्ति ठहरे हुए है। पंरतु यहां तो कितना सन्नाटा है, कितनी निष्तब्धता छाई है। इतने करीब आने पर भी जरा सा शोर सुनाई नहीं दे रहा है! 'क्या ये कोई षडयंत्र है।'

प्रधानमंत्री हंसा और उसने कहा, 'आप घबड़ाओ नहीं, आप बुद्ध के लोगों को नही जानते। आप अपनी तलवार तो वापस म्यान में रख लें, इस कि यहां जरा भी जरूरत नहीं है। कहीं कोई षडयंत्र वगैरा नहीं है, आप भयभीत न हो। वहां कुछ भी ऐसा नहीं है जैसा आप सोच रहे है। फिर भी राजा संदेह से भरा अपनी तलवार

हाथ में लिए आगे बढ़ा, जैसे ही राजा ने कुंज में प्रवेश किया। वह तो हैरान रह गया। उसे अपनी आंखों पर भरोसा नहीं आ रहा था, दस हजार लोग वृक्षों के नीचे बैठे, एकदम मौन ध्यान में लीन थे।

अपनी जिज्ञासा को ने छिपाते हुए उसने भगवान से पूछा: 'यह तो चमत्कार है। दस हजार लोग! दस आदमी भी एक जगह रह कर इतना शौर मचा देते हैं, परंतु यहां तो दस हजार व्यक्ति एक साथ, परंतु इतनी निस्तब्धता, इतना मौन अपनी आंखों पर यकीन नहीं आता। ये लोग कर क्या रहे है? इन्हें कुछ गड़बड़ हो गई है क्या? क्या ये लोग अभी जीवित है। ये तो सब प्रतिमाओं की तरह से जान पड़ रहे है। यहां खाली बैठे ये लोग कर क्या रहे है? इन्हें कुछ तो करना चाहिए।'

तब बुद्ध ने कहा: 'वे लोग कुछ कर रहे है, परंतु इसका पता बाहर से नहीं लगाया जा सकता। इसका बाहर से कुछ लेना-देना भी नही है। वे अपने अंतस की गहराई में डूब गए है, वे अब शरीर नहीं है, जो आपको बैठे दिखाई दे रहे है, वह तो एक अस्तित्व में अपने केंद्र में है। और जो आपको अपनी आंखों से दस हजार शरीर दिखाई दे रहे है, यहां तो मात्र एक चेतना रह गई, संपूर्ण एक लयबद्धता।

तीसरा सूत्र:

समुद्र का नमकीन जल जैसे हो जाता है मधुर,
जब पी लेते है मेघ उसे
वैसे ही वह स्थिर मन, काम जो करता है
औरों के हेतु बना देता है अमृत
उन एंन्द्रिक-विषयों के विष को

तंत्र की आधारभूत दृष्टि है: एंद्रियगत को सर्वोच्य में परिवर्तित किया जा सकता है। पदार्थ को मन में बदला जा सकता है, अचेतन को चेतन में रूपांतरित किया जा सकता है।

आधुनिक भौतिक शास्त्र कहता है कि पदार्थ को ऊर्जा में रुपांतरित किया जा सकता है। ऊर्जा को पदार्थ में रुपांतरित किया जा सकता है। सच तो यह है कि वे दो नही है, एक ही ऊर्जा दो भिन्न रूपों में काम कर रही है। तंत्र कहता है, तुम काम (संभोग) को भी समाधि में रूपांतरित कर सकते हो। वही दृष्टिकोण, अत्यंत मौलिक और आधार भूत है। निम्न को उच्च में रूपांतरित किया जा सकता है, क्योंकि निम्न और उच्च अलग नहीं है एक दूसरे से जूड़े हुए है। वे दोनों एक ही ईकाई है। वे कभी भी अलग थे ही नहीं, उनके बीच में कोई अंतराल नहीं है। वे एक सीढ़ी की तरह है, तुम निम्न से उच्च की और जा सकते हो, और उच्च से निम्न की और आ सकते हो। यह आपका निर्णय है, आपका चुनाव है, आप किसे चुनते है।

और वह सीढ़ी तुम ही तो हो, तुम स्वतंत्र हो, ऊपर जाने या नीचे जाने का निर्णय आपका है: आप चाहे एक पशु हो सकते हो, या एक बुद्ध की तरह। दोनों संभावनाएं है, निम्नतम भी और उच्चतम भी। मनुष्य गहन मूर्च्छा में गिरकर, एक चट्टान हो सकता है, और वह पूर्ण चेतना का उत्थान कर, ईश्वर भी बन सकता है। लेकिन दोनों अलग नहीं है–यहीं तो तंत्र का सौंदर्य है।

तंत्र अविभाजय है। तंत्र एकमात्र धर्म है दुनियां में जो विभक्त-मानसिकता का नहीं है। तंत्र एकमात्र धर्म है जो सच में ही स्थिर-बुद्धि है। सर्वाधिक स्थिर-बुद्धि धन–क्योंकि यह विभाजित नहीं करता। यदि तुम विभाजित करते हो, तो तुम एक विभक्ति निर्मित करते हो। यदि तुम लोगों से कहते हो कि देह तो बुरी है, देह तो शत्रु है, तब तुम मनुष्य में एक विभाजन निर्मित कर रहे हो, तब मनुष्य देह से भयभीत हो जाता है। और फिर धीरे-धीरे, एक न भरी जा सकने वाली खाई निर्मित हो जाती है। और मनुष्य तब दो टुकड़ों में बंट जाता है, विभाजित हो जाता है। हमारी देह-देह को खींचती है, मन-मन को खींचता है–वहां हो जाते है संघर्ष आरंभ।

तंत्र कहता है कि तुम एक हो, कोई भ्रम रखने की आवश्यकता नहीं है। तब एक सच्चाई निर्मित हो जाती है, एक रूपता। तब भ्रांतचित होने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। जो कुछ तुम्हें उपलब्ध है उसे प्रेम करो, और तब सच में तुम उसे विकसित कर सकते हो। देह तुम्हारी आत्मा की शत्रु नहीं है, तो बस तुम्हारी तलवार की एक म्यान के जैसी है। देह तो एक मंदिर है, तुम्हारा घर है। इसे तुम शत्रु न समझो, यह तो तुम्हारा मित्र है।

तंत्र हर तरह की हिंसा को छोड़ देता है–हिंसा केवल दूसरों के साथ ही नहीं, बल्कि स्वयं के साथ भी हिंसा-हिंसा कहलाती है। तंत्र कहता है: सचाई को उसकी समस्तता से प्रेम करो। हां, बहुत कुछ विकसित हो सकता है। लेकिन सभी विकास प्रेम से होता है। और तुम्हें लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

समुंद्र का नमकीन जल जैसे हो जाता है मधुर,

जब पी लेते है मेघ उसे…

तुम समुद्र का नमकीन जल नहीं पी सकते, यह इतना नमकीन होता है, बस नमक ही नमक। तुम इसे पीकर मर भी सकते हो अगर समुंद्र का पानी तुमने पी लिया तो। यह तुम्हें बहुत ही कटु अनुभव देगा। परंतु जब एक बादल आता है और समुद्र जल को सोख लेता है, तब यह जल मिठा हो जाता है। तब तुम पर यह वर्षा बन कर बरस जाता है और तुम इसे पी सकते हो।

सराह कहता है: समाधि एक मेध की भांति है, ध्यानपूर्ण ऊर्जा एक मेध के समान है, जो कि तुम्हारी कामुकता को उच्च मंडलों में परिवर्तित कर देती है। जो कि तुम्हारे भौतिक अस्तित्व को अभौतिक-अस्तित्व में रूपांतरित कर देता है। जो भी संसार के नमकीन-कडवे अनुभवों को निर्वाण के मीठे, अमृत-सदृश्य अनुभवों में परिवर्तित कर देता है। संसार स्वयं ही निर्वाण हो जाता है। यदि तुम उस मेध को, जो इसे रूपांतरित कर देता है निर्मित कर सको। वह मेध, बुद्ध ने तो सच में इसे धर्म-मेध समाधि कहा है। एक आधारभूत नियम, मेध की समाधि-धर्ममेध समाधि।

तुम उस मेध को निर्मित कर सकते हो। वह मेध ध्यान द्वारा निर्मित होता है। तुम तीव्रता से ध्यान करते जाओ, विचारों को छोड़ते जाओ, इच्छाओं को छोड़ते जाओ, महत्वाकांक्षाओं को छोड़ते जाओ: धीरे-धीरे तुम्हारी चेतना एक जलती आग बन जाती है–मेध वहां होता है, अब उस आग द्वारा तुम कुछ भी रूपांतरित कर सकते हो। वह आग कायापलट कर देती है, वह आग अलकमियां हैं। ध्यान से निम्न उच्च बन जाता है। अपधातु स्वर्ग में बदल जाती है।

समुद्र का नमकीन जल जैसे हो जाता है मधुर,

जब पी लेते है मेघ उसे

वैसे ही वह स्थिर मन, काम जो करता है

औरों के हेतु बना देता है अमृत

उन एंन्द्रिक-विषयों के विष को

दो बातें: पहली, व्यक्ति को अपने प्राणों में ध्यान का एक मेध निर्मित करना होता है। और दूसरी बात है करुणा जो दूसरों के लिए काम करता है। बुद्ध का जोर दो चीजों पर अधिक था। ध्यान और करुणा–प्रज्ञान और करुणा। वह कहते हैं कि कभी-कभी ऐसा होता है कि एक ध्यानी बहुत स्वार्थी हो सकता है। तब भी बात बिगड़ जाती है। ध्यान करो, आनंदित होओ, पर उस आनंद को बांट दो, उसे बांटते जाओ, इसे इकट्ठा मत करो। क्योंकि एक बार यदि तुम इसे इकट्ठ करना शुरु कर देते हो, अहंकार उठना प्रारंभ हो जाता है। कभी किसी चीज का संग्रह न करो। जिस क्षण तुम इसे पाओ, इसे लूटा ड़ालों, तब शायद तुम्हारा आनंद पहले से अधिक बढ़ जाता है।

जितना अधिक देते हो उतना अधिक पाते हो। फिर हर चीज अमृत बन जाता है। हर कुछ अमृत–हमें बस यह जानना है कि इसे रूपांतरित कैसे किया जाए, इस बात की मात्र हमें अलकेमी को जानना है।

अंतिम सूत्र:

यदि वर्णनातित घटे, कभी नहीं रहता कोई असंतुष्ट

यदि अकल्पनिय, होगा यह स्वयं आनंद ही

यद्यपि भय होता है मेघ से तड़ित का

फसलें पकती है जब यह बरसता है जल

वर्णनातित...सराह कहता है: मुझसे मत पूछो कि यह क्या है–यह अवर्णनिय है, इसे कहा नहीं जा सकता। इसे अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। कोई भी ऐसी भाषा नहीं है जो इसे अभिव्यक्त कर सके। पर इसका अनुभव किया जा सकता है। मेरी तृप्ति की और देखो! देखो, मैं कितना संतुष्ट हो गया हूं, तुमने मुझे पहले भी देखा है–मुझ मैं कितनी बदलाहट हो गई हैं! तुमने मुझे पहले भी देखा है–मैं कितना बेचैन था, हर चीज से कितना बैचेन था, असंतुष्ट था। और अब देखों मुझे सब कुछ उपलब्ध हो गया है। मेरी तृप्ति पूर्ण है। मैं कभी तुम्हारा कितना प्रिय था, मुझे आपने सब कुछ उपलब्ध कराया था–फिर भी मैं संतुष्ट न था: अब, देखो! मैं एक श्मशान में खड़ा हूं, मेरे सिर के ऊपर एक छत तक नहीं है। मैं राजमहलों में नहीं रहता, न ही मेरे पास राजा रानियों का सा वैभव है। मैं एक तीर बनाने वाली साधारण सी स्त्री के साथ रह रहा हूं। पर मेरी आंखों में झांको ...मैं कितना आनंदित हूं, तृप्त हूं। क्या तुम देख नहीं सकते हो कि मुझे कुछ वर्णनातीत घटा है। क्या तुम मेरी तरंगों को अनुभव कर रहे हो? क्या तुम इतने सुस्त और मुर्दा हो कि तुम्हें यहां पर भी व्याख्याओं की आवश्यता है?

यदि वर्णातीत घटे, कभी नही रहता कोई असंतुष्ट...

यही कसौटी है कि कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध हुआ है, अथवा नहीं। वह कभी भी असंतुष्ट नहीं होगा। उसकी तृप्ति समपूर्ण है। तुम उसे उसकी तृप्ति से बाहर नहीं खींच सकते। तुम उसे असंतुष्ट नहीं कर सकते। चाहे जो भी हो, वह वैसा का वैसा ही रहता है, पूर्ण तृप्त। सफलता हो या असफलता, जीवन हो या मृत्यु, मित्र हो या न हो, प्रेमी हो या न हों–इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। उसकी प्रशांतता, उसकी निस्तब्धता एकदम पूर्ण होती है। वह स्वयं सदा क्रेंद्रित रहता है।

यदि वर्णनातित घटे, कभी नहीं रहता कोई असंतुष्ट

यदि वह जो कहा नहीं जा सकता घटा हो, तब इसे जानने का केवल एक उपाय है और वह उपाय है उसकी संतुष्टि को देख लेना। यदि अकल्पनिय, होगा यह स्वयं आनंद ही...

और मैं जानता हूं, वह कहता है, तुम कल्पना भी नहीं कर सकते हो कि मुझे क्या घटा है। तुम कल्पना कर भी कैसे सकते हो? क्योंकि तुमने इसे पहले कभी जाना ही नहीं है। कल्पना तो सदा हम उसी की कर सकते है, जिसे पहले हमने देखा या जाना हो। कल्पना तो मात्र दोहराया जाना ही है।

तुम प्रसन्नता की कल्पना कर सकते हो, तुमने इसे टुकड़ों-टुकड़ों में जाना है। तुम अप्रसन्नता की कल्पना कर सकते हो, तुमने इसे जाना है, काफी अधिक मात्रा में। यदि तुमने प्रसन्नता को न भी जाना हो तो तुम इसकी भी कल्पना कर सकते हो, तुम अप्रसन्नता के विपरीत के रूप में। लेकिन तुम आनंद कि कल्पना कैसे कर सकते हो? तुमने इसे जाना ही नहीं है। और इसके विपरित कुछ है ही नहीं, यह द्वैत नहीं है।

इसलिए सराह कहता है। हे राजन, मैं समझता हूं–तुम इसकी कल्पना नहीं कर सकते–पर मैं इसकी कल्पना करने को नहीं कह रहा हूं। देखो! यह यहां अभी मौजूद है। और यदि तुम इसकी कल्पना नहीं कर सकते,

यह भी सत्य कि एक कसौटी है, पर इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। तुम इसकी एक झलक तो पा सकते हो, परंतु तुम इसके विषय में स्वप्न नहीं देख सकते। और स्वप्न और झलक में यही अंतर है।

स्वप्न तुम्हारा अपना है, झलक तुम्हारी अपनी नहीं है।

क्राइस्ट ने ईश्वर को देखा, और धर्म ग्रंथ कहते हैं कि उन्होंने उसकी एक झलक देखी। अब मनोविश्लेषक कहेगा कि यह मात्र एक स्वप्न था, उस बेचारे को स्वप्न और झलक का कुछ पता ही नहीं है। स्वप्न तुम्हारा है, तुम कल्पना कर रहे थे, तुमने इसे निर्मित किया, यह तुम्हारा अपना निर्मित किया है, तुम इसकी कल्पना कर सकते हो। तुमने इसे निर्मित किया है यह तुम्हारा माया जाल है। झलक तो कुछ ऐसे आन पड़ती है कि तुमने इसके विषय में कुछ सोचा भी न होता है। इसका कोई अंश भी कभी तुम्हारे द्वारा सोचा नहीं गया होता है। झलक ईश्वर से आती है, स्वप्न तुम्हारे मन से आता है।

यदि अकल्पनिय, होगा यह स्वयं आनंद ही...

मेरी और देखो–तुम कल्पना तो नहीं कर सकते कि क्या घटा है। क्या तुम इसे देख भी नहीं सकते... तुम्हारे पास देखने के लिए आंखें तो हैं। देखो, अवलोकन करो, मेरा हाथ पकड़ो! मेरे समीप आओ। मेरे प्रति मेध हो जाओ ताकि मेरी तरंग तुम्हारे प्राणों को भी तरंगायित कर सके–कुछ और अलल्पनिय, अवर्णनिय को अनुभव किया जा सकता है।

यद्यपि भय होता है मेघ से तड़ित का...

और सराह कहता है: मैं जानता हूं,...उसने राजा को कुछ भयभीत होते हुए देखा होगा। मैं हर रोज यह बात देखता हूं: लोग मेरे पास आते है और मैं उन्हें कांपते हुए भयभीत होते हुए देखता हूं। डरते अंदर से थर-थर पत्ते की तरह कांपते...और वे कहते है, 'ओशो, हमें डर लग रहा है।' मैं जानता हूं सराह ने देखा होगा कि भीतर गहरे में राजा कांप रहा है। परंतु शायद ऊपर से वह ऐसा नहीं दिखा रहा है। वह एक बहुत समझदार और महान राजा था, वह एक बहुत अनुशासित व्यक्ति रहा होगा, वह एक वीर की तरह से खड़ा होगा सराह के सामने। अडीग परंतु सराह धीरे-धीरे उसे उसके अंतस में उतर रहा है, उसकी आंखों में झांक रहा होगा।

यह घटना हमेशा घटती है कि जब कभी भी तुम किसी सराह या बुद्ध जैसे व्यक्ति के पास होते हो, तुम भयभीत हो जाते हो। अभी उस दिन एक नवयुवक मेरे पास आया और कहने लगा, 'मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि आपसे भयभीत क्यों हूं? आपने मेरा कुछ बिगाड़ा नही है–फिर मैं आपसे क्यों भयभीत हो रहा हूं?'

यह स्वाभाविक है। जब तुम एक खाई के समीप आते हो, तो तुम क्या महसूस करते हो? तुम भयभीत होओगे ही। इस बात की हमेशा संभावना है कि तुम इसमें गिर सकते हो और फिर स्वयं को पूर्वस्थिति में न ला सकोगे। यह अप्रत्यावर्तनीय है, अप्रत्योदय है, तुम इसमें पूर्णतः, एकदम चले जाओ उतर जाओगे। फिर तुम वहीं के वही कभी वापस नहीं आ सकोगे, जैसे कि तुम पहले थे। एक दूसरे ही रूप में नये व्यक्तित्व के रूप में जरुर तुम अपने को पाओगे। इसलिए भय स्वाभाविक है। क्योंकि तुम मिट सकते हो,मिटने का एक भय।

सराह कहता है:

यद्यपि भय होता है मेघ से तड़ित का...

वह कहता है कि देखो मैं तो एक मेध की भांति हूं और तुम मुझसे भयभीत हो रहे हो, तड़ित के कारण, विद्युत-प्रकाश के कारण। परंतु याद रखो:

फसलें पकती हैं जब यह बरसता है जल...

परंतु यदि तुम मुझे अपने ऊपर बरसने दोगे, बीज अंकुरा जाएंगे, हे राजन, और एक मनुष्य जो तुम्हारे पीछे छिपा हे, जो अभी भी पैदा नहीं हुआ है, वह पैदा हो जाएगा, तुम पक सकते हो, परिपकव हो सकते हो। तुम खिल सकते हो। मैं तुम्हें आमंत्रित करता हूं।

सराह कहता है: एक महान फसल के लिए...चेतना की फसल, एक जागरूकता की फसल। तुम्हें मेरे को मेध बनने देना होगा, अपने आप को खोलना होगा, डरो मत, तुम मिटोगे नही, तुममें जो घटेगा उससे तुम पूर्ण हो जाओगे।

आज इतना ही

छठवां प्रवचन

मैं एक विध्वंसक हूं

(दिनांक 26 अप्रैल 1977 ओशो आश्रम पूना।)

पहला प्रश्न: ओशो, मैंने इधर हाल ही में संबोधि के विषय में दिव्य-स्वप्न देखने शुरू किए हैं, जो कि प्रेम व प्रसिद्धि के दिव्य-स्वप्नों से भी अधिक मनोरम हैं। क्या आप दिव्य-स्वप्न देखने के ऊपर कुछ कहेंगे?

यह प्रश्न प्रेम पंकज का है। जहां तक प्रेम और प्रसिद्धि का संबंध है, दिव्य-स्वप्न देखना पूर्णता सही है–वे स्वप्न-संसार के ही अंग है। तुम जितने चाहो स्वप्न देख सकते हो। प्रेम एक स्वप्न है, ऐसे ही प्रसिद्धि भी, वे स्वप्न के विपरीत नहीं हैं। सच तो यह है कि जब स्वप्न देखना बंद हो जाता है, तो वे भी गायब हो जाते है। उनका असित्व उसी आयाम में है, सपनों के आयम में।

सपना तो अंधकार की भांति है। यह तभी तक रहता है जब तक कि प्रकाश नहीं होता है। जब प्रकाश फे लता है, अंधकार बस वहां से विलीन हो जाता है, वह पल भर भी वहां रह नहीं सकता। सपना इसलिए है क्योंकि जीवन अंधकार पूर्ण, फीका और उदासीन है। सपना तो तुम्हारी एक पूरकता जैसा होता है। क्योंकि असली प्रसन्नता तो हमारे पास है ही नहीं। इसलिए उसके विषय में हम केवल सपना ही तो देख सकते है। क्योंकि सच में हमारे पास जीवन में कुछ है ही नहीं, यह सत्य हमें बड़ी पीड़ा देता है, तब इस सत्य को हम कैसे सहन कर पाएगे? यह एकदम असहनीय हो जाता है। सपने इसे सहनीय बना देते है। सपने हमारी सहायता करते है। वे हमसे कहते हैं, 'ठहरो! जरा आज सब कुछ ठीक नहीं है? परंतु तुम चिंता मत करो, कल देखना हर चीज ठीक हो जाएगी। हर कार्य तुम्हारी सोच की तरह से होगा। बस कुछ तुम्हें प्रयत्न करना होगा, शायद अभी उतना प्रयास न किया जितना की करना चाहिए था, चलों कोई बात नहीं, तुम्हारे भाग्य ने तुम्हारा साथ न दिया होगा। कुछ परिस्थियां तुम्हारे विपरित रही होंगी। परंतु तुम घबड़ाओ मत, सदा तो ऐसा नहीं होगा। और देखना ईश्वर बड़ा करुणावान है, दयालु है, संसार के सभी धर्म कहते है कि ईश्वर बड़ा दयालु है, बड़ा करुणावान है। यह आशा की धुंधलका तुम्हें घेरे ही रहता है। तुम उससे बाहर देख ही नहीं सकते।

मुसलमान निरंतर दोहराते हैं: अल्लाह बड़ा मेहरबान है, रहमान है–करुणावान है, कृपालु है? क्यों वे बार-बार दोहराते है! हर बार जब भी वे 'अल्लाह' शब्द का उच्चारण करते हैं, वे इसे दोहराते ही रहते हैं–मेहरबान, दयालु, करुणावान है। परंतु अगर वह करुणावान न हुआ तब हमारे सपने, आशाएं कहां जाएंगे? हमारे सपनों के अस्तित्व के लिए उसे दयालु होना ही होगा, क्योंकि वही तो हमारी आशा है, उसकी दया में उसकी करूणा में। कल सब कुछ ठीक हो जाएगा, कल उन्हें ठीक होना ही होगा।

दिव्य-स्वप्न देखना अच्छा है, जहां तक प्रेम और प्रसिद्धि का संबंध है, जहां तक बाहर जाती ऊर्जाओं का संबंध है। वह तुम्हारे सपने जिवीत ही बाहरी ऊर्जा से है। क्योंकि बाहर जाती ऊर्जा पर सवार होकर ही हम स्वप्न के लोक में जी सकते है। यह संसार एक स्वप्न है, एक प्रतिछाया, एक विंब, हिंदुओं का यही अर्थ है जब वे इसे एक माया, या छलाव कहते है। यह उसी धात से बना है, जिससे स्वप्न बने होते है। यह जागी आंखों से देखा गया एक दिव्य-स्वप्न है।

लेकिन संबोधि अस्तित्व का एक बिल्कुल भिन्न ही तल है। वहां सपने नहीं होते। और अभी भी तुम स्वप्न देखते हो तब संबोधि अभी बहुत बहुत ही दूर है, इसलिए तो हिंदुओं ने इसे माया कहा है, स्वप्नों के लोक में संबोधि नहीं।

अभी उस दिन ही मैं एक सुंदर कथा पढ़ रहा था:

एक पादरी के पास एक तोता था और उसे बोलना सिखाने के हर संभव प्रयत्न और प्रयास के बाद भी वह तोता चुप ही रहा। इस बात का जिक्र पादरी ने एक दिन एक वृद्धा से किया, जो उस से मिलने के लिए आई थी। उसे वृद्धा को कुछ दिलचस्पी हुई इस बात में और उसने तुरंत कहा: 'मेरे पास भी एक तोता है जो कि बोलता नहीं। यह अच्छा रहेगा यदि हम इन दोनों पक्षियों को साथ-साथ रख दें और फिर देखे कि क्या होता है।

और फिर उन दोनों ने ऐसा ही किया। दोनों तोतो को एक बड़े पींजड़े में रख दिया गया, और दोनों कुछ दूरी पर जाकर बैठ गए जहां से वह उनकी बात को सून सके। शुरू में तो कुछ देर शांति छाई रही, उसके बाद कुछ पंख पड़फड़ाने की आवाज आई, और फिर वृद्ध महिला के तोते को कहते सूना गया, 'कुछ थोड़ा सा प्रेम-श्रेम के विषय में क्या इरादा है, प्रिय आपका? जिसके उत्तर में पादरी के तोते ने कहा, 'इसी सबके लिए तो मैं वर्षों से मौन प्रतीक्षा और प्रार्थना करता आया हूं–आज मेरा सपना पूरा हुआ। आज मैं बोल सकता हूं।'

यदि तुम प्रेम और प्रसिद्धि के लिए प्रतीक्षा और प्रार्थना कर रहे हो, सपने देख रहे हो, एक दिन यह घटना घटेगी ही। यह कोई मुश्किल बात नहीं है। बस जरा सी हठधर्मिता चाहिए...और यह होता है। व्यक्ति बस प्रयत्न करता जाए, करता ही चला जाए...यह घटेगी ही, क्योंकि यह तुम्हारा सपना है। आखिर तुम कोई न कोई ऐसा स्थान पा ही लोगे जहां तुम इसका प्रक्षेपण कर सको और तुम इसे देख सकते हो, और मानों कि यह सच ही हो गया है।

जब तुम किसी स्त्री या पुरुष के प्रेम में पड़ते हो, तुम सच में कर क्या रहे हो? तुम एक सपना अपने भीतर संजो रहे हो, उस सपने को लिए चल रहे हो, अब अचानक यह स्त्री एक पर्दे का काम करती है। और आप को लगता है कि आपका स्वप्न पूरा हुआ है। यदि तुम सपने देखते ही जाओ, एक न एक दिन तुम्हें कोई पर्दा मिल ही जाएगा, कोई न कोई तुम्हारे लिए पर्दा बन ही जाएगा और तुम्हारा सपना वहां चित्रित बन उभर आयेगा। एक सजीव सी प्रतिछाया मात्र।

परंतु संबोधि कोई सपना नहीं है। यह तो सब सपनों को छोड़ना है। इसलिए कृपया संबोधि के विषय में सपना मत देखो। प्रेम सपने के द्वारा संभव है, सच तो यह है कि यह केवल सपने के द्वारा ही देखा जा सकता है, उसी के द्वारा ही संभव है। प्रेम स्वप्नदर्शियों के लिए ही है। परंतु संबोधि सपने के द्वारा संभव नहीं है–सपने के कारण ही तो यह असंभव हो जाती है।

संबोधि का सपना देखा और आप इससे चुकते चले जाते हो। इसके लिए प्रतीक्षा करो और तुम इससे चूक जाओगे। फिर तुम्हें क्या करना चाहिए? तुम्हें करना यह चाहिए कि तुम सपने की कार्य विधि को ठीक से समझ लो। तुम संबोधि को तो अलग ही उठा कर रख दो। यह तुम्हारा काम नहीं है। तुम तो बस सपनों की कार्य प्रणाली को ठीक से समझ लो। और तुम यह देखो कि सपने किस से काम करते हैं। उसकी समझ ही तुम्हारे भीतर एक तरह की स्पष्टता लाएगी। उस स्पष्टता में तुम्हारे सपने धीरे-धीरे कम होते चले जाएंगे, और एक दिन वह अदृश्य हो जाते है।

जब सपना नहीं होता, हमारा मन सफटिक परदर्शी होता है, हमारी आंखें निर्मल हाती है, तब संबोधि का कमल खिलता है।

संबोधि के विषय में तो तुम अभी बिलकुल भुल ही जाओ। इस के विषय में तो तुम्हें सोचना भी नहीं है। और सच तो यह है कि तुम इसके विषय में सोच भी कैसे सकते हो? और अगर तुम जो भी कुछ सोचोगे वह गलत ही होगा। इस के विषय में तुम आशा नहीं कर सकते, आकांक्षा नहीं कर सकते हो? तुम्हारी सब आशाएं

गलत होंगी ही? इसकी आकांक्षा तुम कैसे कर सकते हो? इसकी आशा या इच्छा नहीं की जा सकती। तब फिर हम कर क्या सकते है?

अपनी अपेक्षाओं, आकांक्षाओं को समझने की कोशिश करो। आशा को इच्छाओं को जानने समझने का प्रयास करो। सपनों को समझने का प्रयत्न करो। बस यहीं एक समझ की आवश्यकता है। तुम बस यह जानने की कोशिश करो कि तुम्हारा मन अब तक कैसे कार्य करता रहा है। मन की कार्यविधि में झांकने प्रयास करो, उसके अंदर झांको, देखो, अपने अचेतन मन की अदृश्य पर्तो को जानो। बस एक बार तुम्हें मन की कार्य-प्रणाली में तुम गहरे उतर गए, उससे लयबद्ध हो गए, उसे तुमने स्पष्टता से देख लिया उसके जाल में झांक लिया, और वह इतना शर्मिला है तुरंत थम जाता है। वह अब और यहां रहता ही नहीं वह इतना चंचल है, बस वह जरा रुका नहीं कि तुम समाधिस्त हो जाते हो। उस थमने में अस्तित्व के एक बिलकुल ही भिन्न आयाम का स्वाद तुम्हें घेर लेता है, एक सुगंध तुम्हारे नासापुटों में भर जाती है, तुम्हारा रोआं-रोआं आनंद से सराबोर हो उठता है।

सपने देखना एक आयाम है, अस्तित्व एक दूसरा ही आयाम है। अस्तित्व तो है, परंतु सपना तो मात्र एक विश्वास है।

दूसरा प्रश्न: ओशो, हाल ही के कई प्रवचनों में आप गैर-समस्या पर, हमारी समस्याओं के अनस्तित्व पर बोले।

एक दमनकारी कैथोलिक परिवार में पालन-पौषण होने के कारण, और उतनी ही विक्षिप्त शिक्षा-पद्धति में इक्कीस वर्ष बिता कर, क्या आप कह रहे हैं कि सुरक्षा के हमारे वे कवच, वे सब संस्कार, और वे सारे दमन अस्तित्व में हैं ही नहीं, उन्हें तुरंत छोड़ा जा सकता है–अभी।

मस्तिष्क पर छूट गई, या शरीर के पेशी तंत्र पर छूट गई, उन सब छापों का क्या होगा?

यह एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है–यह जयानंद का प्रश्न है। प्रश्न अति महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह मनुष्य की आंतरिक सचाई के संबंध में दो भिन्न दृष्टियों को दर्शाता है।

पश्चिम दृष्टिकोण है समस्या के विषय में विचार करना, समस्या के कारणों का पता लगाना, समस्या के इतिहास में जाना, अतीत में झांकना, समस्या को एकदम जड़ से पहचानना, मन को असंस्कारित करना या पुर्नसंस्कारित करना, शरीर को पुर्नसंस्कारित करना, या मस्तिष्क पर जो छाप छूट गई है उन्हें निकालना–यह पश्चिमी ढंग है। मनोविश्लेषण स्मृति में जाता है, यह वहां काम करता हैं, यह तुम्हारे बचपन में जाता है, तुम्हारे अतीत में जाता है, यह हर उस जगह जाकर देखना चाहता है कि समस्या कहां से प्रारंभ हुई थी। ये भी हो सकता है कि पचास वर्ष पहले जब तुम एक बच्चे थे, समस्या तुम और तुम्हारी मां के संबंधों को लेकर शुरू हुई हो। फिर मनोविश्लेषण पीछे की और जाता है।

उन पचास वर्षों का इतिहास! यह एक बड़ा, घसीटने वाला मामला है। और फिर भी इससे अधिक सहायता नहीं मिलती–क्योंकि लाखों समस्याएं है। यह कोई एक ही समस्या का संबंध थोड़े ही है। तुम एक समस्या के इतिहास में जा सकते हो, तुम अपनी पिछलें जीवन में झांक सकते हो उस समस्या का कारण मालुम कर सकते हो। शायद इस तरह से तुम एक आध समस्या का हल भी निकाल लो, परंतु समस्याएं तो लाखों है। यदि तुम हर समस्या में जानना प्रारंभ कर दो–एक जन्म की समस्याओं को हल करने के लिए तुम्हें लाखों जन्मों की आवश्यकता पड़ेगी। मुझे इसे जरा फिर से कहने दो: एक जन्म कि समस्या को हल करने के लिए तुम्हें बार-बार पैदा होना होगा। शायद लाखों बार। फिर भी यह लगभग असंभव है। यह नहीं किया जा सकता। और उन लाखों जन्मों में जब तुम इन समस्यों को हल कर रहे होग, तब उन जन्मों कि फिर लाखों समस्याएं पैदा हो

जाएंगी। यह तो विशियष र्वतुल पैदा हो जाएगा। और तुम सदा उस दुशचक्र में फंसे ही रहोगे। तुम समस्याओं में अधिक से अधिक उलझते ही चले जाओगे, यह तो अर्थहीन है।

अब, वही मनोविश्लेषण दृष्टि शरीर में भी गई है: रॉल्फिग, जीव-ऊर्जा और दूसरी विधियों से जो शरीर की छापों को, पेशी-तंत्र पर पड़ी छापों को मिटाने की चेष्टा करती हैं। पुनः, तुम्हारे शरीर के इतिहास में जाना होगा, लेकिन इन दोनों दृष्टियों में, जो कि एक ही तार्किक ढांचे पर स्थापित हैं, एक बात निश्चित है कि समस्या अतीत से आती है, अतः इसके हल के लिए भी अतीत के साथ ही कुछ न कुछ करना होगा।

मनुष्य का मन सदा दो असंभव कार्य करने का प्रयत्न करता रहा है। पहला है: अतीत को सुधारना–जो कि किया नहीं जा सकता। अतीत तो बीत चुका है। तुम सच में अतीत में जा नहीं सकते हो। जब तुम अतीत में जाने की सोचते हो, अधिक से अधिक तुम उसकी स्मृति में जा सकते हो, यह सच्चा अतीत नहीं है, यह मात्र स्मृति है। अतीत अब है ही नहीं, इसलिए तुम इसे सुधार भी नहीं सकते। यह मनुष्य के असंभव प्रयासों में एक है, शायद मनुष्य इस वजह से भी बहुत ही दुख उठता चला आ रहा है। तुम अतीत को अनकिया करना चाहते हो–तुम इसे अनकिया कैसे कर सकते हो? अतीत तो पूर्ण हो चुका, वह तो बीत चुका है। अब इसे सुधारने या अनकिया करने की संभावना बचती ही नहीं। तुम अतीत के साथ कुछ भी नहीं कर सकते।

और दूसरा असंभव विचार जिसने सदा मनुष्य के मन पर अधिपत्य जमाया है, वह है: भविष्य को स्थापित करना–जिसे भी करना लगभग न मुमकिन है, जिसे नहीं किया जा सकता। भविष्य का अर्थ है वह जो अभी आया ही नहीं है, तुम भला इसे कैसे स्थापित कर सकते हो? भविष्य सदा अनिश्चित ही रहेगा। भविष्य सदा खुला रहता है, भविष्य तुम्हारी शुद्ध संभावना है। जब तक की यह घट ही न जाए, तुम इसके विषय में सुनिश्चित नहीं हो सकते।

अतीत तुम्हारी शुद्ध यथार्थता है–यह घट चुका है। अब इस के विषय में कुछ भी नहीं किया जा सकता।

अब मन इन दो असंभव के विषय के बीच में सोचता है, परंतु मनुष्य तो यहां अभी वर्तमान में खड़ा है। वह अपने भविष्य के विषय में, कल के विषय में, सब कुछ सुनिश्चित करना चाहता है। जो कि कभी नहीं किया जा सकने वाला कार्य है। इस बात को अपने हृदय में जितना गहरे में बिठा सकते हो बिठा लो, जितना गहरे में इसे पैठ जाने दो: यह कभी न किया जा सकता है। भविष्य को सुनिश्चित करने के लिए अपने वर्तमान के क्षण को नष्ट मत करो। भविष्य अनिश्चितता है, भविष्य का यही तो गुण है। और पीछे मुड़ कर देखने में अपना समय नष्ट मत करो। अतीत घट चुका है, यह एक मृत घटना बन चुकी है। इसके बारे में और कुछ भी नही किया जा सकता है। अधिक से अधिक जो तुम कर सकते हो वह है इसकी पुर्नव्याख्या बस इतना ही। वही तो मनोविश्लेषण कर रहा है: इसकी पुर्नव्याख्या बस इतना मात्र। पुर्नव्याख्या की जा सकती है, परंतु अतीत को बदला नहीं जा सकता वह तो वैसा का वैसा ही रहता है।

मनोविश्लेषक और ज्योतिष: ज्योतिष भी किसी भी तरह से भविष्य को र्निधारित करने की कोशिश कहता है, और मनोविश्लेषण अतीत को अनकिया करने का प्रयास करता है। इनमें से कोई भी विज्ञान नहीं है। दोनों बातें असंभव है, पर दोनों के अनुयायी हैं–क्योंकि आदमी ऐसा चाहता है। वह भविष्य के बारे में सुनिश्चित होना चाहता है। इसलिए तो वह ज्योतिषियों के पास जाता है। वह आई-चिंग देखता है, वह टैरट पढ़ने वाले के पास जाता है। और स्वयं को मूर्ख बनाता रहता है, स्वयं को धोखा देने की हजार तरकीबें करता ही रहता है।

और फिर ऐसे लोग भी है जो कहते हैं कि वह तुम्हारे अतीत को बदल सकते है, वह उन से भी परामर्श करता है।

एक बार तुम्हारी ये दोनों पर्तें छूट जाए, तुम इन से मुक्त हो जाओ, तब ही तुम हर तरह की मुर्खता से छूटकारा पा जाते हो। फिर तुम मनोविश्लेषक के पास नहीं जाते, तुम किसी ज्योतिषी के पास नहीं जाते हो। तब तुम जानते हो कि अतीत तो समाप्त हो चूका है...अब उसे अनकिया नहीं किया जा सकता है। तुम केवल वर्तमान में खड़े रह जाते हो। जो की एक मात्र अपलब्ध क्षण तुम्हारे पास है, उसे तुम पुर्णता से भोग सकते हो जी सकते हो, आनंदित हो सकते हो।

पश्चिम निरंतर इन समस्याओं में देखता रहा है, इन्हें कैसे हल किया जाए। पश्चिम समस्याओं को बड़ी गंभीरता से लेता है। और जब तुम दिए गये पूर्वनुमानों के साथ किसी तर्क में जाते हा, वह तर्क एकदम सही जान पड़ता है।

मैं हाल ही में एक वृतांत पढ़ रहा था:

एक महान दार्शनिक और विश्वविख्यात गणितज्ञ हवाई जहाज में बैठे थे। एक अपनी सीट पर बैठा बड़ी गणितीय समस्याओं पर विचार कर रहा होता है, जबकि अचानक जहाज के कैप्टेन की और से अद्धोषणा होती है: 'मुझे खेद है कुछ देरी हो जाएगी। इंजन नम्बर एक बंद हो गया है, और अब हम तीन ही इंजनों पर उड़ रहे है।'

दस मिनट के बाद दूसरी उद्धोषणा: 'मुझे खेद के साथ आपको सुचित करना पड़ रहा है कि, इंजन नम्बर दो और तीन भी बंद हो गए है। और अब मात्र इंजन नम्बर चार ही बचा है।'

तब वह दार्शनिक अपने पास कि सीट पर बैठे हुए यात्री की और मुड़ता है और उससे कहता है, 'यह तो खूब रही अगर यह इंजन भी बंद हो जाएंगा तो हमें सारी रात अधर में ही लटका रहना पड़ जाएगा।'

जब तुम एक ही विशेष रेखा में सोचते हो, तो इसकी दशा ही कुछ बातों को संभव बना देती है, अर्थहीन बातें भी संभव हो जाती है। एक बार तुमने मनुष्य की समस्याओं को गंभीरता से ले लिया, एक बार तुमने मनुष्य को एक समस्या की तरह सोचना शुरु कर दिया, तुमने एक बात तो पहले से ही मान ली–तुमने पहला कदम तो गलत उठा ही लिया। अब तुम उस दिशा में जा सकते हो, और तुम जितना चाहो, चलते चले जा सकते हो। अब मन के विषय मैं, मनोविश्लेषण के संबंध में इस सदी में इतना साहित्य उत्पन्न हुआ है, लाखों लेख, कृतियां, और पुस्तकें लिखी गई हैं। एक बार फ्रॉयड ने एक तर्क-विशेष के द्वार खोल दिए, इसने पूरी सदी पर अपना आधिपत्य जमा लिया है।

पूरब की एक बिलकुल ही भिन्न दृष्टि है। पहली बात, यह कहता है कि कोई भी समस्या गंभीर नहीं है। जिस क्षण तुम कहते हो कि कोई भी समस्या गंभीर नहीं है, करीब-करीब निन्यानबे प्रतिशत तो समस्या मर ही जाती है। फिर इसके विषय में तुम्हारी समस्त दृष्टि ही बदल जाती है। और दूसरी बात जो पूर्व कहता है, वह यह है: समस्या इसलिए है कि तुम्हारा इससे तादात्म्य हो गया है। इसका अतीत से कोई संबंध नहीं है, इसके इतिहास से कुछ लेना-देना नहीं है। तुम्हारा इससे तादात्म्य हो गया है–असली बात तो यही है। और यही कुंजी है सभी समस्याओं को हल करने की।

उदाहारण के लिए, तुम एक क्रोधी व्यक्ति हो। यदि तुम मनोविश्लेषक के पास जाओ, वह कहेगा, 'अतीत में जाओ...और यह देखो कि ये क्रोध कैसे उत्पन हुआ? किन परिस्थितियों में यह तुम्हारे मन पर अधिक से अधिक संस्कारित हुआ, अंकित हुआ। हमें उन सब चिन्हों को धो देना होगा, हमें उन्हें पोंछ देना पड़ेगा। हमें तुम्हारे अतीत को पूरी तरह से साफ कर देना पड़ेगा।'

यदि तुम किसी पूरबी रहस्यदर्शी के पास जाओ, वह कहेगा: 'तुम सोचते हो कि तुम क्रोध हो, तुम क्रोध के साथ तादात्मय अनुभव करते हो–यही तो गड़बड़ी हो रही है। अगली बार जब क्रोध उठे, तुम बस देखने वाले

रहो, तुम मात्र साक्षी बनो। तुम क्रोध से तादात्म्य मत करो। मत कहो, 'मैं क्रोध हूं।' मत कहो, 'मैं क्रोधी हूं।' इसे ऐसे घटता हुआ देखो जैसे कि यह टी. वी. के पर्दे पर चल रहा है, बस इसे तरह से इसे देखों तुम तो देख रहे हो, मात्र दृष्टा की तरह दूर खड़े होकर। केवल साक्षी बन कर।'

तुम तो एक विशुद्ध चेतना हो। जब क्रोध का बादल तुम्हें धेरे इसे बस देखो, और सजग रहो ताकि तुम्हारा तादात्मय न बन जाए। एक बार तुमने यह बात सीख ली...और फिर 'इतनी सारी समस्याएं' का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता है–क्योंकि कुंजी, वही कुंजी तो सारे ताले खोल देगी। यही बात क्रोध के साथ है, यही बात लालच के साथ है, यही बात काम के साथ भी है, मन जिन सब चीजों के लिए सक्षम है यही बात उन सभी के साथ है।

पूरब कहता है: बस अतादात्यत्मित रहो। याद रखो यही तो गुर्जिएफ का अर्थ है जब वह कहता है, 'आत्म-स्मरण। स्मरण रखो कि तुम एक साक्षी हो! ध्यानपूर्ण रहो! होशपूर्ण जागे रहो! यही तो बुद्ध भी कहते है, सजग रहो, जैसे की बादल गुजर रहा है। हो सकता है कि वह बादल अतीत से आता हो, पर यह बात निरर्थक है। इसका कोई विशेष अतीत होगा ही, यह शुन्य से तो आ नहीं सकता। यह घटनाओं के एक क्रम-विशेष से ही आ रहा होगा–पर यह बात असंगत है। ठीक अभी, इसी क्षण में ही, तुम इससे विरक्त हो सकते हो, तुम स्वयं को इससे दूर रख सकते हो। पुल को ठीक अभी तोड़ा जा सकता है–और यह केवल अभी में ही तोड़ा जा सकता है।

अतीत में जाने से सहायता न मिलेगी। तीस वर्ष पहले, क्रोध उठा और उस क्षण तुम उसके साथ तादात्म्यित हो गए। अब अतीत से तो तुम अतादात्म्यित हो सकते नहीं, यह तो अब है ही नहीं। पर इस क्षण ठीक इसी क्षण, तुम अतादात्यिमत हो सकते हो। और तब तुम्हें अतीत के क्र्ोध समस्त-श्रृंखला तुम्हारा हिस्सा नही रहती।

प्रश्न संगत है। इस जयानंद ने पूछा है: 'हाल ही कई प्रवचनों में आप गैर-समस्या पर, हमार समस्याओं के अनस्तित्व पर बोले हैं। एक दमनकारी कैथोलिक परिवार में पालन पोषण कराकर...'

तुम ठीक अभी और यही एक गैर-कैथोलिक हो सकते हो। अभी! मैं कहता हूं। तुम्हें पीछे जाना ही नहीं होगा और वह सब अनकिया करना नहीं होगा जो तुम्हारे माता-पिता ने, तुम्हारे समाज ने, तुम्हारे पुरोहित ने और चर्च ने तुम्हारे साथ किया है। वह तो इस कीमती समय कि बर्बादी ही होगी, आज है, हमारा अस्तित्व, मात्र होना, उसे बीते हुए कल के लिए हम इसे नाहक खो रहें हैं। पहले से इसने इतने सारे वर्ष नष्ट कर दिए हैं, अब फिर से यह वर्तमान क्षणों नष्ट करने लग जाएगा। तुम बस इससे बाहर निकल आ सकते हो, ठीक वैसे ही जैसे सांप अपनी केंचुली छोड़ कर सरक जाता है।

'एक दमनकारी कैथोलिक परिवार में पालन-पोषण कराके और एक उतनी ही उन्मंत शिक्षा पद्धति मे इक्कीस वर्ष बिता कर क्या आप कह रहे हैं कि सुरक्षा के हमारे वे कवच, वे सब संस्कार, और वे सारे दमन अस्तित्व में हैं ही नहीं...?

न वे हैं...। पर उनका अस्तित्व या तो शरीर में है या तुम्हारे मस्तिष्क में है, इससे अधिक नहीं। उनका तुम्हारी चेतना तुम्हारे अस्तित्व से कुछ लेना-देना नहीं है। क्योंकि चेतना को संस्कारित नहीं किया जा सकता। चेतना तो हमेशा मुक्त रहती है। मुक्ति इसका आंतरिक गुण है, स्वतंत्रता इसका स्वभाव है। सच तो यह है कि यह प्रश्न पूछने में भी तुम उस स्वतंत्रता को दर्शा रहे हो।

जब तुम कहते हो, 'एक उन्मत शिक्षा पद्धति में इक्कीस वर्ष, जब तुम कहते हो, 'एक दमनपूर्ण कैथोलिक परिवार मे पालन पोषण कराके'–इस 'क्षण' में तो तुम तादात्मित नहीं हो। तुम देख सकते हो: कैथोलिक दमन के इतने वर्ष, एक शिक्षा-विशेष के इतने सारे वर्ष। इस क्षण में, जब तुम इसे देख रहे होते हो, यह चेतना अब

कैथोलिक तो नहीं हैं, वर्ना तो इसके प्रति सजग कौन होता? यदि तुम सच में ही कैथोलिक हो गए होते, तब सजग कौन हुआ होता। तब तो सजग हो पाने की कोई संभावना न रही होती।

यदि तुम कह सकते हो, 'एक उतनी उन्मंत शिक्षा-पद्धति में इक्कीस वर्ष,' एक बात सुनिश्चित है: तुम अभी उन्मंत नहीं हो। पद्धति असफल हो गई, यह आपना काम नहीं कर सकी। जयानंद, तुम उन्मंत नहीं हो इसलिए तुम समस्त पद्धति को उन्मंत देख सकते हो। एक पागल व्यक्ति यह नहीं देख सकता कि वह पागल है। केवल एक स्थिर चित व्यक्ति ही देख सकता है कि यह पागलपन है। पागलपन को पागलपन की भांति देख पाने के लिए स्थिर बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है। उन्मंत पद्धति के वे इक्कीस वर्ष असफल हो गये है, वह समडत दमनकार संस्कारिता असफल हा गई हैं। यह सच में सफल हो भी नहीं सकती। यह उसी अनुपात मे सफल होती है जिस अनुपात में तुम इससे तादात्मित होते हो। किसी भी क्षण तुम अलग खड़े हो जा सकते हो...यह वहां है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यह वहां नहीं है, पर यह अब तुम्हारी चेतना का अंग न रही।

चेतना की यही तो सुंदरता है, चेतना किसी भी वस्तु से खिसक सकती है। उसके लिए कुछ बाधा नहीं है। इसके लिए कोई सीमा नहीं है, अभी एक क्षण पहले तुम एक अंग्रेज थे–राष्ट्रीयता की बकवास को समझ के, एक क्षण बाद ही तुम अंग्रेज नहीं रहे। मैं यह नही कह रहा हूं कि तुम्हारी श्वेत त्वचा बदल जाएगी, यह श्वेत ही रहेगा–पर तुम इस श्वेतता से तादात्मित नहीं रहते, तुम अब काली त्वचा के विपरीत नहीं होते। तुम इस मुढ़ता को देख लेते हो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि बस यह देख कर कि तुम अब अंग्रेज न हरे, तुम अंग्रेजी भाषा भूल जाओगे, नहीं। यह अभी भी तुम्हारी स्मृति में बनी रहेगी, परंतु तुम्हारी चेतना वहां से सरक आई है। तुम्हारी चेत

ना अब पहाड़ी की चोटी पर खड़ी है, उपर से बस निहार रही है, उपर से बादियों से झांक रही है। अब, अंग्रेज तो वादी में मृत है और तुम पहाड़ी पर खड़े हो, दूर, असंबद्ध, अछूते, साक्षी की तरह।

पूरब की सारी प्रक्रिया एक शब्द में बताई जा सकती है–'साक्षीभाव।' और पश्चिम की समस्त प्रक्रिया एक शब्द में जाहिर की जा सकती है: 'विश्लेषण।' विश्लेषण से तो तुम वतुर्ल में फंस जाते हो, बस गोल-गोल ही धूमते रहते हो परीधि के आस पास। और साक्षी भाव तुम्हें तुरंत घेरे के बाहर फैंक देता है।

विश्लेषण एक दुष्चक्र है। यदि सच में ही तुम विश्लेषण में जाओ, तुम बस हैरान हो जाओगे–यह कैसे संभव है, यदि, उदाहरण के लिए, तुम अतीत में जाने का प्रयास करो, तुम कहां रूकोगे? ठीक कहां पर? यदि तुम अतीत में जाओ, तुम्हारी कामुकता कहां से शुरू हुई? जब तुम चौदह वर्ष के थे? परंतु तब यह क्या आकाश से टपक पड़ी? यह देह में तैयार हो रही होगी। इसलिए कब? जब तुम पैदा हुए? पर जब तुम मां के गर्भ में थे, तब क्या यह तैयार नहीं हो रही थी? तब किस समय? जिस क्षण तुम्हारा गर्भाधान हुआ? पर उससे पहले? तुम्हारी आधी कामुकता तुम्हारी मां के अंडे में परिपक्व थी, और बाकि आधी तुम्हारे पिता के वीर्य मे परिपक्क हो रही थी। अब चले जाओ...कहां तुम रूकोगे? तुम्हें आदम और हव्वा तक जाना होगा। और फिर भी यह बात खत्म नहीं होती: तुम्हें स्वयं पिता ईश्वर तक जाना ही पड़ेगा। उसने अव्वल तो आदम को बनाया ही क्यों?...

विश्लेषण तो सदा अधूरा ही रहेगा, इसलिए विश्लेषण सच में किसी की सहायता नहीं कर पाता। यह कर नहीं सकता। यह तुम्हें तुम्हारी वास्तविकता से थोड़ा सा समायोजित कर देता है, बस इतना ही। यह एक तरह का समायोजन ही है। यह तुम्हारी सहायता करता है तुम्हारी समस्याओं को थोड़ा समझने में। उनकी उत्पत्ति कैसे हुई, वह उठी कहां से है। वह क्यों उठी हैं? और यह थोड़ी सी बोधिक समझ तुम्हें समाज से बेहतर समायोजित होने में सहायता करती है, पर रहते हो तुम वही के वही। तुम्हारे व्यक्तित्व में कोई बदलाव नहीं आता। इस सब से कोई रूपांतरण नहीं आता, इसके द्वारा कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं होता।

साक्षी भाव क्रांति है, यह एक आधारभूत परिवर्तन है–एकदम जड़ से! यह एक बिल्कुल ही नए व्यक्ति को अस्तित्व में ले आता है, क्योंकि यह तुम्हारी चेतना को समस्त संस्कारों से मुक्तत करा लेता है। हमारे देह में और मन में तो संस्कार होते है। परंतु हमारी चेतना तो असंस्कारित ही रहती है सदा कुंआरी नवीन। यह शुद्ध है, सर्वदा शुद्ध। यह नव-नूतन, अनछुई कुंआरी है। इसका कौमार्य नष्ट नहीं किया जा सकता।

पूरब का दृष्टिकोण है तुम्हें स्मृति दिलाना इस कुंआरी चेतना का, उसकी शुद्धता का, उसकी निर्दोषता का। यही तो सराह राजा से कह रहा है, बार-बार कह रहा है। हमारा जोर आकाश पर है और पश्चिम का जोर मेधों पर हैं। मेधों की एक उत्पति है, यदि तुम जानना चाहो कि वह कहां से आते है, तुम को समुद्र तक जाना होगा, फिर सूरज की किरणों तक और जल के वाष्पीकरण पर, मेधों के बनने पर...और तुम चलते रह सकते हो, पर यह एक गोल घेरे वर्तुल की तरह घूमनें जैसा ही है। बादल बनते है, फिर धिर आते है, वृक्षों के प्रेम में पड़ते है, फिर से पृथ्वी पर बरसना शुरू कर देते है, नदियां बन जाते हैं, नदियां फिर से समुद्र में गिर जाती हैं। फिर वाष्प बन कर सूर्‌य कि किरणों पर चढ़ कर बादल बन जाते है, फिर बरस पड़ते है। ये चक्र चलता ही रहता है, ये रूकता ही नहीं। बस गोल-गोल। यह तो एक चक्र हुआ, तुम इससे बाहर कैसे निकल सकते हो। एक बात से दूसरी बात फिर वहीं दोहराव, तुम चक्र से बाहर निकल ही नहीं पाते। इसे संसार चक्र कहा है हिंदुओं ने।

आकाश की कोई उत्पति नहीं है। आकाश असृजित है, यह किसी चीज से नहीं बनता। सच तो यह है कि किसी का अस्तित्व, रूप, आकार होने के लिए आकाश की घट की आवश्यता होती ही है। यह एक अति आवश्क है, पहले से जरूरी है, किसी रूप का बनना, वहां आकाश होना ही चाहिए। तुम ईसाई धर्मशास्त्री से पूछ सकते हो–वह कहता है, 'ईश्वर ने संसार की रचना की।' उससे पूछो कि ईश्वर की रचना से पहले क्या यहां आकाश नहीं था, तब तुम्हारा ईश्वर कहां रहता था, उसने संसार कहां से रचा? उसने संसार को कहां रखा? आकाश बहुत ही जरूरी है...ईश्वर के होने के लिए भी। तुम यह नहीं कह सकते, 'ईशवर ने आकाश बनया।' यह अर्थहीन होगा, क्योंकि तब उसके पास होने के लिए कोई स्थान ही नहीं होगा। आकाश को पहले होना ही चाहिए।

आकाश तो सदा से रहा है। पूरब के दृष्टिकोण से आकाश के प्रति स्मृतिपूर्ण हो जाना। पश्चिम दृष्टिकोण तुम्हें मेधों के प्रति और अधिक सजग बनाता है। और तुम्हारी थोड़ी सी सहायता भी करता है। पर यह तुम्हें तुम्हारे अंतर्तम केंन्द्र के प्रति जागरूक नहीं बनाता। परिधि-हां परिधि के प्रति तो तुम थोड़े से सजग हो जाते हो, परंतु केंद्र के प्रति सजग नहीं होते। और परिधि तो एक चक्रवात है। तुम्हें तो चक्रवात का केन्द्र ढूंढना है। और यह घटना साक्षी भाव से ही घटती है।

साक्षीभाव तुम्हारे संस्कारों को बदलेगा नहीं। साक्षीभाव तुम्हारे पेशीतंत्र तुम्हारे शरीक सरंचना को बदलेगा नहीं। लेकिन साक्षीभाव तुम्हें बस यह अनुभव दे देगा कि तुम सब दबी भावनाओं और संस्कारों के पार हो जाओंगे। पार होने के उस क्षण में भावातीतता के उस क्षण में किसी समस्या का अस्तित्व नहीं होता—तुम्हारे लिए तो कम से कम नहीं।

और अब यह तुम पर निर्भर करता है। शरीर तो अभी भी उसी पेशीतंत्र को लिए रहेगा, मन तो अभी भी उन्हीं संस्कारों को लिए रहेगा—अब यह तुम पर है: यदि तुम्हें कभी समस्या की लालसा उठे, तुम मन-शरीर में जा सकते हो और उसका (समस्या का) आनंद उठा सकते हो। यदि तुम समस्या को न चाहो, तुम इससे बाहर रह सकते हो। शरीर-मन की घटना में एक छापे की भांति समस्या रहेगी तो, पर तुम इससे अलग और दूर रहोगे।

इसी तरह तो एक बुद्ध पुरूष कार्य करता है। तुम भी स्मृति का उपयोग करते हो, बुद्ध पुरूष भी स्मृति का उपयोग करता है—पर वह इससे तादात्मिक नहीं होता। वह स्मृति का उपयोग यंत्र की भांति करता है। उदाहरण के लिए मैं भाषा का उपयोग कर रहा हूं। जब मुझे भाषा का उपयोग करना होता है, मैं मन का और

उसके समस्त छापों का उपयोग करता हूं लेकिन यह जागरूकता कि मैं मन नहीं हूं, निरंतर बनी ही रहती है। इसलिए मालिक मैं ही रहता हूं, मन तो एक सेवककी भांति रहता है। जब मन को बुलाया जाता है, यह आता है—पर अधिपत्य इसका नहीं हो सकता।

इसलिए तुम्हारा प्रश्न सही है: समस्याएं तो होंगी पर वे शरीर और मन में केवल बीज रूप में रहेंगी। अपने अतीत को तुम कैसे बदल सकते हो? तुम अतित में एक कैथोलिक रहे हो, यदि चालीस वर्ष तक तुम एक कैथोलिक रहे हो, तब उन चालीस वर्षों को तुम कैसे बदल सकते हो। और कैसे एक कैथोलिक नहीं हो सकते हो। वे चालीस वर्ष तो कैथोलिक रहने के एक समय के रूप में रहेंगे ही। न-पर तुम इससे खिसक जा सकते हो। अब तुम जानते हो कि वह मात्र एक तादात्म्य था। उन चालीस वर्षों को नष्ट नहीं किया जा सकता और उन्हें नष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम उन चालीस वर्षों को भी एक निश्चित ढंग से, एक सृजनात्मक ढंग से उपयोग में ला सकते हो। वह उन्मत्त शिक्षा भी एक सृजनात्मक ढंग से उपयोग में लाई जा सकती है।

मस्तिष्क पर छूट गई, शरीर के पेशी-तंत्र पर छूट गई उन सब छोपों का क्या होगा?

वे वहां रहेंगी, पर एक बीज की भांति: सम्भावना की तरह से। यदि तुम बहुत अकेलापन अनुभव करो और तुम्हें समस्याओं की याद आए, तो तुम उन्हें रख सकते हो। यदि तुम दुःख के बिना बड़े दुःखी महसूस करो, तुम उन्हें रख सकते हो। वे सदा उपलब्ध रहेंगी, पर उन्हें रखने की कोई आवश्यकता नहीं है, उन्हें रखने की कोई जरूरत नहीं है। यह तुम्हारा ही चुनाव रहेगा।

आने वाली मनुष्यता को यह निर्णय करना होगा कि क्या इसे विश्लेषण ही के मार्ग पर चलते रहना है या कि मार्ग बदल कर इसे साक्षीभाव के मार्ग पर आ जाना है। मैं दोनों विधियों का उपयोग करता हूं। मैं विश्लेषण का उपयोग करता हूं विशेष रूप से उन साधकों के लिए जो पश्चिम से आते है—मैं उन्हें समूहचिकित्सा से गुजारता हूं। वे समूह विश्लेषण वादी हैं। वे समूह मनो-वेश्लेषण के उप-उत्पाद हैं। वे विकसित हुए हैं, फ्रॉयड यादि यहां आए तो एन्काउन्टर (ग्रुप) को वह पहचान न पाएगा। या प्राइमल थैरेपी उसे पहचान पान मुश्किल हो जाएगी। यह क्या हो रहा है? क्या ये सब लोग पागल हो गए है? लेकिन ये उसी के काम की प्रशाखाएं हैं: वही प्रणेता था, उस के बिना कोई प्राइमल थैरेपी न होती। उसने ही यह सारा खेल शुरू किया था।

जब पश्चिम के लोग मेरे पास आते हैं, मैं उन्हें समूहों में रख देता हूं। यह उनके लिए अच्छा है। उन्हें उसी चीज से प्रारंभ करना चाहिए जो उनके लिए सरल हो। फिर धीरे-धीरे मैं बदलता हूं। पहले तो वे रेचक समूहों में, जैसे एनकाउंटर, प्राइमल थैरेपी, में जाते हैं, और फिर मैं उन्हें विपसना में भेजता हूं। विपस्सना है एक साक्षीभाव। एन्काउटर से विपस्सना में बड़ा संस्लेषण है। जब तुम एन्काउंटर से विपस्सना में जाते हो, तुम पश्चिम से पूरब में जाते होते हो।

तीसरा प्रश्न: क्या आपके कृत्य भी संसार में शुभ और अशुभ का वही अनुपात लाते हैं?

कौन से कृत्य? क्या तुम मुझ में कोई कृत्य खोज पाते हो...बोलने के अतिरिक्त? और उसमें भी, मैं हर सावधानी लेता हूं कि मैं जो भी कहूं उस का खण्डन करने वाली बात भी कह दूं। इसलिए अंत में, बस रिक्तता... यही खण्डन का उपयोग है। यदि मैं कहता हूं धन एक, तो तुरंत मैं कहता हूं, झण एक—और कुल परिणाम है शून्य।

मैं कर्ता नहीं हूं। मैं कुछ करता ही नहीं। वह सब जिसे तुम कृत्य कह सकते हो वह है मेरा तुमसे बोलना। और वह इतना अंत र्विरोधी है कि यह शुभ या अशुभ कुछ नहीं ला सकता। मैं स्वयं को ही नकारत जाता हूं। और यदि तुम अ-कर्म की इस अवस्था को समझ गए, तुम चेतना की सर्वोच्च संभावना को समझ लोगे। सर्वोच्च

चेतना कर्ता नहीं है। यह तो एक होना मात्र है। और यदि कर्म जैसी कोई चीज वहां दिखाई भी पड़ती है, यह तो बस एक खेल है। मेरा बोलना बस एक खेल है।

और कुल प्रयास यह है कि तुम मेरे प्रति मतवादी न हो जाओ। तुम हो भी नहीं सकते—मैं वैसी संभावना ही नहीं छोड़ता। मैं इतना खण्डन करता हूं, कैसे तुम कोई मत निर्मित कर सकते हो? यदि तुम कोई मत निर्मित करने की चेष्टा भी करो, तुम पाओगे कि मैंने इसका भी खण्डन किया है।

एक ईसाई मिशनरी मेरे पास आया करता था, और उसने कहा, 'आपने तो इतना बोला है। अब जिस चीज की आवश्यकता है वह एक है एक छोटी सी किताब जो कि आपके दर्शन को प्रस्तुत कर सके—ईसाई प्रश्नौतर पुस्तिका जैसी कोई चीज, संक्षेप में।'

तब मैंने कहा, 'यह कठिन होगा। यदि कोई मुझे संक्षेप में बताने जा रहा है, वह पागल हो जाएगा। और उसे चुनने का, और क्या चुने इसका कोई उपाय न सूझेगा। जब मैं जा चुका होऊंगा, बहुत से लोग मेरे ऊपर पी. एच. डी. थीसिस लिखने में पागल हो जाएंगे-क्योंकि जो कुछ भी कहा जा सकता है वह मैंने कह दिया है जो कुछ नकारा जा सकता है वह मैंने नकार दिया है।'

चौथा प्रश्न: एक प्रश्न अ-विश्वास में—आप अहंकार के इतने विरोध में क्यों बोलते है? क्या अहंकार भी ईश्वर का ही एक रूप नहीं है, अस्तित्व द्वारा खेला जाने वाला एक खेल नहीं है?

यदि यह बात तुम्हारी समझ में आ जाए, तब तो अहंकार की कोई समसया ही नहीं हैं। यही तो कुल प्रयोजन है की क्यों मैं अहंकार के विरोध में बोले चला जा रहा हूं। ताकि तुम नहीं हो केवल ईश्वर है। यदि तुम ऐसी गहन समझ को प्राप्त हो जाओं कि अहंकार भी ईश्वर का ही एक खेल है, तब तो यह पूर्णत: शुभ है। तब तो कोई समस्या ही नहीं रहती। तब तो छोड़ने के लिए तुम्हारे पास कुछ है ही नहीं।

यदि तुम समझ लो कि अहंकार भी ईश्वर का ही खेल है, तब तुम इसमें नहीं होते। सभी कुछ ईश्वर का हैं—यही तो अहंकार शून्यता का अर्थ होता है—अहंकार भी।

पर सावधान रहना! तुम कहीं अपने ही साथ चालबाजी न कर रहे होओ। और मन बड़ा चालाक है। ईश्वर के नाम पर तुम शायद अपने अहंकार को बचाने की चेष्टा ही न कर रहे होओ। यह तुम पर निर्भर है। लेकिन सजग रहना यदि तुम सच ही में समझ गए कि सब कुछ ईश्वर का ही है तब तुम होते ही नहीं।

इसलिए अहंकार है कहां? अहंकार का अर्थ क्या है? इसका अर्थ है: मेरा अपना निजी जीवन है; मैं अस्तित्वगत प्रवाह का अंग नहीं हूं। मैं नदी का अंग नहीं हूं—मैं तैर रहा हूं, मैं धारा में ऊपर की और जा रहा हूं, विपरित—मेरा अपना निजि लक्ष्य है, मुझे इसकी जरा भी प्रवाह नहीं है कि अस्तित्व कहां जा रहा है। मेरे अपने स्वयं के निजी लक्ष्य होते है। में उन्हीं पर चल रहा हूं, उन्हें ही मैंने पाना है। उन्हीं के पाने की चेष्टा कर रहा हूं। और अहंकार इसी का नाम है। यही अहंकार का अर्थ है निजी लक्ष्य रखना। अहंकार मूढ़ता है।

यह शब्द 'ईडियट' बड़ा ही सूंदर है। इसका अर्थ है अपनी निजी ढंग रखना। इसका अर्थ है निजी लक्ष्य रखना, निजि शैली रखना। अहंकार ईडियोटिक है। यह बस इतना ही कहता है कि 'मैं सार्वभौम का अंग नहीं हूं। में निजी हूं, मैं अलग हूं। मैं एक द्वीप हूं, मैं महाद्वीप से संबंधित नहीं हूं।' यह समस्त से सबंधित न होना ही तो अहंकार है। यह अलग होने का विचार ही तो अहंकार है।

यह कारण है कि सभी रहस्यदर्शी कहते आये है: अहंकार को छोड़ो। वे क्या कह रहे है? वे कह रहे है: अलग मत रहो। अहंकार छोड़ देने का कोई और अर्थ नहीं है: अलग मत रहो—अस्तित्व के साथ एक हो जाओ। और नदी के विपरीत मत बहो—वह मूर्खता है, तुम बस थकोगे और हारोगे। नदी के साथ बहो। सारे रास्ते भर,

नदी के साथ रहो। उसी की लय में बहो, तब जीवन में एक आनंद होगा, तुम नदी का ही एक अंग बन जाओगे। और पूर्ण विश्रांति होगी, तुम्हारे आस पास। एक लयवदिता होगी तुम्हारे जीवन में।

नदी के साथ आनंद है। नदी के विपरीत तनाव है, थकावट है, चिंता है, जिद्दोजहद है, अहंकार चिंता और तनाव निर्मित करता है।

अब तुम पूछते हो, 'आप अहंकार के इतने विरोध में क्यों बोलते हो? क्या अहंकार भी ईश्वर का ही एक रूप नहीं है। अस्तित्व द्वारा खेला जाने वाला एक खेल नहीं है।'

यदि तुम्हारी समझ में यह बात आ गई है तो कम से कम तुमसे तो मैं अहंकार छोड़ने के लिए नहीं कह रहा हूं; तब तो तुम्हारे पास छोड़ने के लिए कुछ और बचा भी नहीं, छोड़ना तो बस एक अहंकार ही है वह तुम छोड़ चूके हो शायद...? परंतु बहुत सावधान रहना सजग रहना। मन इतना चालाक है।

मैंने यह छोटी सी कथा सुनी है:

एक बंदर और एक लकडबग्घा जंगल में साथ-साथ टहल रहे थे जबकि लकड़बग्घे ने कहां, 'जब कभी भी मैं उधर वाली झाड़ियों में से गुजरता हूं, एक बड़ा शेर मेरे ऊपर कूद पड़ता है और मुझे मारता ही जाता है, मारता ही जाता है, और मैं जानता भी नहीं कि क्यों?'

बंदर ने तपाक से कहा, 'ठहरो, जरा इस बार जब तुम वहा से गुजर रहे होओ तो मैं तुम्हारे साथ आऊंगा, और मैं हर समय तुम्हारे साथ ही चिपका रहूंगा।'

इसलिए वे साथ-साथ चलते रहे और जैसे ही वे उन झाड़ियों तक पहुंचे, एक शेर उन पर कूद पड़ा और उसने लकड़बग्घे को मारना शुरू कर दिया। बंदर तो झट से एक पेड़ पर चढ़ कर बैठ गया। वहीं से बैठा वह सब देखता रहा, अत: जब शेर चला गया, अधमरे लकड़बग्घे ने बंदर से पूछा, 'तुम नीचे क्यों नहीं उतरे और मेरी सहायता क्यों नहीं की।'

और बंदर ने कहा: 'तुम इतना हंस रहे थे कि मैंने सोचा कि तुम्हीं जीत रहे हो।'

अहंकार से सावधान रहना। यह स्वयं की सुरक्षा के उपाय और साधन खोज ले सकता है। यह युक्ति संगति कर सकता है; अहंकार बडा युक्तिवादी है और एक सुक्तिसंगतता ही इसका कुल आधार है।

पांचवा प्रश्न: प्यारे ओशो, कृपया मुझसे यह बात कह दें ताकि मैं इसके विषय में चिंता करना बंद कर सकूं
—

'अरूप, तुम्हारे साथ हर चीज पूर्णत: सुंदर जा रही हे। अब चाहे तुम्हारा मन कितना ही कोशिश करे अब बहुत देर हो चुकी है। मैंने तुम्हें अपने पंख के भीतर सुरक्षित ले लिया है और अब वापसी का कोई उपाय नहीं है। और अब से तुम आनंदित, और अधिक आनंदित होने जा रही हो।'

धन्यवाद, ओशो! मैं आशा करती हूं कि यह ऐसा ही है पर कभी-कभी मैं कंप जाती हूं।

यह प्रश्न अरूप का है। अब पहली बात: तुम कहती हो कि मैं तुमसे कहूं, 'तुम्हारे साथ हर चीज पूर्णत: सुंदर जा रही है।'

मेरे कहने मात्र से ही तो यह सुंदर नहीं हो जाएगी। इससे तुम्हें एक सांत्वना तो मिल सकती है, पर मैं यहां तुम्हें सांत्वना देने के लिए तो हूं नहीं। या तो असली चीज लो या फिर इस बारे में फिक्र ही मत करो। सांत्वना तो झूटी चीज है। यह तो खेलने का एक खिलौना ही है। यह तो बस समय बिताने के लिए है। और समय बिताना समय को नष्ट करना ही तो है।

और दूसरी बात, तुम कहती हो, 'हर चीज पूर्णत: सुंदर जा रही है'—कठिन बात है। 'पूर्णत सुंदर'—कठिन है। यहां पृथ्वी पर पूर्ण तो कुछ होता ही नहीं। साक्षीभाव के अतिरिक्त। न कुरूपता पूर्ण है, न ही सुंदरता ही पूर्ण

है। न पसन्नता ही पूर्ण है, न अप्रसन्नता पूर्ण है। केवल साक्षीभाव। और जब तुम साक्षी होते हो, तुम न कुरूप महसूस करते हो, न सुंदर, न प्रसन्न, न अप्रसन्न—बस तुम मात्र होते हो।

मेरा कहने का कुल इतना अर्थ है की साक्षी बनो। तुम चाहोगे कि हर चीज सुंदर हो—तुम साक्षी होना नहीं चाहते। तुम अधिक सुखद अनुभव लेना चाहते हो। यही कारण है कि तुम निरंतर सांत्वना खोजते हो। लोग मेरे पास आते हैं सहायता लेने के लिए नहीं बल्कि सांत्वना लेने के लिए। बस पीठ थपथपाए जाने के लिए। यदि मैं कहता हूं कि हर चीज ठीक चल रही है। वे अच्छा महसूस करते हैं, लेकिन यह भावना कब तक मदद कर सकेगी? देर-अबेर यह क्षय होकर समाप्त हो जाएगी। फिर से उन्हें आना ही पड़ेगा, और फिर वे प्रतीक्षा करते है कि मैं उसके सिर को थपथपाऊं। इससे तुम्हें कोई सहायता नहीं मिल रही है। ये तो एक विषियस सर्कल बन जाता है। तुम्हें आवश्यकता है एक रूपांतरण की। और यह मेरे ऊपर एक निर्भरता निर्मित करेगा, और में तुम्हें मुझ पर निर्भर बना देने के लिए नहीं हूं?—तुम्हें आत्मनिर्भर होना है। तुम्हें अपना स्वयं होना है, तुम्हें अपने पैरों पर खड़ा होना है।

'अब चाहे तुम्हारा मन कितनी ही कोशिश करे, अब बहुत देर हो चुकी है।'

बहुत देर कभी नहीं होती, तुम फिर-फिर पुरानी केंचुल में खिसक जाते हो, तुम फिर इससे तादात्मित हो जाते हो। और जब सच ही मैं बहुत देर हो जाएगी तब तुम फिर यह प्रश्न न पूछोगे। तब तुम जान लोगे कि अब वापस जाने की कोई संभावना नहीं है। यह बात तब तुममें सुनिश्चित होगी। यह तुम्हारा अपना जानना होगा। इसके लिए तुम्हें मेरे प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं होगी। चूंकि अभी तुम्हें मेरे प्रमाणपत्र की आवश्यकता है, इसी से जान पड़ता है कि घटना अभी नहीं घटी है—तुम कंप रही हो।

मैंने सुना है: मुल्ला नसरूद्दीन अदालत में खड़ा था। 'यह अपराध तो किसी दक्ष अपराधी द्वारा ही किया जा सकता था,' सरकारी वकील ने कहा, 'और बडी ही दक्षता और चतुराई से किया गया था।'

शर्म से लाल होते हुए, मुल्ला नसयद्दीन, अभियुक्त अपने पैरों पर खड़ा हुआ और बोला, 'श्री मानजी, यह चापलूसी आपको कहीं न ले जा सकेगी—मैं तो अपना अपराध स्वीकार करने से रहा।'

परंतु अपराध स्वीकार वह कर चुका है। अरूप ने अपराध स्वीकार कर लिया है। यह प्रश्न नहीं है, यह एक स्वीकारोक्ति है—और यह स्वाभाविक है कि वह चिंता अनुभव करे। यह आशा करना, कि यह चिंता अनुभव न करे, अमानवीय है। कम से कम इस अवस्था में। कभी-कभी वह कंप जाती है: यह मानवीय है, स्वाभाविक है। यह अच्छा है कि इसे स्वीकार कर लिया जाए बजाए इसके कि इसे इंकार किया जाए, बजाए इसके कि एक पर्दा निर्मित कर लिया जाए और इसे छिपा दिया जाए।

'कृपया मुझसे यह बात कह दें ताकि मैं इस इसके विषय में चिंता करना बंद कर सकूं।'

कैसे तुम इसके विषय में चिंता करना बंद कर सकती हो? बस मेरे कह देने से? यदि यह इतना सरल होता, तब तो मैंने हर किसी से यह कह दिया होता। यह बात इतनी आसान नहीं है। जो कुछ भी मैं कहूंगा, तुम अपने ही ढंग से उसकी व्याख्या कर लोगे, और तुम नई चिंताएं खोज लोगे। जो कुछ भी मैं कहूंगा उसकी व्याख्या तुम्हें करनी ही होगी—तुम इसे पूरी तरह से स्वीकार नहीं कर सकते, तुम इस पर पूर्ण भरोसा नहीं कर सकते। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हें इस पर पूर्ण भरोसा करना ही होगा; मैं बस इतना ही कह रहा हूं कि यह स्वाभाविक है। मैं तुमसे कोई अस्वाभाविक बात नहीं चाहता। मैं तुमसे कोई असगंत बात नहीं चाहता। यह स्वाभाविक है। कभी-कभी तुम कंपते हो, कभी-कभी तुम मेरे विरोध में हो जाते हो, कभी-कभी तुम बड़े नकारात्मक होते हो। कभी-कभी तुम्हें ऐसा लगता है कि सब कुद बस छोड़ दिया जाए और तुम्हारे पुराने संसार

में लौट जाया जाए। मैं नहीं कहता कि तुम कुद अपराध कर रहे हो-न-यह तो बस मानविय है। यह अत्यंत स्वाभाविक है। यदि तुम ऐसे काम न करो, तब कुछ बात गलत है, तब कुछ कमी है।

जो कुछ भी मैं कहूंगा उसकी व्याख्या फिर उसी चिंता करने वाले मन से की जाएगी। यदि मैं ठीक-ठीक यही कह दूं कि: हां अरूप, तुम्हारे साथ हर चीज पूर्णत: सुंदर हो रही है। तुम सोचोगी, 'क्या ओशो मजाग कर रहे थे? क्या सच में उनका यही तात्पर्य है।' वह चिंता करने वाला मन इसके ऊपर कूद पड़ेगा। तुम्हारी व्याख्याएं होनी ही हैं।

इस छोटी सी कहानी को सुनो:

एक पादरी देर रात एक सभा से वापस लौट रहा था। कार चलाते-चलाते उसे अचानक ख्याल आया कि उसने सांयकालीन प्रार्थना तो कही ही नहीं है। एक शांत सड़क के किनारे उसने अपनी कार रोकी, नीचे उतरा और कार की हैडलाईट्स के प्रकाश का उपयोग करते हुए अपनी प्रार्थना करनी प्रारंभकर दी।

उसे शुरू किए अभी बहुत देर नहीं हुई थी कि एक लॉरी के वहां आ पहुंचने से वह हैरान रह गया। लॉरी के चालक ने, यह सोचकर की कुछ गड़बडी है, अपनी गाड़ी रोकी, अपनी तरह की खिड़की का शीश गिराया, और पूछा, 'कोई समस्या है, दोस्त?'

'नहीं, सब ठीक है, धन्यवाद,' पादरी ने उत्तर दिया। चालक ने अपनी लॉरी को गियर में डाला और वहां से दूर जाते जाते चिल्लाया, 'मैं बस इतना ही कह सकता हूं: यह कोई बहुत ही मजेदार किताब होगी जो कि तुम इस समय पढ़ रहे हो।'

अब जरा ऐसे व्यक्ति की सोचो जो एक सुनसान सड़क पर कार की हैडलाइटस में कोई किताब पढ़ता हो—तुम क्या सोचोगे? क्या तुम कल्पना कर सकते हो कि कोई बाईबिल वहां पढ़ रहा होगा? बाईबिल पढ़ने की ऐसी जल्दी भी क्या थी? बाईबिल पढ़ने में कोई इतना उत्सुक हो सकता है? क्या वह प्रतीक्षा नहीं कर सकता, क्या वह घर जाकर इसे वहां नहीं पढ़ सकता? लॉरी के चालक ने तो अपने मन के अनुसार ही इसकी व्याख्या की होगी—उसने कहा, 'मैं बस इतना ही कहा सकता हूं: यह एक बड़ी ही मजेदार किताब होगी जो कि तुम इस समय पढ़ रहे हो।'

तुम निरंतर व्याख्या करते हो। और स्वाभाविक है कि तुम अपने मन के अनुसार ही व्याख्या करते हो। जो मैं कहूंगा वह नहीं सुना जाएगा, तुम उसे अपने ही ढंग से सुनोगे। यदि तुम चिंता कर रहे हो, तुम उसके विषय में भी चिंता करोगे। यदि तुम संदेहशील हो, तुम उसके विषय में भी संदह करोगे। यदि तुम नकारात्मक हो, तुम उसके विषय में भी नकारात्मक होओगे। यदि तुम श्रद्धावान हो, तुम उस पर भी भरोसा करोगे।

अरूप कहती है, 'कृपया मुझसे यह बात कह दें ताकि मैं इसके विषय में चिंता करना बंद कर सकूं। न, चिंता करना इतनी आसानी से बंद नहीं किया जा सकता है। मेरे कहने से सहायता न मिलेगी। तुम्हें कुछ करना पड़ेगा। तुम्हें जो मैं कहता हूं वह करना पड़ेगा। तुम्हें थोड़ा सा अधिक व्यवाहिरिक बनना पड़ेगा। तुम्हें साक्षीभाव साधना पड़ेगा।'

तीन बहुत भूखे आवारगर्द थे, और वे एक घर में पहुंचे जहां का रखवाला चावल पका रहा था और उसने कहा कि वे तीनो रात को वहां रूक सकते है। और जिस किसी का भी सपना सर्वश्रेष्ठ होगा उसी को कुछ गर्म चावल खाने को मिल सकता था। इसलिए अगली सुबह, पहले आदमी ने कहा, 'मैंने सपना देखा कि मैं एक राजा हूं।'

दूसरे ने कहां: 'यह तो कुछ भी नहीं—मैंने तो सपना देखा कि मैं स्वयं ईश्वर हो गया हूं।'

तीसरे की बारी आई तब उसने कहा: 'मेरा सपना तो बहुत साधारण था और मेरे जीतने की तो कोई संभावना ही नहीं है, मैंने सपना देखा की गर्मा-गर्मा चालव ठंड़ा हो रहा है, इस लिए मैं उसे खा गया।'

व्यवहारिक बनने से यही है मेरा तात्पर्य। इसलिए अरूप, व्यवहारिक बनो। जो मैं कहता हूं वह करो—मेरे कहने मात्र से सहायता न मिलेगी...और चावल सच में ठंडा हो रहे है। तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे भीतर एक सपना निर्मित करने में सहायता करूं और चावल है कि ठंडा हुआ जा रहा है। तुम बस जाओं और चावल खाने का आनंद लो।

इससे तुम्हारे भीतर केवल एक सपना पैदा होगा यदि मैं तुमसे यह बात कहूं, 'अरूप तुम्हारे साथ हर चीज पूर्णत: सुंदर जा रही है। अब चाहे तुम्हारा मन कितनी ही कोशिश करे, अब बहुत देर हो चुकी है। मैंने तुम्हें अपने पंख के भीतर सुरक्षित ले लिया है और वापसी को कोई उपाय नहीं है।'

अव्वल तो मैं यह बात कह ही नहीं सकता क्योंकि सुरक्षित और निरापद होने की इच्छा मात्र आध्यात्मिक विकास के विपरीत है। मैं तो तुम्हें एक खतरनाक क्षेत्र से धकेल रहा हूं। मैं तो तुम्हें एक खाई में धकेल रहा हूं। तुम मेरे पंख के नीचे सुरक्षित होना चाहोगे—अब मैं तो तुम्हें अस्तित्व की अतुल गहराई में फैंक रहा हूं—जहां कोई सुरक्षा नहीं, कोई निरापदता नहीं। मैं एक रक्षक नहीं हूं—मैं एक विध्वंसक हूं। मैं तो तुम्हारी सुरक्षा नहीं हूं। यदि तुम सच में ही मुझे समझते होओ, मैं तुम्हारा खतरनाक जीवन होने जा रहा हूं।

यदि तुमने मुझे समझ लिया है, तुम सदा असुरक्षित रहोगे। तुम कभी भी सुरक्षा और निरापदता की मांग नहीं करोगे। सुरक्षा और निरापदता का तो तुम तिरस्कार करोगे। उन्हें तो तुम शत्रु समझोगे—वे हैं भी। तुम तो खुले में होने का आनंद उठाओगे, जीवन में जो कुछ भी संभव है उस सब के प्रति मेद्य रहोगे। हां, मौत के प्रति भी मेद्य, 'सब' में मौत भी तो सम्मिलित है। एक असली जीवन प्रतिक्षण मौत का सामना करता है। केवल नकली जीवन प्लास्टिक के जीवन सुरिक्षित होते है।

नहीं, यह तो मैं तुमसे नहीं कह सकता कि मैंने तुम्हें अपने पंख के भीतर सुरक्षित ले लिया है और अब वापसी का कोई उपाय नहीं है। तुम गिर सकती हो, तुम अंतिम सीढ़ी से भी गिर सकती हो। जब तक कि तुम संबोधि को ही उपलब्ध न हो जाओ, वापसी का उपाय है। तुम वापस जा सकती हो। तुम नकार सकती हो, तुम धोखा खा सकती हो, तुम इंकार कर सकती हो। तुम फिर से दुःख में गिर सकती हो—एक दम अंतिम सीढ़ी से भी तुम गिर सकती हो। जब तक कि तुमने पूरी सीढ़ी पार न कर ली हो, अंतिम पाया भी, जब तक कि तुम नाकुछ ही न हो जाओ। तुम नीचे गिर सकती हो। जरा सा अहंकार, अहंकार का जरा सा स्पंदन, तुम्हें वापस ले आने के लिए पर्याप्त है। यह फिर से संधनित हो सकता है। यह फिर से समन्वित हो सकता है। यह फिर से एक नई यात्रा बन जा सकता है।

और सुरक्षा मेरा ढंग नहीं है। संन्यासी बनने का अर्थ ही यह है कि अब तुम बिना सुरक्षा के जीवन जीने को तैयार हो। वही सबसे बड़ा साहस है और उस बड़े साहस से ही बड़ा आनंद संभव हो जाता है।

'और अब से तुम आनंदित, और अधिक आनंदित होने जा रही हो।'

मैं कोई एमिले कुए नहीं हूं—मैं कोई सम्मोहनविद नहीं हूं। हां, तुम स्वयं को इस भांति सम्मोहित कर सकती हो। यही तो कुए की कार्यविधि थी। वह अपने मरीजों से कहता था, 'सोचो, स्वप्न देखो कल्पना करो, मन की दृष्टि से देखो—हर रात सोने जाने से पहले, हर प्रात: नींद के उपरांत, बार-बार यही दोहराओं—मैं बेहतर होता जा रहा हूं, मैं ज्यादा स्वस्थ होता जा रहा हूं, मैं अधिक आनंदपूर्ण होता जा रहा हूं.....। दोहरते जी रहो, दोहराते ही रहो।'

हां, इससे कुछ सहायता मिलती है। यह तुम्हारे चारों ओर एक इन्द्रजाल निर्मित कर देता है। पर क्या तुम चाहोगी कि मैं इंद्रजाल निर्मित करने में तुम्हारी सहायता करूं? मेरा कुल ढंग है अ-सम्मोहन का, यह सम्मोहन का जरा भी नहीं है। मैं नहीं चाहता कि तुम किसी भी इंद्रजाल से सम्मोहित हो जाओ। मैं तो तुम्से सभी इंद्रजालों से पूरी तरह से असम्मोहित हो जाना चाहता हूं। जब तुम भ्रम-निर्मित की अव्स्था में होते हो, पूरी तरह से भ्रमनिवृति, तब संबोधि एकदम समीप होती है।

फिर अरूप कहती है, 'धन्यवाद, ओशो। मैं आशा करती हूं कि यह ऐसा ही है....।'

देखो! उसके मन ने पहले से ही व्याख्या करना शुरू कर दिया: 'में आशा करती हूं कि यह ऐसा ही है...यह ऐसा नहीं है—वह बस आशा करती है, कैसे तुम स्वयं को घोखा दे सकते हो!

और मैं तुम्हारे कंप जाने की निंदा नहीं कर रहा हूं—कभी-कभी कंप जाना एकदम ठीक है, कभी-कभी कंप जाना पूर्णत: मानवीय है। यह बिलकुल सही है। इसकी कभी निंदा मत करना। इसे स्वीकार कर लेना। एक झूटा अकेपन निर्मित करने की चेष्टा मत करना—वह मन का होगा और एक धोखा होगा, और वह तुम्हें कहीं भी न ले जा सकेगा। इस (कंपन को) जैसा यह है वैसा ही रहने दो। जैसा यह है इसे वैसा ही स्वीकार कर लो और अधिक से अधिक जागरूक होती जाओ। अधिक से अधिक साक्षी होती जाओ। केवल उस साक्षीभाव में ही तुम सुरक्षित रहोगी। केवल उस साक्षीभाव में ही तुम प्रतिदिन अधिक आनंदित और अधिक आनंदित होती जाओगी, बार-बार इसे दोहराने से कुछ नहीं होगा। केवल उस की साक्षी बनों। साक्षीभाव में ही तुम्हारा कंपना थमेगा। केवल उस साक्षीभाव में ही तुम अपने अस्तित्व के केंद्र पर पहुंचोगी—जहां मृत्यु नहीं है। जहां भरपूर जीवन है, जहां कोई उस अमृत को पीता है। जिसकी बात सराह कह रहा है।

छट्ठवां प्रश्न: यह ठीक-ठीक क्या चीज है जो कि प्रत्यक्ष को देख पाने में मेरी दृष्टि में बाधा बन रही है? मैं बस समझ ही नहीं पाता कि क्या करूं और क्या न करूं। कब मैं मौन की ध्वनि सुनने में समर्थ हो सकूंगा?

'यह ठीक-ठीक क्या चीज है जो कि प्रत्यक्ष को देख पाने में मेरी दृष्टि में बाधा बन रही है?'

इसे देख पाने की आकांक्षा ही। प्रत्यक्ष की आकांक्षा नहीं की जा सकती। प्रत्यक्ष तो है। तुम आकांक्षा करते हो, तुम दूर चले जाते हो। तुम इसे खोजना शुरू कर देते हो, उसी क्षण में तुमने इसे दूर बना दिया, अब यह प्रत्यक्ष न रहा, अब यह समीप न रहा; तुमने इसे बहुत दूर रख दिया। प्रत्यक्ष को तुम खोज कैसे सकते हो? यदि तुम समझते हो कि यह प्रत्यक्ष है तो तुम इसे खोज कैसे सकते हो? यह तो वहां है ही। इसे खोजने की और इसकी आकांक्षा करने की आवश्यकता ही क्या है?

प्रत्यक्ष तो दिव्य है। पार्थिव ही तो अलौकिक है। और तुच्छ ही तो गूढ़ है। तुम्हारे नित्य प्रतिदिन के साधारण कृत्यों में, तुम प्रतिक्षण परमात्मा से मिल रहे होते हो क्योंकि उसके अतिरिक्त कोई है ही नहीं। तुम किसी अन्य किसी अन्य से मिल ही नहीं सकते; हजार-हजार रूपों में यह सदा परमात्मा ही है जिससे कि तुम मिलते हो। परमात्मा बहुत प्रत्यक्ष है। केवल परमात्मा ही तो है। पर तुम खोजते हो, तुम आकांक्षा करते हो... और तुम चूक जाते हो। अपनी खोज में ही तुम परमात्मा को दूर बहुत दूर कर देते हो। यह अहंकार की एक तरकीब है। इसे समझने की कोशिश करो।

अहंकार प्रत्यक्ष में उत्सुक नहीं होता क्योंकि प्रत्यक्ष के साथ अहंकार जी नहीं सकता। अहंकार समीप जरा भी उत्सुक नहीं होता। अहंकार तो उत्सुक होता है दूर में, कठीन में, बहुत दुर्लभ में। जरा सोचो; आदमी चंद्रमा पर पहुंच गया है और आदमी अपने ही हृदय तक नहीं पहुंच पाया है...दूर का रस है, अहंकार का। आदमी ने अंतरिक्ष यात्रा का आविष्कार कर लिया है, पर अभी तक आत्मा-यात्रा का विकास नहीं किया जा सका। क्योंकि वह तो तुम्हारे पास से भी पास है। वह एवरेस्ट पर पहुंच सकता है। पर अपने अस्तित्व में जाने की चिंता उसे

जरा भी नहीं है। वह पास से भी पास से लगातार चूकता जा रहा है। और दूर से दूर की खोज में जाता जा रहा है। क्यों?

अहंकार को अच्छा लगता है—यात्रा यदि कठिन हो तो अहंकार को अच्छा लगता है। कुछ साबित करने को तो है। यदि यह कठिन होती है, कुछ सिद्ध करने को तो होता है। चंद्रमा पर जाने में तो, अहंकार को अच्छा लगात है, पर अपने स्वयं के अस्तित्व में जाना कोई बड़े दावे की बात नहीं है।

एक प्राचीन कथा है:

परमात्मा ने संसार बनाया; उन दिनों वह पृथ्वी पर रहता था। तुम कल्पना कर सकते हो, उसकी बड़ी मुसीबत थी। हर कोई शिकायत करता था, हर कोई बड़े अटपटे प्रश्न किसी भी समय उसके द्वार पर आकर दस्तक दे देता। रात में भी लोग आ जाते, और वे कहते, 'ये बात तो गलत है, आप ऐसा कैसे कर सकते हो।' आज इतनी गर्मी हो रही है, आज बहुत बारिस आ गई, मेरी भैस मर गई, कल मेरी लड़की की शादी है इसलिए आज बारिस नहीं आनी चाहिए। कोई कहता मेरी तो फसल सूख रही है, आप कल बारिस जरूर करना। और परमात्मा करीब-करीब पागल होता जा रहा था। अब किस की सूने और किस की न सूने। चौबीस घंटे सिकायत ही सिकायत। अब क्या किया जाए? इतने सारे लोग इतनी सारी आकांक्षाएं, और हर कोई उससे आशा करता है कि उसकी बात सूनी जाए। उसकी आवश्यकता की पूर्ति की जाए। हर व्यक्ति की आकांक्षा एक दूसरे के विरोधि होती। किसान चाहता कि बारिस हो, कुम्हार चाहता कि वर्षा न हो, उसके वर्तन बनाए गए खराब हो जाएगे। सब नष्ट हो जाऐंगे। उसे तो कम सक कम कुछ दिन के लिए तेज धूप निकालनी चाहिए यही धोबी भी चाहते की उनके धूले कपड़े सुखते ही नहीं इस लिए बारिस तो होनी ही नहीं चाहिए। और इस तरह की हजारो विरोधाभाषी शिकायते आती रहती न उसे सोने ही दिया जाता न वह ठीक से खा ही सकता था। परमात्मा बहुत परेशान हो उठा।

तब उसने अपने सलाहाकरों को इकट्ठा किया और उनसे पूछा कि मैं अब क्या करूं, 'मेरी जान की तो अजीब मुसिबत हो गई है—ये लोग तो मुझे पागल ही किए जा रहे है। और सब को मैं संतुष्ट कैसे कर सकता हूं, सब एक दूसरे के विराधाभाषी है। किसी के लिए ठीक है तो दूसरे के लिए वही गलत। अजीब मुसिबत में फंस गया हूं। मुझे तो ऐसा लगात है इसी तरह से चलता रहा तो ये लोग एक दिन मेरी हत्या कर देंगे। मैं कोई जगह चाहता हूं जहां मैं चेन से विश्राम से रह सकूं क्या आप लोगो में से कोई मुझे ऐसी जगह बता सकता है।'

और उन्होंने बहुत सी जगहों के नाम लिए, सुझाव दिए। किसी ने कहा, यह कोई समस्या नहीं है, आप एवरेस्ट पर चले जाओ, क्योंकि हिमालय बहुत ही ऊँचा है और दूर्गम भी वहां कोई नहीं जा सकता है।'

परमात्मा ने कहा, 'तुम नहीं जानते, बस कुछ ही क्षणों के बाद—परमात्मा के लिए तो यह कुछ ही क्षण थे—एडमंड हिलैरी व तेनसिह वहां पहुचने वाले हैं।' और फिर वही समस्या पैदा हो जाने वाली है। और एक बार वह जान गए की मैं कहां पर हूं तो वह हेलीकॉप्टरों से भी यहां पहूंच सकते है। बसों से आना शुरू हो जाएगे रेल मार्ग विछा देंगे। इससे काम नहीं चलेगा। इससे समस्या कुछ क्षणों के लिए तो दूर हो जाऐगी। परंतु सदा के लिए नहीं। तुम कोई और उपाय बताओं। हर प्राणी के समय की गति अलग है, सापेक्षवाद की थ्योरी की तरह। चिंटी का समय ओर कुत्ते का समय या मनुष्य का समय या मनुष्य में भी प्रत्येक का अंतस का समय भिन्न है इसी तरह हम हिन्दुओं के अनुसार हमारा एक वर्ष और परमात्मा का एक दिन बराबर है। इसलिए परमत्मा यहा एक क्षण की बात कर रहे है।

फिर किसी ने सुझाव दिया, 'क्यों न आप चांद पर चले जाएं?' परमात्मा ने कहा, वहां भी आदमी अब पहूंचने वाला है, तब किसी ने दूर सितारों का सुझाव दिया, तब परमात्मा ने कहां बात वहीं के वहीं है। यह

स्थाई हल नहीं है, यह तो एक तरह का स्थगन है। मैं तो कोई स्थाई हल चाहता हूं। तब परमात्मा एक बहुत पुराने सेवक ने खड़े होकर वह परमात्मा के पास गया और उनके कान में एक सुझाव डाला। परमात्मा के चेहरे पर एकदम मुसकुराहट छा गई और उन्होंने कहा तुम एक दम ठीक कहते हो। आपके इस सुझाव से तो काम चल सकता है।,

उस बूढ़े सेवक ने कहा बस एक ही जगह है जहां आप सुरक्षित रह सकते है वह है—मनुष्य के भीतर छीप जाओं, उसके अंदर जाकर रहने लग जाओं वह सब जगह ढूंढता फिरेगा परंतु अंदर कभी नहीं जायेगा। और यही वह स्थान है जहां परमात्मा तब से अब तक छिपा हुआ है: स्वयं मनुष्य में ही। यही वह अंतिम स्थान है जहां मनुष्य कभी सोच भी नहीं सकता है।

प्रत्यक्ष चूक जाया जाता है। क्योंकि अहंकार उसमें उत्सुक नहीं होता। अहंकार तो उत्सुक होता है कठोर, कठिन में, दु:साध्य चीजों में। क्योंकि वहां चुनौती होती है। जब तुम जीतते हो, तुम दावा कर सकते हो। यदि प्रत्यक्ष ही वहां हो और तुम जीत भी जाओ। यह किस तरह की जीत हुई। तुम कोइ खास विजेता नहीं मानते।

प्रत्येक्ष लगातार चूकता जाता है। वहां अहंकार की उत्सुकता नहीं है। वह दूर दराज की खोज करता है। और जो दूर है उसे तुम खोज कैसे सकते हो। जबकि तुम प्रत्यक्ष को नहीं खोज पाते?

'यह ठीक-ठीक क्या चीज है जो कि प्रत्यक्ष को देख पाने में मेरी दृष्टि में बाधा बन रही है?'

यह आकांक्षा ही तुम्हें भटका रही है। आकांक्षा को छोड़ दो और तुम प्रत्यक्ष को देख लोगे।

'मैं बस समझ ही नहीं पाता कि क्या करूं और क्या न करूं?'

तुम्हें करना कुछ भी नहीं है। तुम्हें बस सजग हो जाना है उस सब के प्रति जो तुम्हारे चारों और घट रहा है। करना तो फिर एक अहंकार यात्रा है। करने से अहंकार को अच्छा लगता है—करने को कुछ है तो। करना अहंकार के लिए भोजन है, यह अहंकार को शक्तिशाली बनाता है। अ-कर्म और मुंह के बल घरती पर आ गिरता है। तब उसे पोषण नहीं मिल पाता।

इसलिए बस अ-कर्ता बन जाओ। जहां तक ईश्वर का, सत्य का और इसकी खोज का संबंध है। कुछ भी मत करो। अव्वल तो यह कोई खोज है ही नहीं, इसलिए तुम इस विषय में कुछ कर ही नहीं सकते। तुम बस हो जाओ। मुझे इसे दूसरे ढंग से कहने दो: यदि तुम होने की अवस्था में होते हो, परमात्मा तुम तक आता है। मनुष्य कभी परमात्मा को नहीं पा सकता। परमात्मा ही मनुष्य को पाता है। बस एक मौन अवकाश में हो रहो, कुछ करना नहीं, कहीं जाना नहीं, कोई स्वप्न नहीं—और उस मौन अवकाश में अचानक तुम पाओगे कि वह (परमात्मा) वहां है। वह सदा वहां रहा है। बस तुम मौन न थे इसलिए तुम उसे देख न सके। तुम उसकी शांत, धीमी आवाज सुन न सके।

'कब मैं मौन की ध्वनि सुनने में समर्थ हो सकूंगां?'

कब?—तुम गलत प्रश्न पूछते हो। अभी या कभी नहीं। इसे सुनो अभी। क्योंकि यह यहां है, संगीत चालू है, संगीत हर तरफ है। बस तुम्हें मौन होने की जरूरत है ताकि तुम इसे सुन सको। मगर 'कब' कभी मत कहो; 'कब' का अर्थ है तुम भविष्य को बीच में ले आए, कब का अर्थ है तुम आशा करना शुरू कर चूके, तुम स्वप्न देखने लग गए हो। कब तो भविष्य में है, वह तो अभी नहीं कहा रहा है। और यह सदा अभी यहीं होता है। इसी क्षण में। तब कैसे मिल हो सकता है। परमात्मा के लिए केवल एक ही समय है: अभी, और केवल एक ही स्थान है, यहां। 'वहां', न ही 'तब'—इन्हें छोड़ दो।

और अंतिम प्रश्न: ओशो, क्या आपको कभी शब्दो की कमतरी का अहसास होता है?

प्रश्न ऋषी का है। जब कभी भी मैं कोई भी शब्द उच्चारित करता हूं, मुझे सदा कमी का अहसास होता है—क्योंकि मैं कहना चाहता हूं उसे कहा नहीं जिसे शब्दों में कहा नहीं जा सकता। और जो संप्रेषित किया जाना है उसे संप्रेषित नहीं किया जा सकता। तो तुम स्वभावत: पूछोगे कि फिर मैं क्यों बोले चले जाता हूं?

मैं कठिन चेष्टा कर रहा हूं। हो सकता है आज मैं असफल रहा हूं...कल। कल मैं असफल हुआ, हो सकता है आज। मैं अलग-अलग ढंगों से बोले चला जाता हूं, हो सकता है इस ढंग से बोलने पर तुमने न सुना हो; हो सकता है किसी और ढंग से बोलने पर यह तुम्हारे अधिक समीप हो। इस ढंग से किसी और न तो सुन लिया है; तुमने नहीं सुना है। किसी और ढंग से शायद तुम इसे सुन सको।

परंतु कमी मुझे सदा महसूस होती है। शब्द सरलता से नहीं आते—क्योंकि संदेश नि:शब्द है। मैं कोई पुरोहित नहीं हूं, मैं तुम्हें कोई मत देने की चेष्टा नहीं कर रहा हूं। मैं कोई सिद्धांत तुम्हें समझाने की चेष्टा नहीं कर रहा हूं। मुझे कुछ हुआ है, मुझमें कुछ घटा है—मैं उसे संप्रेषित करने की चेष्टा कर रहा हूं। मैं तुम्हारे साथ सलाप करने का प्रयास कर रहा हूं।

शब्द बडे अटपटे हैं। वे बड़े लधु बड़े छोटे हैं। उनमें वह नहीं समा पाता जो मैं चाहता हूं कि उन में समा जाए। इसलिए हर क्षण मैं किंकर्तव्य विमूढ होता हूं। जिन लोगों को कभी अनुभव नहीं हुआ होता वे कभी किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होते; किसी भी शब्द से काम चल जाएगा।

मैंने एक सुंदर कहानी सुनी है: इसके ऊपर ध्यान करो,

किसी इलाके का पादरी अपने विशप से बातचीत कर रहा था, और वार्तालाप के दौरान उसने कहा, 'आप के लिए तो, श्रीमान यह ठीक है कि आप जब कोई प्रवचन तैयार करते हैं, आप इसे बिशेष-प्रदेश के कई चर्चों में दे सकते हैं, पर मुझ तो प्रत्येक रविवार को दो नए प्रवचन तैयार करने होते है।'

बिशप ने कहा, तुम्हें भी मेरी ही तरह किसी भी विषय पर एक क्षण के नोटिस पर प्रवचन दे सकते में सक्ष्म होना चाहिए।'

'मैं आपको इस बात पर चुनोती देता हूं, पादरी ने कहा।' आप अगले रविवार मेरे चर्च में आईए और मैं आपकी परीक्षा लूंगा।'

बिशप आने के लिए सहमत हो गया और समय पर व्याख्यान मंच पर पहुंचा जहां वेदी पर एक कार्ड रखा था जिस पर एक ही शब्द लिखा था 'कब्ज'—यही है आज के प्रवचन का विषय। बिना संकोच, उसने बोलना प्रारंभ कर दिया: और मोजेत ने दो गोलिया ली और पहाड़ी की और चले गए।'

पादरी कभी किकर्तव्यविमूढ नहीं होता। उसके पास इतने सारे धर्म ग्रंथ उपलब्ध होते है। वह सदा अपनी स्मृति से कुछ ढूंढ ही लाते है। मैं सदा किकर्तव्यविमूढ होता रहता हूं—क्योंकि जो मैं तुमसे कहना चाहता हूं वह कोई विषय नहीं है, वह मेरी आत्म चेतनता है। जो मैं तुमसे कहना चाहता हूं वह मेरा हृदय है। वह मेरा मन नहीं है। दुर्भाग्य तो यह है कि उपयोग मुझे मन का करना होता है क्योंकि और कोई उपाय नहीं है। हृदय को संप्रेषित करने के लिए भी व्यक्ति को उपयोग तो मन का ही करना होता है। यही उसकी सबसे बड़ी विसंगति है। यह बड़ी अतर्क्य बात है। यह असंभव की चेष्टा करना है। पर इसके अतिरिक्त कोई और उपाय दिखता ही नहीं। सब बुद्ध असहाय होते है।

लेकिन यदि तुम पूछो: क्या मैं कभी शब्दों के लिए किकर्तव्यविमूढ होता हू? हां, मैं सदा होता हूं। प्रत्येक शब्द और मैं हिचकिचाता हूं: क्या इससे काम चल जाएगा? इससे कैासे काम चलेगा? यह जानते हुए भी कि इससे सहायता न मिलेगी, मैं इसका उपयोग किए चला जा रहा हूं। यह एक आवश्यक बुराई है। मौन बेहतर होता, कहीं ज्यादा बेहतर होता, पर जब मैं तुम्हारी और देखता हूं मैं हिचकितचाता हूं। यदि मैं मौन हो जाऊं,

तुम्हारे लिए मेरे समीप आना और भी कठिन हो जाएगा। तुम शब्द ही नहीं समझ पाते, मौन तो तुम कैसे समझ सकोगे? और यदि मौन को तुम समझ सको, तुम उस मौन को मेरे शब्दों में भी सुन सकोगे।

यदि मैं मौन हो जाऊं, तुममें से ज्यादा से ज्यादा पांच प्रतिशत मेरे पास रूकोगे। वे पांच प्रतिशत शब्दों से भी समझ सकते हैं। क्योंकि वे मेरे मौन को सुन रहे होते हैं। मेरे शब्दों को नहीं। इसलिए उन पांच प्रतिशत के लिए तो कोई समस्या नहीं है। लेकिन बाकी पीच्चनवे प्रतिशत जो न तो शब्दों को समझ सकते हैं और न ही उन शब्दों में छिपे मौन को ही समझ पाते है। वे बस किंकर्तव्यमूढ रह जायेगे। मैं उनकी जरा सी भी सहायता न कर पाऊंगा। मेरे शब्दों के कारण कम से कम वे मेरे आसपास डोलते तो रहते है।

उस आस पास डोलते रहने में ही यह संभावना तो है कि किसी असुरक्षित क्षण में उनका मुझसे संपर्क बन सकता है, कोई असुरक्षित क्षण और अपने बावजूद वे मेरे समीप आ जा सकते है। वे मुझसे टकरा सकते है। कोई अ-सुरक्षित क्षण, और मैं उनके हृदय मैं पैठ लगा सकता हूं। कुछ मंथन हो सकता है। यह एक संभावना मात्र है। पर फिर भी करते जाने योग्य है।

उन पांच प्रतिशत की सहायता तो दोनों ही ढंग से हो सकती है। परंतु इस पीच्चानवे प्रतिशत की सहायता मौन द्वारा नही की जा सकती। और वह पांच प्रतिशत भी यदि में शुरू में ही एक दम मौन रहा होता तो, यह भी नहीं हुआ होता। वह पांच प्रतिशत मार्ग दिखाता है ताकि पीच्चानवे प्रतिशत मार्ग धीरे-धीरे हो सकेगा नब्बे प्रतिशत, पीच्चासी प्रतिशत, अस्सीप्रतिशत....।

जिस क्षण मैं यह महसूस करुं कि हम से कम पचास प्रतिशत लोग मौन को समझ सकते हैं, तब शब्दों को छोड़ा जा सकता है। उनके (शब्दों के) बारे में मैं बहुत प्रसन्न नहीं हूं। कोई भी कभी न था: न लाओत्सु, न सराह, न बुद्ध, न महावीर..कोई भी कभी भी नहीं था। परंतु शब्दों का उपयोग करना उन सभी को पड़ा ही। इसलिए नहीं की उसे मौन में संलिप्त नहीं किया जा सकता था। मौन संलाप हो सकता है1 पर उसके लिए एक बड़ी उच्च कोटि की चेतना की आवश्यकता होती है।

एक बार ऐसा हुआ:

भारत के दो महान रहस्यदर्शी कबीर और फरीद एक बार मिले और दो दिन तक पास-पास मौन बैठे रहे। शिष्यों को तो बड़ी निराशा हुई: वे तो चाहते थे कि दोनों बोले ताकि वे (शिष्य) कुछ मूल्यवान बातें सुन सकें। वे आशा कर रहे थे, महीनों से वे आशा करते होते थे, कि कबीर और फरीद मिलेंगे और बड़ी बारिश होगी। और वे इसका आनंद उठाऐगे। परंतु वे दोनों तो बस मौन ही बैठे रहे। और शिष्य ऊब गए। जम्हाईया लेने लगे। और बेचारे क्या करते? और इन दोनों आदमियों को हो क्या गया था?—क्योंकि पहले तो वे कभी मौन न थे। न तो कबीर कभी अपने शिष्यों के साथ मौन होते थे, और न ही फरीद अपने शिष्यों के साथ कभी पहले मौन रहे थे। 'क्यों?' क्या हो गया था? क्या ये दोनों गूंगे हो गए थे? पर वे कुछ कह तो सकते थे, यह उचित न होता।

दो दिन बाद जब कबीर और फरीद ने एक दूसरे को गले लगाया और अलविदा कहा—वह भी मौन में ही —और जब शिष्य अपने-अपने गुरूओं के साथ अकेले रह गए तो उन पर टूट पड़े। और कबीर के शिष्यों ने कहा, 'क्या कुछ गड़बडी हो गई थी?' हम तो महीनों से प्रतीक्षा कर रहे थे की आप दोनो मिलेगे तो अमृत की वर्षा होगी। और आप है कि एक शब्द भी नहीं बोले। और हम प्रतीक्षा करते-करते थक गए। दो दिन कितने भारी हो गए थे। हमारे लिए उस का आप अंदाज नहीं कर सकते।'

तब कबीर हंसे: 'अमृत को बरस रहा था, परंतु तुम उसे नहीं पी सके, वह शब्दों के पास का था, जो तुम्हारी पकड़ के बहार है। वहीं तो पहली बार अमृत झरा, जिसकी जन्मों जन्मों प्यास होती है, पीने वाला भी परमात्मा ओर पिलाने वाला भी परमात्मा।' परंतु शिष्य तो केवल शब्द ही पकड़ सकते थे उसके अंदर के मौन

को भी नहीं फिर उस मौन अमृत को कैसे महसूस कर सकते थे। जहां शब्द भी नहीं थे। कौन शब्दों में उसकी महीमा गाता, वहीं तो मूखों मैं तुम्हारे साथ सालों से कर रहा हूं, उस अमृत बेला में इस कुरूप भाषा को कोई क्यों बीच में लाता। जब सब कुछ निशब्द में बहाया जा सकता है, लूटाया जा सकता है तब इन शब्दों की कौन परवाह करे। माफ करो। मुझे ये शब्द तो केवल तुम्हारे लिए है। शायद तुम भी कल इस काबिल हो सको जिसे शब्दों के बिना कहा जा सके तब मैं पूर्ण सफल हो जाऊंगा।

और फरिद के शिष्यों ने भी फरीद से पूछा की आप बोले क्यों नहीं: 'फरीद ने कहा, क्या तुम मुझे पागल समझते हो, जो तुम्हें शब्दों में कह रहा था उसे कबीर के सामने कह कर अपनी हंसी उडवाता...तब कितनी फजीहत होती आप उसे नहीं सकते।'

बोलना एक मजबुरी है, वह भी तुम्हारे सामने।वर्ना तो कौन बोलना चाहता है। ...हम ठीक एक ही जगह पर हैं इसलिए कुछ संप्रेषित करने को है ही नहीं। कुछ कहने को है ही नहीं। जिस क्षण मैंने उनकी आंखों मे झांका और उन्होंने मेरी आंखों में झांका, हमने एक दूसरे को पहचान लिया।

अंतस की वर्तालापउसी एक क्षण में घट गई। कहने के लिए शब्दो की कोई भी आवश्कता नहीं थी, सच कितना आंनद बरसा उन दो दिनों जीवन की अनमोल क्षण थे। बड़े भाग्य से मिलते है, जहां दो मौन एक साथ बैठे हो तुम्हारा बहुत-बहुत आभार जो तुमने उस क्षण के लिए हमें मिला दिया। वो क्षण बड़ा हीअनमोल था। हम दो नहीं थे एक थे, घट मिट गया था। वहां तो केवल आकाश बचा था। अब न वहां शब्द थे न वहां कोई था फिर बात क्या होती। हम वहां केवल अतिथि थे, हमने एक दूसरे को आच्छादित किया, हमने एक दूसरे को अतिप्लावन किया। हम एक दूसरे में विलय हो गए। मौन में खो गए। जब मौन बोलता हो तब शब्द नहीं बालते न ही उनकी जरूरत होती है।

मैं सच में शब्दों के लिए हमेशा किकर्तव्यविमुढ हो जाता हूं, हर शब्द को बड़ी ही हिचकिचाहट के साथ बोलता हूं, यह भली भांति जानते हुए कि इससे काम न चल सकेगा। यह पर्याप्त न होगा। कोई भी चीज कभी भी पर्याप्त नहीं हो पाती—सत्य इतना विशाल है और शब्द इतने छोटे।

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

सत्य न पवित्र है न अपवित्र

(दिनांक 27 अप्रैल 1977 ओशो आश्रम पूना।)

सूत्र:

यह है प्रारंभ में, मध्य में, और अंत में
फिर भी अंत व प्रारंभ हैं नहीं और कहीं
जिनके मन भ्रमित हैं, व्याख्यात्मक विचारों से
वह सब हैं दुविधा में, इसीलिए
शून्य और करूणा को वे दो समझते है।
मधु-मक्खियां जानती है, मधु मिलेगा फूलों में
कि नहीं हैं दो, संसार और निर्वाण
भ्रमित लोग समझेंगे पर कैसे यह
भ्रमित कोई जब झांकते हैं किसी दर्पण में
प्रतिविम्ब नहीं, देखते हैं, वे एक चेहरा
वैसे ही जिस मन ने सत्य को नकारा हो
भरोसा वह करता है उस पर जो नहीं है सत्य
यद्यपि छू सकता नहीं कोई सुगंध फूलों की
है यह सर्वव्यापी और एकदम अनुभवगम्य
वैसे ही अनाकृत मन स्वतः
पहचान जाते हैं रहस्यपूर्ण वृतों की गोलाई को

सत्य है। यह बस है। यह मात्र है। यह न कभी अस्तित्व में आता है, न कभी अस्तित्व में आता है और न ही कभी अस्तित्व से जाता है। बस यह यहा है, न कभी आता है न कभी जाता है। यह सदा शेष ही रहता है। सच तो यह है कि जो शेष रहता है उसी को हम सत्य कहते हैं। यह पूर्ण से पूर्ण को निकालने पर पूर्ण ही बचता है। सत्य प्रारंभ में भी है, यह मध्य में भी है, यह अंत में भी है। सच तो यह है कि न कोई प्रारंभ है इसका और न ही कोई अंत। यह संपूर्ण में समाया है, हर एक जगह।

यदि गहरे में देखा जाए तो प्रारंभ भी इसमें है, मध्य भी इसमें है, और अंत भी इसी में है–यह सर्वव्यापी है। क्योंकि केवल यही तो है। यह एक ही सचाई है जो लाखों रूपों में अभिव्यक्त हो रही है। रूप भिन्न हैं, परंतु तत्व, सार वही है।

रूप तो लहरों की भांति हैं और सार समुद्र की भांति है।

स्मरण रखो, तंत्र ईश्वर की बात नहीं करता। ईश्वर की बात करना थोड़ा सा सगुणवादीय है, यह ईश्वर को मनुष्य की प्रतिमा में निर्मित करना है। यह ईश्वर को मानवीय ढंग से सोचना है–यह तो एक सीमा निर्मित करना हुआ। ईश्वर को मनुष्यों की भांति होना चाहिए, यह बात तो सच है–पर उसे घोड़ों की भांति भी तो होना चाहिए, उसे कुत्तों की भांति भी होना चाहिए, उसे चट्टानों की भांति भी तो होना चाहिए, और उसे चांद तारों

की भांति भी तो होना चाहिए...उसे तो सबकी ही भांति होना चाहिए। हां, माना एक रूप की भांति मनुष्य को उसमें सम्मिलित किया जा सकता है। परंतु वह एक मात्र रूप हो परमात्मा का हो, बात कुछ जंचती नहीं।

तुम ईश्वर को एक घोड़े की तरह से सोचो–यह कितना अर्थ हीन जान पड़ता है। ईश्वर की कल्पना एक कुत्ते की तरह से करो–कितना अपवित्र सा महसूस होता है। परंतु जरा हमें देखों हम ईश्वर की कल्पना एक मनुष्य के रूप में किए ही चले जाते है–क्यों? इसमें हमें जरा भी अपवित्रता नहीं मालुम होती। परंतु ऐसा कभी सोचा है आपने ये मनुष्य का अहंकार है, आदमी अपने को परमात्म से कम नहीं समझता। वह अपने को ईश्वर का ही छोटा सा रूप मानता है, वह यह मान ही बैठ है कि ईश्वर इसी प्रकार को होगा, उसके भी ऐसी ही नाक होगी, आंखें होगी, इसलिए वह जहां भी ईश्वर की प्रतिमा बनाता है केवल अपने जैसी। बाइबिल में यह कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्य को अपने जैसा ही बनाया है, उसने स्वयं की प्रतिमा ही निर्मित की है। निश्चय ही यह बात भी मनुष्य ने ही लिखी होगी। यदि घोड़े अगर अपनी बाइबिल लिखते तो वह यह न लिखते कभी भी। वह तो लिखते कि ईश्वर ने शैतान की प्रतिमा में मनुष्य को बनाया है। क्योंकि ईश्वर-ईश्वर कैसे मनुष्य को अपनी स्वयं की प्रतिमूर्ति में बना सकता है? और मनुष्य घोड़ों के प्रति इतना निर्दयी रहा है, कि घोड़े को तो मनुष्य में ईश्वर जैसी कोई बात नहीं ही जान पड़ती। चाहों तो तुम किसी घोड़े से पूछ सकते हो। हो सकता है, शैतान या हो सकता है बीलजेबब का एक प्रतिनिधि, परंतु ईश्वर तो कदापि ही नहीं।

तंत्र समस्त सगुणवाद को एकदम छोड़ देता है। तंत्र प्रत्येक को अपने सही अनुपात में देखता है, जिसकी जगह जहां है, मनुष्य को उसकी सही जगह पर रखता है। तंत्र एक महान दृष्टि है। यह मनुष्य पर केंद्रित नहीं है। यह किसी पक्षपातपूर्ण भाव पर केंद्रित नहीं है। यह प्रत्येक तथ्य को उसकी सच्चाई की तरह से देखता है, जैसी की वह है, मात्र उसके होने को देखता है। उसके तथाता में, उसकी पूर्णता में, वह कोई ईश्वर की बात नहीं करता। ईश्वर की जगह वह सत्य की बात करता है।

सत्य अ-वैयक्तित है, अव्यक्तिवाचक है। सत्य में सभी के गुण हो सकते हैं, इसकी कोई सीमा नहीं है। बाइबिल कहती है: प्रारंभ में ईश्वर न जगत की सृष्टि की। तंत्र कहता है: कोई प्रारंभ कैसे हो सकता है? और कोई अंत भी कैसे हो सकता है। और जब न कोई प्रारंभ है, और न कोई अंत, तो मध्य भी कैसे होगा। यह तो सब शाश्वतता है, यह समय नहीं है। तंत्र समयातित की एक दृष्टि है। समय में तो एक प्रारंभ भी है, एक मध्य भी है, और एक अंत भी है, परंतु शाश्वता में न तो कोई प्रारंभ है, न मध्य है, और न कोई अंत ही है। यह तो बस है।

सत्य समय का हिस्सा (सामयिक)नहीं है। सच बात तो यह है कि समय सत्य में रहता है। एक लहर की भांति, और आकाश भी सत्य में रहता है एक लहर की ही भांति। इसका विपरीत सच नहीं है। सत्य आकाश में नहीं है, न ही सत्य समय में है। समय और आकाश दोनों ही सम्य में है। वे सत्य के ही प्रकार हैं। जैसे घोड़ा एक रूप है, मनुष्य एक रूप है, वैसे ही आकाश भी एक रूप है, एक बड़ी लहर, वैसे ही समय भी सत्य का एक रूप है।

सत्य तो समयातितता है। सत्य आकाशतितता है। सत्य अतीतता है।

सत्य का अस्तित्व उसके स्वयं में है। बाकी हर चीज का अस्तित्व सत्य के सहयोग से है। सत्य स्वयं-सिद्ध है, बाकी कुछ भी स्वयं-सिद्ध नहीं है। सत्य अस्तित्व का आधार है। अस्तित्व का परम आश्रय है।

तंत्र कोई कर्म कांड निर्मित नहीं करता, कोई पूजा-पाठ निर्मित नहीं करता, कोई मंदिर निर्मित नहीं करता, कोई पुरोहितवाद निर्मित नहीं करता–इस सबकी आवश्यता नहीं है। किसी पुरोहित की आवश्यकता नहीं है। पुरोहित सत्य, और ईश्वर, और स्वर्ग, न जाने हजार चीजों को निर्मित कर लेता है, उनके बारे में

बोलता चला जाता है, बिना जरा सा भी जाने कि वे क्यों बोल रहा है। शब्द, कोरे शब्द। उन्होंने कुछ अनुभव नहीं किया है। वे शब्द एकदम रिक्त हैं। एक दम से खाली बिना जानें एक तोता रटन बस और कुछ भी नहीं।

मैं एक बहुत प्रसिद्ध पादरी के विषय में पढ़ रहा था जिसकी तबीयत कुछ दिनों से ठीक नहीं चल रही थी।

उसने अपने चिकित्सक को बुलवाया जिसने उसकी अच्छी तरह से जांच की। और कहा: 'देखो मैं तुमसे स्पष्ट बात कहूंगा, मुझे भय है कि तुम्हारे फेफड़े सही हालत में नहीं है। तुम्हें कुछ महीने स्वीजरलैंड़ में बिताने चाहिए।'

यह कैसे संभव है, डॉक्टर साहब। यह तो असंभव है, मेरे पास इतना धन कहां है? आप तो जानते हैं कि मैं एक गरीब आदमी हूं', पादरी ने उतर दिया।

यह तो अब तुम्हारे ऊपर है, डॉक्टर ने कहा। या तो स्वीट्जरलैंड या फिर स्वर्ग।'

पादरी ने थोड़ी देर सोचा और फिर कहा: 'ठीक है, तो फिर स्वीट्जरलैंड ही सही।'

स्वर्ग कौन जाना चाहता है? –वह पादरी भी नहीं जो निरंतर उसके विषय में बातचीत करता है। यह एक तरकीब है मृत्यु को सुंदर रंगो में रंगने की, पर पूरे समय तुम जानते तो रहते हो कि यह मृत्यु है। तुम स्वयं को कैसे मूर्ख बना सकते हो?

गुर्जिएफ कहा करता था कि यदि तुम धर्म से छुटकारा पाना चाहते हो, तो किसी पुरोहित के समीप कुछ दिन रहो और तुम धर्म से छुटकारा पा लोगे। शायद साधारण व्यक्ति धोखा खा भी जाए पर पुरोहित कैसे धोखा खा सकता है? वह स्वयं ही तो सारा धोखा निर्मित कर रहा है। कोई पुरोहित कभी धोखा नहीं खाता। वे बात किसी और चीज की करते हैं, वे जानते कुछ और हैं दिखाते कुछ और है। उनकी करनी और कथनी भिन्न होती है।

मैं एक रबाई के बारे में पढ़ रहा था:

एक यहूदी नौजवान अपने रबाई के पास आया। 'रबाई, क्या एक महत्वपूर्ण मामले पर मैं आपकी सलाह ल सकता हूं?'

'निश्चित ही,' उतर मिला।

'बात कुछ यूं है, मैं दो लड़कियों के प्रेम में हूं...यानि कि मैं सोचता हूं कि मैं उनके प्रेम में हूं। अब एक तो बहुत सुंदर है, परंतु है वह निर्धन, जबकि दूसरी अच्छी तो है पर बहुत सरल है, यद्यपि उसके पास बहुत सा धन है। ऐसी हालत में आप क्या करेंगे? यदि मेरी जगह आप होते, रबाई, तो आप क्या करते?'

'देखो,' रबाई ने कहा, 'मुझे विश्वास है कि अपने हृदय से तो तुम उस सुंदर स्त्री से ही प्रेम करते हो, इसलिए यदि तुम्हारी जगह मैं होता तो तुरंत जाता और उसी सुंदर स्त्री से विवाह कर लेता।'

'ठीक है,' उस नौजवन ने कहा: 'धन्यवाद, रबाई। मैं यही करूंगा।'

जैसे ही वह लड़का जाने लगा, रबाई ने कहा, 'सुनो, क्या तुम मुझे उस दूसरी लड़की का पता दे सकते हो?'

तुम्हारे पादरी, रबाई, पुरोहित, मोलवी–वे सब भली-भांति जानते है, कि वे जो भी बातें कर रहे है, वह केवल बाच-चीत है, कोरी बकवास है। यह दूसरों के लिए है–इसका मतलब केवल औरों से है।

तंत्र कोई पुरोहितवाद निर्मित नहीं करता। जब परोहितवाद नहीं होता, तब ही धर्म शुद्ध होता है। पुरोहित को ले आओ और वह इसे विषैला बना कर रख देगा। पुरोहित का काम ही है लोगों को भ्रम जाल में फंसे रखना। इसी में उनका स्वार्थ है, यहीं तो उनके धंधे की कला है।

एक व्यक्ति एक शराबघर में घुसा और अभी उसने पीनी ही शुरू की थी कि उसने एक अन्य शराबी को जो किसी तरह स्वयं को खींच रहा था, लहराते हुए शराबघर से बाहर जाते देखा। और तभी अचानक वह शराबी, जो अभी-अभी बाहर निकला था, इस तरह की मुद्राएं बनाने लगा मानों कि वह कोई कार चला रहा हो। और उसने कार के इंजन और हार्न बजाने की आवाजें भी निकालनी शुरू कर दी।

नवागंतुक तो हैरान रह गया। उसने शराबघर के मालिक से कहा, 'तुम इस गरीब को बताते क्यों नहीं की वह क्या कर रहा है?'

और शराबघर के मालिक ने कहा, 'वह हमेशा ऐसे ही करता है। जब भी वह ज्यादा शराब पी लेता है वह यही करता है। अब वह सारी रात ऐसा ही करता रहेगा। वह सारे शहर के चक्कर लगाता रहेगा, वह सोचता है कि वह एक बड़ी कार चला रहा है।'

तब नवागंतुक ने कहा, 'पर यह बात तुम उसे समझाते क्यों नहीं?'

वाह ये भी खूब रही, 'भला मैं उसे क्यों समझाऊं? वह अपनी कार की धुलाई के लिए प्रति सप्ताह मुझे एक पौंड जो देता है।'

जब किसी के भ्रम में तुम्हारा विनियोजन होता है, तब उस भ्रम को तुम नष्ट नहीं कर सकते। तुम चाहोगे कि भ्रम बना ही रहे। एक बार जब पुरोहित आ जाता है, तुम्हारे सब भ्रमों में उसका विनियोजन हो जाता है, ईश्वर के विषय में भ्रम, आत्मा के विषय में भ्रम, स्वर्ग के विषय में, नर्क के विषय में भ्रम–अब तुम्हारा बहुत कुछ दाव पर लगा है। अब वह तुम्हारे भ्रमों पर निर्भर है, वह तुम्हारे भ्रमों पर जीता है–वह तुम्हारे भ्रमों का शोषण करता है।

तंत्र एक भ्रम-निवारण है। इसने किसी पुरोहित वाद का सृजन नहीं किया है। तंत्र कहता है कि यह तो तुम्हारे और सत्य के बीच कि बात है। और तुम्हारे और सत्य के बीच में किसी भी अन्य व्यक्ति को नहीं खड़ा होना चाहिए। अपने हृदय को सत्य के प्रति खुला होने दो, सत्य तो अपने में परिपूर्ण है वह माध्यम से विक्रीत हो जाता है। केवल तुम अपने हृदय को सत्य के लिए द्वार भर दे दो। सत्य कि व्याख्या मत करो, न ही इसकी करने की आवश्यकता है। यह क्या है इसे जानने के लिए तुम पर्याप्त हो। सच तो यह है कि जितनी अधिक तुम उसकी व्याख्या करते हो, तुम उससे चुकते ही चले जाते हो। उतना ही उसके जानने की संभावना कम होती चली जाती है। सत्य प्रारंभ में है, मध्य में है, और वह पूर्ण है, हम इतना भी नहीं कह सकते कि वह अंत में है, फिर तो हम सत्य को बांध देते है, यानी सत्य न ही उसका शुरू है और न ही मध्य और न कोई अंत। सत्य गुजर नहीं रहा वह तो स्थिर है।

यही तो पहला सूत्र है सराह का, वह राजा से कहता है:

यह है प्रारंभ में, मध्य में, और अंत में

फिर भी अंत व प्रारंभ हैं नहीं और कहीं

अंत और प्रारंभ कहीं और नहीं हैं। अभी है सत्य-समय, और यहीं है सत्य का आकाश। इसी क्षण, सत्य यहां एकस्थ हो रहा है...अभी। यही क्षण प्रारंभ है, मध्य है, अंत है। अस्तित्व का प्रारंभ कब हुआ यह जानने के लिए तुम्हें अतीत में जाने की आवश्यकता नहीं है। इसी क्षण तो प्रारंभ है। अस्तित्व का अंत कब होगा यह जानने के लिए तुम्हें भविष्य में जाने की आवश्यकता नहीं है। हर क्षण हर पल इसका अंत हो रहा है! हर क्षण एक प्रारंभ है, और मध्य है, और अंत है। क्योंकि हर क्षण अस्तित्व नया है कुंवारा है, हर क्षण यह मर रहा है, और प्रत्येक क्षण पैदा भी हो रहा है। हर क्षण सब कुछ अप्रत्यक्षता की स्थिति में चला जाता है, और अगले ही पल वह प्रत्यक्षता की स्थिति में आ जाता है।

अब आधुनिक भौतिक शास्त्र इस बात को स्वीकार कर रहा है कि तंत्र की यह दृष्टि सच हो सकती है। आत्यंतिक रूप से सच हो सकती है। यह हो सकता है हर क्षण प्रत्येक वस्तु अदृश्य हो जाती हो और पुनः वह प्रकट हो जाती हो। इस के बीच का अंतराल इतना छोटा है कि हम इसे देख नहीं पाते। तंत्र कहता है कि यही कारण है कि सत्य हमेशा ताजा, एक दम निरोया अछूता रहता है, अस्तित्व हमेशा ताजा बना रहता है।

मनुष्य को छोड़ कर हर चीज अभी ताजी है, क्योंकि यह मनुष्य ही है जो स्मृति का बोझ, लिए चलता है। इसलिए देखा नहीं मनुष्य कितना अपवित्र, अस्वच्छ, कितना भारी या बोझल होता जा रहा है। वर्ना तो सारा अस्तित्व नया और ताजा है। यह न तो किसी अतीत को ढोता है और न किसी भविष्य की कल्पना ही करता है। यह तो बस यहां है। पूरी तरह से यहां! जब तुम अतीत को ढोते हो तुम्हारे अस्तित्व का एक बड़ा भाग अतीत में संलग्न हो जाता है। उस अतीत से जो अब है ही नहीं। और जब तुम भविष्य की कल्पना करते हो, तुम्हारे अस्तित्व का एक बड़ा भाग भविष्य से संलग्न हो जाता है। उस भविष्य से जो अभी आया ही नहीं है, जो अभी तक है ही नहीं। तुम बहुत ही विरल फैल जाते हो, दोनों आयाम तुम्हें खींच रहे है, तुम्हारा जीवन एक प्रखरता नहीं होता, वह बिखर जाता है, वह तनाव से भर जाता है, उसे साथ लिए चलता है।

तंत्र कहता है कि सत्य को जानने के लिए केवल एक चीज की आवश्यकता होती है: केवल प्रखरता, समग्र प्रखरता की। इस समग्र प्रखरता को कैसे निर्मित किया जाएं? अतीत को त्याग दो और भविष्य को छोड़ दो, तब तुम्हारी सारी जीवन ऊर्जा छोटे से बिंदु पर केंद्रित हो जाती है। और उस केंद्रित होने में तुम एक लपट बन जाते हो, तुम एक जीवंत अग्नि बन जाते हो। तुम वही अग्नि हो जाते हो मूसा ने पर्वत पर जिसे देखा था, और परमात्मा उस अग्नि में खड़ा था। वह अग्नि उसे जला नहीं रही थी। और वह अग्नि उस हरी झाड़ी तक को नहीं जला रही थी, झाड़ी एक दम से प्लवित थी, एक दम जीवंत ताजा लहराती हुई। मानों वह अभी अंकुरित हुई है।

सारा जीवन एक अग्नि है। यह जानने के लिए तुम्हें प्रखरता की जरूरत होती है, वर्ना तो आदमी कुनकुना ही जिए चला जाता है। तंत्र कहता है कि केवल एक ही धर्माज्ञा है: कुनकुने रह कर मत जीयो। यह जीने का ढंग नहीं है, यह तो एक प्रकार कि धीमी आत्म हत्या के जैसा है। जब तुम भोजन कर रहे हो, तुम पूर्णता से उस में डूब जाओ मात्र भोजन ही हो जाओ। तथाकथित संयमी लोगों ने तंत्र की बहुत निंदा की है। वे कहते है: ये तो बस खाओ-पीयो और मोज-मनाओ की सोच वाले लोग है। एक तरह से तो वे जो कहते हैं सच ही है, पर एक और तरह से वह गलत हैं–क्योंकि साधारण खाओ-पीयो, मोज-मस्ती मनाने वाले व्यक्ति में और तंत्र में जीने वाले मनुष्य में जमीन आसमान का अंतर है जो हमें बहार से देखने से महसूस नहीं हो सकते।

तांत्रिक कहता है: यह सत्य को जानने का ढंग है–पर जब तुम भोजन कर रहे हो, तब तुम केवल भोजन ही हो जाओ, उसके रस, गंध, स्वाद में डूब जाओ। न उस समय अतीत को बीच में लाओ न ही भविष्य को। मात्र भोजन हो आप हो, और सब को अदृश्य हो जाने दो। भोजन के प्रति प्रेम, स्नेह, और कृतज्ञता का भाव में डूबे रहो। हर ग्रास को परिपूर्णता चबाओ, उसके रस को अपने पूरे अस्तित्व के साथ घुलन मिलने दो, उसे एक रस होने दो, उसमें कहीं परमात्मा का स्वाद भरा है। अस्तित्व का स्वाद मिलेगा, क्योंकि यह तुम्हें नव जीवन दे रहा है, यह परमात्मा से ही आया है। यह अस्तित्व का ही अंग है। इसी में तुम्हें जीवन देने वाली प्राण ऊर्जा समाहित है। तुम्हारा शरीर इसी प्राण ऊर्जा से चल रहा है, यह शरीर के जीवित रहने में तुम्हारी सहायता करता है। यह मात्र एक भोजन ही नहीं है, भोजन तो एक धारक मात्र है–इसके भीतर जीवन भरा है। यदि तुम मात्र भोजन का स्वाद लेते हो और तुम इसमें अस्तित्व का स्वाद नहीं लेते, तुम एक कुनकुना जीवन ही जी रहे हो। फिर तुम इस बात को भूल ही जाओ कि एक तांत्रिक कैसे जीता है। जब तुम पानी पी रहे होते हो, प्यास ही हो जाओ।

इसमें एक प्रखरता होने दो, ताकि ठंडे पानी की प्रत्येक बूंद तुम्हें अत्यंत आनंद प्रदान करे। अपने कंठ में प्रवेश करती पानी की बूंदों से मिलने वाली उस तृप्ति का अनुभव करो, उस जल की एक-एक घूंट में परमात्मा तुम में प्रवेश कर रहा है। तुम्हारी सजगता ही तुम्हें पानी की उन बूंदों में सत्य का ही स्वाद मिलेगा। तुम्हारी तृप्ति तुम्हें आनंद विभोर कर जायेगी।

तंत्र एक साधारण अति-भोग नहीं है, यह असाधारण अति-भोग है। यह साधारण अति-संलग्नता नहीं है, क्योंकि यह स्वयं परमात्मा में अतिसंलग्नता है। परंतु तंत्र कहता है, कि ये जीवन की छोटी-छोटी चीजें ही है जिनसे कि तुम्हें पूर्ण का स्वाद मिलेगा। जीवन कुछ बड़ी चीजें है ही नहीं, हर वस्तु का एक आकार है, वह बहुत ही छोटी है। देखो छोटी सी चीज भी महान हो जाती है, यदि तुम इसमें समग्रता से, पूरी तरह से, परिपूर्णता अपनी सम्पूर्णता से प्रवेश करो।

किसी स्त्री से या पुरूष से संभोग करते समय संभोग ही हो जाओ। सब कुछ भूल जाओ। उस क्षण में वहां कुछ और न होने दो। सारे अस्तित्व को तुम्हारे संभोग में विलीन हो जाने दो। उस संभोग को प्रचंड और निर्दोष होने दो–निर्दोष इस अर्थ में कि उसे भ्रष्ट करने को कोई मन वहां न हो। इसके विषय में चिर मत करो! इसके विषय में कल्पना मत करो! क्योंकि वे सब विचार और कल्पना तुम्हें विरल बनाते हैं, विरल रखते है। सब सोच विचार को अदृश्य रहने दो। कृत्य को पूर्ण होने दो। तुम बस कृत्य में रहो–खोए हुए, संलग्न, मगन–और तब, संभोग से भी तुम परमात्मा को जान लोगे, तुम समाधि को प्राप्त हो जाओगे।

तंत्र कहता है इसे पीने के द्वारा जाना जा सकता है, इसे भोजन के द्वारा जाना जा सकता है, इसे संभोग के द्वारा जाना सकता है। ऐसे ही हजार मार्ग है तुम्हारे दैनिक जीवन में जहां तुम अपने केंद्र तक पहुंच सकते हो। इस हर जगह, हर काने से, हर कोण से जाना जा सकता है–क्योंकि सब कोण उसी के है। यह सब कुछ सत्य ही है जो हमारे चारों और फैला है।

और यह मत सोचना कि तुम भाग्यहीन हो कि प्रारंभ में जब कि परमात्मा ने सृष्टि की रचना की, तब तुम नहीं थे। वह इसे ठीक अभी भी रच रहा है! तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम यहां हो। तुम इसी क्षण सृष्टि रचाते उसे देख सकते हो। और मत सोचना की जब एक धमाके के साथ सृष्टि अदृश्य होगी तब तुम उसे चूक जाओगे–यह इसी क्षण अदृश्य होती है। हर क्षण यह पैदा होती है, हर क्षण यह अदृश्य होती है। हर क्षण यह पैदा होती है, हर क्षण यह मरती है, इसलिए तंत्र कहता है कि तुम अपने जीवन को भी ऐसा ही होने दो–हर क्षण अतीत के प्रति मरना, हर पल पुनः नया निर्मित होना। तुम भार मत ढोओ, खाली रहो।

फिर भी अंत और प्रारंभ हैं नहीं और कहीं वे यहां–अभी है।

जिनके मन भ्रमित हैं, व्याख्यात्मक विचारों से

वह सब हैं दुविधा में, इसीलिए

शून्य और करुणा को वे दो समझते है।

अब सत्य के इस अनुभव को, जो है उसके इस अस्तित्व-गत अनुभव को, तथाता के अनुभव को वर्णन करने के दो ढंग हैं। इसका वर्णन करने के दो तरीके हैं, क्योंकि हमारे पास दो तरह के शब्द हैं: सकारात्मक और नकारात्मक। सराह का जोर नकारात्मक पर है, क्योंकि बुद्ध का जोर उसी पर था।

बुद्ध ने नकारात्मक को बहुत पसंद किया जिसका एक विशेष कारण था। जब तुम अस्तित्व का वर्णन एक सकारात्मक शब्द से करते हो, वह सकारात्मक शब्द इसे एक विशिष्ट सीमा दे देता है। सब सकारात्मक शब्दों की एक सीमा होती है। नकारात्मक शब्दों की सीमाएं नहीं होती, नकार असीम है। उदाहरण के लिए, यदि तुम अस्तित्व को समस्त, ईश्वर, पूर्ण कहते हो, तब तुम इसे एक विशिष्ट सीमा दे रहे हो। जिस क्षण तुम इसे पूर्ण

कहते हो, यह भाव उठता है कि बात समाप्त हुई, कि अब यह कोई चलती रहने वाली प्रक्रिया नहीं है। तुम इसे 'ब्रह्म' कहा, तब ऐसा लगता है कि जैसे पूर्णता आ गई हो, अब इसमें और अधिक कुछ नहीं है। जब तुम इसे ईश्वर कह देते हो, तुम इसे एक परिभाषा दे देते हो...और अस्तित्व इतना विशाल है, इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता, यह इतना विशाल है कि सब सकारात्मक शब्द छोटे पड़ जाते हैं।

इसलिए भगवान बुद्ध ने नकारात्मक को चुना। वह इसे शून्य कहते हैं—ना कुछपन। बस तुम इसका स्वाद लो, इसे इधर-उधर घूमाओ: तुम इसमें कोई सीमा नहीं पा सकते–नाकुछपन। यह असीम है। ईश्वर? तुरंत सीमा आ जाती है। जिस क्षण तुम 'ईश्वर' कहते हो, अस्तित्व थोड़ा सा छोटा हो जाता है। जिस क्षण तुम शून्य कहते हो, तमाम सीमाएं अदृश्य हो जाती हैं।

इसी कारण बुद्ध का जोर नकारात्मक पर है, परंतु स्मरण केवल ना कुछ नहीं है। जब बुद्ध नकारत्मकता की बात करते है, उनका तात्पर्य है, 'शून्य' यह भी पूर्ण होता है आपने में। कुछ बातें अस्तित्व को परिभाषित नहीं कर सकती क्योंकि सभी कुछ तो इस में समाहित है। यह सम्पूर्ण आयाम के साथ है, सब अंगों को साथ-साथ रख देने पर उनसे भी बड़ा है। अब यह बात-तंत्र की एक दृष्टि ही समझ सकती है। अब इसे थोड़ा समझो...तुम एक गुलाब के फूल को देखते हो। तुम रसायन-शास्त्री के पास जा सकते हो; वह फूल का विश्लेषण कर सकता है, और तुम्हें बता देगा कि किन-किन चीजों के मिलने से फूल बना है, कौन-कौन पदार्थ, किस-किस रसायन, किन्ह-किन्ह रंगो से–यह फूल बना है। वह हर बात का विच्छेदन कर उसे तोड़ कर उस की व्याख्या कर सकता है। परंतु यदि तुम उससे पूछो: 'इसका सौंदर्य कहां है?' वह केवल अपने कंधे उचका देगा। वह कहेगा, 'मुझे तो इसमें कोई सौंदर्य नहीं मिला। मुझे तो इस में केवल यही तत्व मिले है। इतने-रंग, इतने-पदार्थ, इतने रसायन। बस यही सब इसमें था। और ऐसा भी नहीं है कि कुछ मैंने छोड़ा है, कुछ भी पीछे छूटा नहीं है। आप तौल सकते है, इन सब का कुल इतना ही वजन है, जितना कि इस फूल का। इसलिए कुछ छूटा भी नहीं है।' तब शायद तुमने धोखा खाया हो, वह सौंदर्य शायद तुम्हारी प्रक्षेपण रहा हो।

तंत्र कहता है कि सौंदर्य है–लेकिन सौंदर्य सभी हिस्सों को साथ रख देने से कहीं अधिक है। समस्त अंगों के योग से अधिक है। यह तंत्र की एक सुंदर दृष्टि है। बहुत ही कीमती, बड़ी महत्वपूर्ण। सौंदर्य उन चीजों से कहीं अधिक है, जिनसे मिलकर यह बनता है।

देखो, एक छोटा बच्चा, प्रसन्नता से खिलखिलाता, किलकारियां मारता, आनंदित, जीवन वहां है, उस छोटे से बच्चे में, अब तुम उसकी चीरफाड़ करो, उसे शल्य-चिकित्सक की मेज़ पर रख दो। तुम वहां क्या पाओगे? न वहां कोई प्रसन्नता होगी, न ही बच्चे कि किलकारियां, न वहां हंसी होगी, और न ही निर्दोषपन पाया जा सकेगा। वहां कोई जीवन ही पाया जा सकेगा। जिस क्षण तुम बच्चे को काटते हो, बच्चा तो जा ही चुका होता है, जीवन तो वहां से अदृश्य ही हो जाता है। परंतु शल्य-चिकित्सक आग्रह करेगा कि कुछ भी नहीं गया है। तुम तौल सकते हो, अंगों का उतना ही वजन है। जितना की समस्त बच्चे का हुआ करता था–कुछ भी छूटा नहीं है, यह एकदम वही बच्चा है। परंतु क्या तुम्हें विश्वास है कि यह वही बच्चा है? और यदि यह बच्चा उस शल्य चिकित्सक का ही होता, तब क्या उसे भी विश्वास होता कि यह वही बच्चा है? मेज़ पर पड़े हुए ये मुर्दा अंग?

कुछ तो ऐसा है जो बच्चे में से अदृश्य हो गया है। हो सकता है कि उस कुछ को तोला न सकता हो? हो सकता है उस अदृश्य को मापा न जा सकता हो? हो सकता है, वह अदृश्य भौतिक न हो, परंतु कुछ तो ऐसा है, जो उसमें से चला गया, निकल गया है। ये बच्चा अब कभी नाच नहीं सकता, किलकारियां नहीं मार सकता, दौड़ नहीं सकता, हंस नहीं सकता, न ही यह कुछ खा सकता है, न ही पियेगा, न रोएगा, न ही सोने के लिए जायेगा,

न क्रोधी ही होगा, बस वहीं कुछ था जो उस अदृश्य के चला गया, और मजे कि बात तुम अब इस से प्रेम भी नहीं कर सकते, तुम्हारा प्रेम भी, तुम्हारा लगाव भी उसी अदृश्य से ही था।

तंत्र कहता है कि जोड़ पूर्ण नहीं है। अंगों का कुछ जोड़ पूर्ण नहीं है–पूर्ण तो अंगों के कुल जोड़ से अधिक है। और उस आधिक्य में ही जीवन का अनुभव है।

शून्य होने का अर्थ है, न कुछ हो जाना, सब कुछ को साथ रखने से अस्तित्व नहीं बनता–यह अधिक है। यह अपने अंगों से सदा अधिक है, यह तो इसका सौंदर्य है, यही तो इसका जीवन है। यहीं तो कारण है कि यह इतना आनंदित है। यही तो उत्सव का कारण है।

इसलिए इन दोनों–सकारात्मक और नकारात्मक शब्दों को हमेशा याद रखो। तंत्र नकारात्मक शब्दों का उपयोग करेगा, विशेषरूप से बौद्ध-तंत्र। और दूसरी और हिंदू-तंत्र सकारात्मक शब्दों का उपयोग करता है, हिंदू-तंत्र और बौद्ध-तंत्र यहीं एक मात्र अंतर है। बुद्ध उस परम को वर्णन करने में सदा 'न' का उपयोग करते हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि एक बार तुमने उसे गुण प्रदान करना प्रारंभ कर दिया, वे गुण सीमा घटक बन जाते हैं।

इसलिए बुद्ध कहते है: निरस्त करते जाओ–नेति-नेति, कहते जाओ कि यह नहीं है, यह नहीं है, यह नहीं है। और फिर सारे नकारों के बाद भी जो बच जाता है, वही है।

इसलिए याद रखो कि ना कुछ होने का अर्थ खालीपन नहीं है–इसका अर्थ पूर्णता है, परंतु अवर्णनीय पूर्णता। वही अवर्णनियता इस शब्द ना कुछ द्वारा वर्णित की गई है।

जिनके मन भ्रमित हैं, व्याख्यात्मक विचारों से
वह सब हैं दुविधा में,...

सराह कहता है: वे लोग जो बहुत ज्यादा विश्लेषण वादी हैं, व्याख्यावादी हैं, जो मन की श्रेणियों में ही निरंतर विचार करते रहते हैं, वे सदा विभाजित हैं, विभक्त हैं। उनके लिए सदा एक समस्या है। समस्या अस्तित्व में नहीं हैं, समस्या आती है, उनके अपने विभाजित मन से। उनका अपना मन एक अकेली इकाई नहीं है।

अब तुम वैज्ञानिक से भी पूछ सकते हो, वह कहता है मस्तिष्क दो भागों में विभाजित है, बायां और दायां, और दोनों ही अलग-अलग तरह से काम करते है। न केवल अगल-अलग ही बल्कि एक दूसरे विपरीत भी। बाई और का मस्तिष्क विश्लेषणवादी है और दायी तरफ का अंतदृष्टि है। बायीं तरफ का मस्तिष्क गणितशास्त्रीय है, तर्क-शास्त्री है, युक्तिवादी है। दायी तरफ का मस्तिष्क काव्यात्मक, कलात्मक, सौंदर्य-बोधि, रहस्यदर्शी है। और वे दोनों अगल-अलग श्रेणियों में आते है, उन दोनों के बीच एक बहुत छोटा सा सेतु है, बस एक छोटी कड़ी।

कभी-कभी ऐसा हुआ है कि किसी दुर्घटना में वह कड़ी टूट गई और आदमी दो में विभक्त हो गया। द्वितीय विश्वयुद्ध में कई ऐसी घटनाएं हुई जब कि वह कड़ी टूट गई और आदमी दो हो गया, फिर वह एक व्यक्ति न रहा। फिर कभी-कभी वह सुबह को तो एक बात कहता और श्याम होते-होते तक वह भूल जाएगा और कुछ बात कहने लग जायेगा। सुबह को एक गोलार्द्ध काम कर रहा था, श्याम को दूसरा गोलार्द्ध काम करने लगा। और ये बदलते रहते हैं।

आधुनिक विज्ञान को इसमें बहुत गहराई से झांकना होगा। योग ने इसमें बहुत गहराई से छान-बीन की है। योग कहता है: जब तुम्हारी श्वास बदलती है...लगभग चालीस मिनट तक तुम एक नासिका छिद्र से श्वास लेते हो। अभी तक आधुनिक विज्ञान ने इस विषय में विचार नहीं किया है, श्वास क्यों बदलती है? और इसके क्या कारण है? परंतु योग न इस पर गहराई से काम किया है।

जब श्वास तुम्हारी बायीं नासिका से चलती है, तब तुम्हारा दायां मस्तिष्क काम करता है। जब श्वास तुम्हारे दाएं नासिकाछिद्र से चलती है, तब तुम्हारा बायां मस्तिष्क कार्य करने लग जाता है। यह एक प्रकार कि आंतरिक व्यवस्था है ताकि एक मस्तिष्क चालीस मिनट तक कार्य करे। फिर उसे विश्राम मिल जाए। इसलिए बिना ठीक से जाने कि ये क्या है? आदमी ने अनुभव किया है कि चालीस मिनट के बाद तुम्हें अपना कार्य बदल देना चाहिए–यही कारण है कि विद्यालयों, या महाविद्यालयों में चालीस मिनट का एक कक्षा होती है, चालीस मिनट के बाद उसे बदल देते है। मस्तिष्क का एक भाग थक गया, उसे अब विश्राम चाहिए। इसलिए यदि तुम गणित पढ़ रहे हो चालीस मिनट के बाद कविता पढ़ना अच्छा रहेगा। तुम दुबारा गणित पढ़ना शुरू कर सकते हो।

द्वितीय विश्वयुद्ध में यह बात बहुत स्पष्ट हो गई कि यह सेतु बहुत ही छोटा सा है, बहुत ही कमजोर, किसी भी दुर्घटना से टूट सकता है। और अगर किसी तरह से एक बार यह टूट गया, आदमी फिर दो की भांति काम करने लग जाता है। तब वह एक आदमी नहीं रहता, चालीस मिनट तक वह एक आदमी होता है, दूसरे क्षण वह दूसरा ही आदमी हो जाता है। यदि वह तुमसे धन उधार ले-ले, चालीस मिनट बाद वह इंकार कर देगा, वह कहेगा, 'तुम क्या बात करते हो मैंने कभी लिया ही नहीं।' और वह अपनी जगह ठीक ही है, इस बात को स्मरण रखना वह झूठ नहीं बोल रहा है। जिस मस्तिष्क के हिस्से ने धन लिया था, वह तो अब विश्राम कर रहा है, अब वह काम ही नहीं कर रहा है। इसलिए उसे इसकी कोई स्मृति ही नहीं है। जो मस्तिष्क अब कार्य कर रहा है उसने कभी धन उधार लिया ही नहीं। वह अपनी जगह एक दम से सच ही बोल रहा है, सच में ही जिस व्यक्ति ने धन लिया था वो दूसरा ही था, वह एक नहीं तो व्यक्तित्व बन गये है।

और यह उसके साथ भी होता है जिसका की सेतु अभी नहीं टूटा होता है। तुम अपने स्वयं के जीवन को जरा गोर से देखो, और तुम उसमें एक लयबद्धता न पाओगे–निरंतर। अभी एक क्षण पहले तुम अपनी पत्नी के प्रति इतने प्रेमपूर्ण थे, और अचानक कुछ घटता है, और तुम चिंतित होते हो–क्योंकि तुम्हारा सेतु अभी जुड़ा है, तुम्हें थोड़ी सी स्मृति है, थोड़ी देर पहले की घटना अभी आपके श्रवण में बची है। अभी क्षण पहले तुम कितने प्रेम पूर्ण थे, प्रवाहमान थे, और फिर अचानक क्या हुआ? अचानक ही वह प्रवाह टूट गया, तुम जैसे की जम गये। हो सकता है कि तुम अभी अपनी पत्नी का हाथ भी थामे हुए हो, और एक पल में सब बदल गया है। अब मस्तिष्क का दूसरा हिस्सा सक्रिय हो गया है। अचानक वह भाव वो ऊर्जा पहले वहां पर थी एक पल में गायब हो गई। अब हो सकता है तुम अपनी पत्नी का हाथ छुड़ा कर भाग जाना चाहते हो। तुम यहां क्या कर रहे हो? तुम क्यों इस स्त्री के साथ अपना समय बर्बाद कर रहे हो? इसके पास क्या रखा है? और तुम चिंतित भी होते हो, क्योंकि अभी क्षण भर पहले ही तुम कसम खा रहे थे, 'मैं तुम्हें सदा प्रेम करूंगा। अभी एक क्षण पहले मैंने कसम खाई थी और अब मैं ये क्या कर रहा हूं अपनी कसम को तोड़ रहा हूं।'

तुम अपने पर क्रोधित भी होते हो, किसी को मार डालना चाहते हो–और कुछ ही मिनट बाद ही क्रोध न जाने कहां चला जाता है। अब तुम क्रोधित नहीं हो। अब तुम उस व्यक्ति के प्रति करुणा का भाव करने लगते हो, तुम प्रसन्न भी होते हो: 'अच्छा हुआ कि मैंने उसे मार नहीं डाला।'

अपने मन का अवलोकन करो, और तुम इस बदलाव को निरंतर पाओगे, गेयर लगाता बदलता रहता है।

तंत्र कहता है एकता की एक स्थिति ऐसी भी है, जब कि यह सेतु एक छोटी सी कड़ी बना नहीं रहता बल्कि वास्तव में दोनों मस्तिष्क एक साथ हो जाते हैं। यह एक हो जाना ही सही मायने तुम्हारा मिलन है, अपने अंतस का, अपनी स्त्री पुरुष का अपने द्वैत्व का। क्योंकि इसका एक भाग स्त्रैण है, दूसरा पुरुष का। बायां पुरूष का और दायां स्त्री का। जब तुम किसी स्त्री या पुरुष के साथ संभोग कर रहे होते हो, तब रतिक्षण घटता

है, तुम्हारे दोनों मस्तिष्क बहुत ही करीब आ जाते है। तभी तो रतिक्षण घटता है। इसका स्त्री से कुछ लेना-देना नहीं है, इसका बाहर की किसी वस्तु से कुछ लेना-देना नहीं है। यह तो तुम्हारे भीतर ही घट रहा है इसका अवलोकन करो...।

तंत्र ने इस संभोग की घटना का बहुत ही गहराई से अध्ययन किया है, क्योंकि वे सोचते हैं, और वे ठीक हैं, कि पृथ्वी पर सबसे बड़ी घटना संभोग है, और मनुष्यता का महानतम अनुभव है, रतिक्षण। इसलिए यदि कहीं सत्य तो वह सत्य है, तब किसी अन्य स्थान की अपेक्षा वह सत्य रतिक्षण के क्षण के अधिक समीप होना चाहिए। यह एक साधारण सा तर्क है। इसके लिए बहुत अधिक तार्किक होने की आवश्यता नहीं है। यह तो इतनी स्पष्ट बात है–कि यह आदमी का महानतम आनंद का क्षण है, यह सृष्टि का उत्पत्ति का क्षण है, इस अणु में महान ऊर्जा छिपी है। यह वह पल होना चाहिए, यही वह कुंजी होनी चाहिए, यहीं वह द्वार होना चाहिए, जहां से उस परम में प्रवेश किया जा सके। यही वह क्षण है जो आनंद का द्वार खोल सकता है, भले ही वह लघु है, क्षणांतर में घट जाता है उसे लम्बा किया जा सकता है।

इस लघु क्षण में अनंत का प्रवेश द्वार खुलता है तभी तो इसे प्रकृति ने प्रत्येक जीव में कितना आकर्षण पैदा किया है। उस एक क्षण के लिए न स्त्री रहती है न पुरूष दोनों विलीन हो जाते है। न ही उनका होना होता, तब उस पल अहंकार भी विलीन हो जाता है, उनके खोल अदृश्य हो जाते है।

ठीक-ठीक होता क्या है? तुम शरीर-शास्त्रियों से भी पूछ सकते हो। तंत्र ने बहुत सी बातों का अन्वेषण किया है। थोड़ी सी कुछ बातें: पहली, जब तुम किसी स्त्री से संभोग कर रहे होते हो, और तुम रतिक्षण का आनंद में डूबे हो, इसका उस स्त्री से कोई लेना-देना नहीं है। यह घटना तो तुम्हारे अंदर घट रही होती है, इसका स्त्री के रतिक्षण से कुछ भी लेना-देना नहीं है। उस क्रिया का जरा भी संबंध नहीं है इससे।

जब एक स्त्री को रतिक्षण का अनुभव हो रहा होता है, तब उसे अपने रतिक्षण का अनुभव होता है, इसका तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है। हो सकता है तुमने एक प्रारंभ-बिंदु की भांति काम किया हो, परंतु स्त्री का रतिक्षण उसका अपना रतिक्षण है, और तुम्हारा रतिक्षण तुम्हारा अपना है, दोनों का निजी अनुभव है। तुम दानों साथ-साथ जरूर चले थे, सहयोग हो सकता है एक-दूसरे का उस बिंदु तक ले जाने में परंतु अनुभव दोनों का अपना-अपना है। जब तुम्हारा अपना निजी रतिक्षण आता है, तुम आनंद एक दूसरे को बांट नहीं सकते हो। यह तुम्हारा अपना आनंद है। वह यह तो देख सकती है कि कुछ तो घटा है तुम्हारे चेहरे पर तुम्हारे व्यवहार से, तुम्हारे क्रियाकलापों से परंतु यह तो मात्र एक अवलोकन ही हुआ। वह भी बहार से। वह इसमें साझीदार नहीं हो सकता। जब स्त्री का अपना रतिक्षण होता है, तुम मात्र एक दर्शक ही होते हो, तुम इसमें सहभागी भी नहीं हो सकते।

और यदि तुम दोनों के रतिक्षण साथ-साथ भी घटे, तब भी तुम्हारे रतिक्षण का आनंद अधिक या कम नहीं होगा, यह स्त्री के रतिक्षण से प्रभावित नहीं होगा और न ही स्त्री का रतिक्षण पुरुष के रतिक्षण से प्रभावित होता है। तुम एक दम निजी हो, पूरी तरह से स्वयं में–एक बात। इसका अर्थ है कि सभी रतिक्षण, गहरे में हस्तमैथुन ही है। स्त्री तो बस एक सहायक की भूमिका निभाती है, पुरूष भी एक सहायक ही है, मात्र बहाना है–लेकिन अनिवार्यता नहीं।

दुसरी बात: जिसका की तांत्रिक अवलोकन करते रहे है, वह यह है कि जब रतिक्षण घट रहा होता है, इसका तुम्हारे यौन-केंद्रों से कोई संबंध नहीं होता, कोई भी संबंध नहीं। यदि यौवन केंद्रों का संपर्क तुम्हारे मस्तिष्क से काट दिया जाए, तुम्हें रतिक्षण तो घटेगा ही, पर तुम्हें कोई आनंद प्राप्त नहीं होगा। इसे हम अगर इस तरह से देखे तो कहीं ये हमारे अंदर यौन-केंद्रों पर नहीं घट रहा होता है, जरूर यौन-केंद्र से कोई अंतरिक

जुड़ाव मस्तिष्क में घटना प्रारंभ हो जाती है, यह घटना जो काम केंद्र पर हो रही है, यह मस्तिष्क में घट रही है। और आधुनिक खोज इस बात से पूरी तरह से सहमत है।

तुमने प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डेलगाडो का नाम तो सुना होगा। उसने छोटे-छोटे यंत्र बनाए है, वह मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड्स लगा देता है और वे इलेक्ट्रोड्स दूर-चलित नियंत्रक से नियंत्रित किये जाते सकते है। तुम अपने पास दूर-चालित नियंत्रकों का एक डिब्बा रख सकते हो। तुम इस यंत्र को अपने खीसे में रख सकते हो जो जब कभी भी तुम रतिक्षण का अनुभव करना चाहो, बस एक बटन दबा दो। इसका तुम्हारे यौन केंद्र से कोई संबंध नहीं है, बटन तो बस तुम्हारे मस्तिष्क में कुछ चीज दबा देगा–सिर के भीतर यह उन केंद्रों को धक्का मार देगा जिन पर धक्का तब लगता है, जब तुम्हारे काम केंद्र से वीर्य स्खलन होता है। काम उर्जा जब केंद्र से मुक्त होती है। परंतु ये यंत्र तुम्हारे मस्तिष्क के उस हिस्से पर सीधा धकेल देगा। और तुम्हें बहुत सुख का अनुभव होगा। तुम्हें लगभग रतिक्षण जैसी अनुभूति प्राप्त होगी। और अगर तुम दूसरा बटन दबा दोगे तो अचानक तुम्हें बहुत क्रोध आ जाएगा। एक और बटन दबा दोगे तुम गहन निराशा में डूब जाओगे। तुम सब तरह के बटन अपने यंत्र में रख सकते हो। और चाहो तो तुम अपने भावदशा को परिवर्तन कर सकते हो।

जब डेलगाडो ने पहली बार अपने जानवरों के साथ प्रयोग किए, खास तौर पर चूहों के साथ, वह हैरान रह गया। उसने अपने सबसे प्यारे चूहे के मस्तिष्क में वे इलेक्ट्रोड लगा दिए–वह चूहा बड़ा प्रशिक्षित था, एक बहुत बुद्धिमान चूहा और डेलगाडो बहुत दिनों से उसके साथ प्रयोग करता आ रहा था। उसने चूहे के सिर में इलैक्ट्रोडस लगा दिए, एक नियंत्रण यंत्र उसके पास रख दिया और उसे प्रशिक्षित भी कर दिया कि इस बटन को दबाना है। जब एक बार उस चूहे को पता चल गया कि ये बटन दबाने से उसे रतिसुख प्राप्त होता है, तब वह तो पागल ही हो गया। एक दिन में उसने उस बटन को करीब छः हजार बार दबाया, और न व कुछ खाया न कुछ पीया न सोए बस कुछ-कुछ देर बाद वह बटन को दबाता ही रहा जब तक की वह मर न गया। इतने सूख में वह सब भूल गया लगभग वह पागल जैसा हो गया था। मनुष्य के मस्तिष्क के विषय में ये आधुनिक खोज ठीक यही बात कह रही है। जो तं¬¬त्र हजारों साल से कहता आया है। एक रतिक्षण के सुख का बाहर से कोई संबंध नहीं है, न बाहर कि किसी स्त्री से, न बाहर के किसी पुरूष से। दूसरी एक बात को भी समझ ले न ही इसका तुम्हारी काम उर्जा से कोई संबंध है। स्त्री तुम्हारी कामऊर्जा को चलायमान कर देती है, ये एक प्राकृतिक की प्रकृिया है, क्रिया तो काम केंद्र पर होती पर सूख जो मिलता है वह मस्तिष्क में घटता है।

यही कारण है कि अश्लील साहित्य का इतना आकर्षण है, क्योंकि अश्लील साहित्य सीधे ही तुम्हारे मस्तिष्क को उत्तेजित करता है, एक सुंदर स्त्री या एक कुरूप स्त्री तुम्हारे रतिक्षण का कोई संबंध नहीं है। एक कुरूप स्त्री से तुम्हें उतना ही रतिसुख प्रदान कर सकती है जितना कि एक सुंदर स्त्री परंतु कुरूप स्त्री को तुम पसंद क्यों नहीं करते? वह तुम्हारे सिर को आकर्षित नहीं करती, बस इतना सी बात है। वर्ना जहां तक रतिसुख का संबंध है, दोनों ही उसमें सक्षम है। कुरूपतम स्त्री हो या सुंदरतम स्त्री हो, या क्ल्योपेट्रा हो, कोई फर्क नहीं पड़ता–परंतु तुम्हारा सिर तुम्हारा मस्तिष्क आकृति में, सुंदरता में अधिक रुचि लेता है।

तंत्र कहता है कि एक बार हम इस काम-क्षण की सारी कार्यविधि को समझ लें, एक बड़ी समझ का जन्म हो सकता है। एक बात और:

आधुनिक खोज इस बात तक पर राजी है कि संभोग सुख आपके मस्तिष्क में घटता हैं। स्त्री का काम सुख मस्तिष्क के दाएं भाग में घटता है, इस विषय में आधुनिक खोज तो कुछ कहने में सक्षम नहीं है–परंतु तंत्र यह बात कहता है। कि स्त्री का कामसुख उसके दाएं भाग में घटता है। क्योंकि वही स्त्रैण केंद्र है। तंत्र इस विषय में

और आगे जाता है, और तंत्र कहता है कि मस्तिष्क के ये दोनों भाग जब समीप आते हैं, यहां आनंद उत्पन्न होता है, संपूर्ण रतिसुख घटता है।

और मस्तिष्क के ये दोनों भाग बड़ी सरलता से समीप आ सकते हैं–जितने कम विश्लेषणवादी तुम होते हो, उतने ही समीप में होते है। इसलिए तो एक व्याख्यात्मक मन कभी आनंदित नहीं हो सकता। आदिवासी लोग अधिक आनंदित होते है, एक गैर-व्याख्यात्मक मन अधिक आनंदित हो सकता है। तथाकथित सभ्य लोगों से, शिक्षित लोगों से, सुसंस्कृत लोगों से। पशु अधिक आनंदित है, पक्षी अधिक आनंदित है, मनुष्यों से। मनुष्य के पास जो व्याख्यात्मक मन है वही इसमें बाधा है, व्याख्यात्मक मन अंतराल को बड़ा कर देता है।

जितना अधिक तर्कपूण ढंग से तुम सोचते हो, दोनों मस्तिष्कों के बीच उतना ही बड़ा अंतराल होता है। जितना कम तर्क पूर्ण ढंग से तुम सोचते हो, उतने ही वे समीप आते हैं। जितनी अधिक काव्यपूर्ण, अधिक सौंदर्यपूर्ण तुम्हारी दृष्टि होगी उतने ही वे अधिक समीप होंगे। जितने वे समीप होते है, उतनी ही प्रसन्नता की आनंद की अधिक संभावना होती चली जाती है।

और अंतिम बात, जिस तक पहुंचने में, मेरे ख्याल में, विज्ञान को कई सदियां लग जाएंगी। अंतिम बात यह है कि आनंद ठीक-ठीक तुम्हारे मस्तिष्क में भी नहीं घटता है–यह तो उस साक्षी में घटता है जो कि मस्तिष्क के दोनों भागों के पीछे खड़ा है। अब अगर यह साक्षी पुरूष मन से अधिक से अधिक आसक्त होता है, तब आनंद उतना अधिक नहीं होगा। अथवा, तुम्हारा साक्षी स्त्री मन से बहुत अधिक आसक्त होता है तब आनंद थोड़ा ज्यादा तो होगा पर बहुत ज्यादा नहीं।

क्या तुम देख नहीं सकते? पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां ज्यादा आनंदित प्राणी है। यही कारण है कि वे अधिक सुंदर, अधिक निर्दोष, दिखाई देती है! वे अधिक समय तक जीती हैं, वे अधिक शांतिपूर्वक, अधिक संतुष्ट जीती है। वे इतनी चिंतित नहीं रहती, वे इतनी अधिक आत्महत्या नहीं करती, वे इतनी अधिक पागल नहीं होती–अनुपात दो गुना है। आदमी दो गुना अधिक आत्महत्या करता है, स्त्रियों की अपेक्षा। और पागल भी करीब-करीब उसी अनुपात में होता है। और तुम्हारे सारे युद्दों को, आतंकवाद को, भी आत्महत्या मान लेते हैं तो आदमी और कुछ करता ही नहीं। सदियों-सदियों से वह युद्ध के नाम पर लोगों को मारता ही तो आ रहा है।

स्त्रैण मन अधिक आनंदपूर्ण है, क्योंकि यह अधिक काव्यात्मक है, अधिक सौंदर्यपूर्ण है, अधिक अंतर्दृष्टि वाला है। परंतु यदि-यदि तुम किसी भी भाग से असकत न होओ, और मात्र साक्षी बने रहो, तब तुम्हारा हर्ष परम पर, अपने उत्कर्ष चरम को छू लेता है। वह एक आत्यंतिक दशा है। इसी हर्ष को हमने आनंद कहां है, इसे जानने के लिए साक्षी को 'एक' होना होता है, पूर्णतः एक; तब तुम्हारे भीतर के स्त्री और पुरूष पूरी तरह से अदृश्य हो जाते हैं, आप पूर्ण हो जाते हैं, अद्वत्य-द्वत्वत्व वहां अब खत्म हो गया। एक पूर्णता ही बचती है, केवल होना मात्र, न अब वहां पुरुष है न स्त्री ही, वहां है केवल, 'साक्षी।' उस अवस्था में स्त्री और पुरुष दोनों ही मिट जाते है। तब वे एक-दूसरे में खो जाते हैं, विलीन हो जाते हैं, तब रतिसुख का आनंद तुम्हारे क्षण-क्षण का अस्तित्व हो जाता है। और उस अवस्था में काम तो स्वयं अदृश्य हो जाता है–क्योंकि उसकी आवश्यकता ही नहीं होती। जब कोई व्यक्ति चौबीस घंटे आनंद में ही जीता हो, तब उसकी क्या आवश्यकता रह जाती है।

अपने साक्षीत्व में तुम आनंदपूर्ण हो जाते हो। रतिसुख तब कोई क्षणिक की घटना नहीं रह जाती, तब यह बस तुम्हारा स्वभाव हो जाता है, यही तो समाधि है। हो गया पूर्ण समाधान...तुम पूर्ण हो गए।

जिनके मन भ्रमित हैं, व्याख्यात्मक विचारों से
वह सब हैं दुविधा में, इसीलिए
शून्य और करुणा को वे दो समझते है।....

सराह कहता है कि अस्तित्व शून्यता है, परंतु चिंता मत करो–'शून्यता' से हमारा अर्थ यह नहीं है कि यह हर चीज से रिक्त है। सच तो यह है कि यह पूर्ण भरी हुई है–यह इतनी भरी हुई है कि हम इसे न कुछ कहते है। यदि हम इसे कुछ कहें, वह एक सीमा निर्धारित कर देगा, और है यह असीम–इसलिए हम इसे ना कुछ कहते है। परंतु बुद्धों से बार-बार पूछा गया हैं: यदि यह शून्य है तब करुणा कहां से आती है? तब बुद्ध करुणा की बात बार-बार क्यों कहते है?

सराह कहता हैः शून्य और करुणा एक ही ऊर्जा के दो पहलू हैं। अहंकार का अर्थ हैं: मैं कुछ हूं? यदि अस्तित्व शून्य है और मुझे इस अस्तित्व में सहभागी होना है, यदि मुझे इसी अस्तित्व का अंग बनना है, मुझे अहंकार को छोड़ना होगा। ये अहंकार ही मुझे 'कुछ' बना रहा है। मुझे एक परिभाषा में बांध रहा है। एक सीमा बना रहा है। जब अस्तित्व बिना किसी स्व के है, यह शून्य है–'अनंतता' तब मुझे भी शून्य होना होगा केवल तभी ये दो शून्य एक दूसरे से मिलने और एक दूसरे में विलीन होने में समर्थ होंगे। मुझे एक निर-अहंकार बनता है, और उस निर-अहंकारिता में ही करुणा है।

अहंकार के साथ लालसा है, निर-अहंकार के साथ करुणा है। अहंकार के साथ हिंसा है, निर-अहंकार के साथ प्रेम है, अहंकार के साथ आक्रामकता है, क्रोध है, क्रूरता है; निर-अहंकार के साथ दया है, करुणा है, समझदारी है, स्नेह है।

इसलिए सरहा कहता है: कि करुणा को आवर्धित नहीं करना है, यदि तुम शून्य में रह सको, करुणा तो स्वतः ही तुम से बहने लगेगी।

मैंने सुना है, एक व्यक्ति अपने बैंक मैनेजर के पास ऋण लेने की प्रार्थना लेकर गया। सब पूछताछ कर लेने के उपरांत बैंक मैनेजर ने कहा: 'वैसे तो मुझे तुम्हारी प्रार्थना को अस्वीकार कर देने का पूरा अधिकार है, पर मैं तुम्हें एक मजेदार अवसर दूंगा। अब, मेरी दोनों आंखों में से एक आंख शीशे की बनी है। यदि तुम यह बतला दो कि वह आंख कौन सी है, तो मैं आपका ऋण पास कर दूंगा।'

उस व्यक्ति ने गौर से कुछ क्षण तक उस मैनेजर की आंख में देखा, और कहा, 'यह आपकी दायी आंख है, श्रीमान।'

बैंक मैनेजर ने कहा: 'बात तो आपने एकदम से सही कही है, परंतु न जाने क्यों मुझे विश्वास नहीं हो रहा, आप मुझे जरा बता पाएंगे कि आपने इसे कैसे पहचाना, कैसे अंदाज लगाया?'

ग्राहक ने कहा: 'बात यूं है श्रीमान, आपकी दायी आंख में कुछ करुणा जान पड़ती है, इसलिए मैंने सोचा कि इसी को शीशे की होना चाहिए, इधर वाली आंख तो एक दम मृत है पत्थर की तरह उसमें कोई दया का भाव नहीं झलकता।'

अहंकार, हिसाब-किताब लगाने वाला, चालाक मन कभी करुणावान नहीं होता, हो ही नहीं सकता। अहंकार के होने मात्र में ही हिंसा है। यदि तुम हो, तुम हिंसक हो। तुम अहिंसक हो ही नहीं सकते। यदि तुम अहिंसक होना चाहो, तुम्हें अपना 'मैं' छोड़ना होगा, तुम्हें एक शून्य होना होगा। उसी शून्य से ही अहिंसा आती है, इसका अभ्यास नहीं करना पड़ता, यह प्रश्न ना कुछ हो जाना है। तब अंतस से करुणा, अहिंसा स्वतः से ही प्रवाहित होती है। यह 'मैं' की बाधा है कि तुम्हारी ऊर्जाओं के प्रवाह को रुकावट पहुंचा रही है, वर्ना तो करुणा तो अति सरल है।

सराह कह रहा है: 'शून्य और करुणा दो नहीं है, तुम शून्य हो जाओ और करुणा वहां होगी। या, तुम करुणा को उपलब्ध हो जाओ, तब तुम पाओगे कि तुम एक शून्य, ना कुछ हो गए हो।'

अस्तित्व का शून्य की भांति यह चरित्र करण अहंकार के संहार की दिशा में एक महान कदम है, और यह संसार को बुद्ध के महानतम योगदानों में से एक है। दूसरे धर्म तो सूक्ष्म ढंगों से उसी अहंकार को आवर्जित किए चले जाते है। सदगुणी व्यक्ति महसूस करने लगता है, 'मैं तो सदगुणी हूं,' नैतिक वादी सोचता है, 'मैं दूसरों से अधिक नैतिक हूं।' जो भी आदमी का आचरण करता है वह स्वयं को दूसरों से अधिक धर्मात्मा समझता है, पर ये सब तो अहंकार की बातें हैं, और ये मदद नहीं करती हैं। बुद्ध कहते है, अभिवृद्धि प्रश्न नहीं हैं, इस बात की समझ चाहिए कि तुम्हारे भीतर 'कोई नहीं' है।

क्या तुमने कभी भीतर झांका है? क्या तुम कभी भीतर गए हो और चारों तरफ देखा है? क्या वहां पर कोई है? तुम किसी को वहां न पाओगे। तुम मौन वहां पाओगे। तुम्हारी वहां किसी से भेंट न हो सकेगी।

सुकरात कहता हैं: स्वयं को जानो। और बुद्ध कहते हैं, यदि तुम जानोगे, तुम पाओगे कि वहां कोई 'स्वयं' नहीं है, वहां भीतर कोई नहीं है, वहां शुद्ध मौन है। न तो तुम किसी दीवाल से टकराओगे, न ही तुम किसी व्यक्ति से मिलोगे। यह रिक्तता है। यह इतना शून्य है जितना कि स्वयं अस्तित्व। और उस रिक्तता से ही सब कुछ प्रवाहित हो रहा है, उस शून्य से ही सब कुछ प्रवाहित हो रहा हैं।

मधुमक्खियाँ जानती हैं, मधु मिलेगा फूलों में

कि नहीं हैं दो, संसार और निर्वाण

भ्रमित लोग समझेंगे पर कैसे यह

क्या तुमने कभी गौर किया है? एक सुंदर झील के चारों तरफ बहुत से फूल खिलें हैं। मेंढ़क वहीं उन फूलों की जड़ों के पास ही बैठे हो सकते है। पर उन्हें नहीं पता कि फूलों के भीतर मधु भी होता है।

मधुमक्खियां जानती है,

मधु मिलेगा फूलों में...

जलमुर्गियां, बतख़ें, मछलियां, और मेंढक नहीं जानते यद्यपि वे पौधों के पास ही रह रहे होते हैं। यह जानने के लिए कि फूलों में मधु होता है, मधुमक्खी की तरह है और तपस्वी एक मेढक की तरह है। वह फूलों के बगल में ही रहता है और वह जरा भी सजग नहीं है, इतना ही नहीं कि वह सजग नहीं है, वह इंकार भी करता है। वह सोचता है कि मधुमक्खियां अतिभोगी हैं, कि मधुमक्खियां मूर्ख हैं कि वे स्वयं को नष्ट कर रही हैं।

सराह कहता है कि तपस्वी तो मेढकों जैसे हैं, और मधुमक्खी तांत्रिक जैसी। काम की घटना में ही सर्वोत्कृष्ट भी छिपा है। काम की ऊर्जा में ही वह कुंजी भी है जो कि अस्तित्व के द्वार खोल सकती है। पर मेढक यह बात नहीं जानते। तंत्र कहता है कि यह तो इतना स्पष्ट तथ्य है, कि कामऊर्जा से ही जीवन उत्पन्न होता है– इसका अर्थ है कि काम को जीवन के केंद्र पर होना चाहिए। जीवन काम-ऊर्जा से आता है। एक नया बच्चा काम ऊर्जा के द्वारा पैदा होता है, एक नया प्राणी अस्तित्व में प्रवेश करता है, एक नया अतिथि अस्तित्व में आता है– काम ऊर्जा के द्वारा काम ऊर्जा सर्वाधिक सृजनशील ऊर्जा है। निश्चय ही, यदि हम इसमें गहनता से प्रवेश करे इसे देखें तब हमें इसकी महानता का पता चल सकता है। इसकी अति अधिक सृजनात्मक संभावनाएं ज्ञात हो सकती हैं।

तंत्र कहता है: 'काम' तो उस ऊर्जा की सबसे निचली सीढ़ी है, कामवासना की निम्नतम पौडी। यदि तुम इसमें अधिक सजगता से प्रवेश करो और तुम इसमें गहराई से खोज-बीन करो, तुम सर्वोच्च संभावना को, समाधि को, इसमें छिपा हुआ पाओगे।

काम कीचड़ में गिर गई समाधि की तरह है, यह उस हीरे की भांति है जो कीचड़ में गिर गया हो। तुम कीचड़ को साफ कर लो, कीचड़ इसे नष्ट नहीं कर सकता। कीचड़ तो मात्र इसकी सतह तक ही है। तुम बस हीरे को धो दो, और यह पुनः अपनी पूरी कांति से, अपनी पूरी शान से चमकने लग जाता है।

काम में छिपा हुआ है हीरा। प्रेम में छिपा है परमात्मा। जब जीसस कहते हैं कि प्रेम परमात्मा है, उन्हें संभवतः यह विचार तंत्र से ही मिला होगा क्योंकि यहूदियों का परमात्मा तो जरा सा भी प्रेम नहीं है। यह यहूदी परम्परा से तो आ नहीं सकता। यहूदी परमात्मा तो बहुत क्रोधी परमात्मा है।

यहूदी परमात्मा कहता है: 'मैं बड़ा ईर्ष्यालु हूं, मैं बड़ा क्रोधी हूं। और तुम मेरे विपरीत जाओगे, मैं बदला लूंगा।' यहूदी परमात्मा तो बड़ा तानाशाह परमात्मा है। प्रेम यहूदी विचार के साथ मेल नहीं खाता। जीसस को यह विचार कहां से मिला कि परमात्मा प्रेम है? इस बात की हर संभावना है कि यह भारत के तांत्रिक के स्कूल से आया है, यहां के तांत्रिकों से ही फैला है।

सराह जीसस से तीन सौ वर्ष पहले हुआ। कौन जानता है? हो सकता है कि ये सराह और उसके विचार ही रहे हों जिन्होंने की यात्रा की हो। ऐसा सोचने के पक्के कारण हैं। इस बात की पूरी संभावना है कि जीसस भारत आये हों, इस बात की हर संभावना है कि भारत से संदेशवाहिक इसराइल की और गया हों।

परंतु एक बात सुनिश्चित हैं कि यह तंत्र ही है जिसने परमात्मा को प्रेम-ऊर्जा की तरह देखा हैं। परंतु ईसाई चूक गए। जीसस तक ने इशारा किया है, कि ईश्वर प्रेम हैं–वे चूक गए। उन्होंने इसकी व्याख्या ईश्वर-प्रेम की तरह से की–वे चूक गए। जीसस यह नहीं कह रहे हैं कि ईश्वर प्रेमपूर्ण हैं: जीसस कह रहे हैं कि ईश्वर प्रेम है–ईश्वर प्रेम के बराबर है। यह एक सूत्र है: प्रेम बराबर है ईश्वर के। यदि तुम प्रेम में गहरे हो जाओ, तुम ईश्वर को वहां पाओगे, और ईश्वर को पाने का कोई और उपाय नहीं है।

मधुमक्खियां जानती हैं, मधु मिलेगा फूलों में
कि नहीं हैं दो, संसार और निर्वाण
भ्रमित लोग समझेंगे पर कैसे यह...

कौन हैं ये भ्रमित लोग? मेढक, तपस्वी, तथाकथित महात्मागण, जो संसार को इंकार किए जाते हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि परमात्मा संसार के विरोध में है। यह मूढ़तापूर्ण है! यदि परमात्मा संसार के विरोध में है तो वह क्यों संसार को रचे चला जाता है? वह बस किसी भी क्षण इसे रोक दे सकता है। यदि वह इसके इतने ही विरोध में है, यदि वह तुम्हारे महात्माओं से सहमत होता तो उसने इसे कभी का रोक दिया होता। परंतु वह तो इसे बनाए ही चला जा रहा है। वह तो इसके विरोध में नहीं जान पड़ता–वह तो पूरी तरह से इसके पक्ष में दिखाई पड़ता है।

तंत्र कहता है परमात्मा संसार के विरोध में नहीं है, संसार और निर्वाण दो नहीं है–वे एक हैं। तपस्वी काम ऊर्जा से लड़ता है, और उस लड़ने के द्वारा ही वह परमात्मा से दूर होता जाता है। जीवन से दूर हट कर जीने लग जाता है। जीवन के ऊर्जावान स्रोत से दूरी बना लेता है। और तब विकृतियां उत्पन्न होती हैं–और वो होंगी ही। जितना अधिक तुम किसी से लड़ते हो, उतना ही अधिक तुम किसी से लड़ते हो, उसके खिलाफ होते जाते हो, उतना ही अधिक विकृत तुम होते चले जाते हो। और फिर तुम तरकीबें ढूंढने लगते हो, पीछे के द्वार से, कि में इस में प्रवेश कर जाऊं, पर वह अति कठिन है।

इसलिए सतह पर तो तपस्वी काम से लड़ता है, जीवन से लड़ता है और भीतर गहरे में वह इसके विषय में कल्पना करने लग जाता है। जितना अधिक वह दमन करता है, उतना अधिक वह इससे ग्रसित होता चला जाता है। तपस्वी एक दमित मानसिकता का व्यक्ति है। तंत्र में जीने वाल एक स्वाभाविक व्यक्ति है। उसके पास

कोई भी ग्रस्तताएं नहीं है। परंतु विडंबना देखिए कि तपस्वी सोचना है कि तांत्रिक ग्रसित है, तपस्वी सोचता है कि तांत्रिक तो काम के विषय में बातें करते है, 'वे काम के विषय में क्यों बातें करते है?' परंतु असली ग्रस्तता तपस्वी में है, वह इसके विषय में कोई बातचीत नहीं करता। अथवा यदि वह इसके विषय में बातचीत करता भी है, तो वह इसकी निंदा ही करता, इसको गंदा और विकृत भी समझता है। परंतु यह देखने की बात है कि सोचता वह भी रहता है, इसके विषय में चिंतन-मनन करता ही रहता है। उसका मन इसी के आस पास मंडराता रहता है, घूमता रहता है, इसका मंथन करता रहता है।

ईश्वर के विपरीत जाना कठिन है–यदि तुम जाना भी तो इसके विपरीत, तुम्हारी असफलता सुनिश्चित है। मन कोई न कोई तरकीब ढूंढ ही लेता है।

मैंने सुना है, एक यहूदी एक मित्र से बातचीत कर रहा था और उसने कहा, 'मैं अकेले सोना पसंद करता हूं। मेरा भरोसा ब्रह्मचर्य में है। सच तो यह है कि जब हमारा विवाह हुआ, मैं और मेरी पत्नी अलग-अलग कमरों में रहते आए है।'

'लेकिन', मित्र ने कहा, 'मान लो कि रात में तुम महसूस करो कि तुम थोड़ा सा प्रेम करना चाहोगे, तब तुम क्या करते हो?'

'ओह,' यहूदी ने उतर दिया: 'मैं बस सीटी बजाने लगता हूं।'

मित्र तो और भी अधिक हैरान परेशान हुआ और उसने पूछना जारी रखा, 'परंतु मान लो बात जरा दूसरे ढंग की हो और तुम्हारी पत्नी महसूस करे कि उसे थोड़े से प्रेम की चाहत है–तब क्या होता है?'

'ओह', उसने उतर दिया, 'वह मेरे दरवाजे तक आती है, उसे खटखटाती है, और पूछती है, 'ईकी, क्या तुमने सीटी बजाई?'

तुम एक ही कमरे में रहते हो या नहीं इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता है, मन तो कोई न कोई तरकीब खोज ही लेता है। मन सीटी बजाने लग जाता है, और दूसरी और स्त्री तो सीटी बजाना नहीं सीखती, वह इतना बेहूदा होने की जरूरत नहीं लगती। परंतु वह आ तो सकती है। आपके द्वार पर दस्तक दे सकती है। और पूछ सकती है, 'ईकी, क्या तुमने सीटी बजाई?'

मन अति चालाक है, पर एक बात सुनिश्चित है: तुम जीवन की सच्चाई से भाग नहीं सकते। यदि तुम भागने का प्रयत्न करो भी, तुम्हारा चालाक मन उपाय खोज लेगा और ज्यादा चालाक हो जाएगा। और तुम मन के जाल में और भी अधिक फंस जाओगे। मैं नहीं देख सकता कि कोई तपस्वी कोई सत्य को प्राप्त कर ले–बात असंभव जान पड़ती है। वह तो जीवन को ही इंकार करता है, सत्य को वह कैसे अनुभूत कर सकता है?

सत्य को जीवंत होना ही होगा। सत्य को तो जीवन के साथ खड़े होना होगा, जीवन को पूर्ण स्वीकार करना होगा। इसलिए अपने संन्यासियों से मैं कभी नहीं कहता कि जीवन को छोड़ दो–मैं कहता हूं कि जीवन में रहो। इसमें समग्रता से रहो! वहीं द्वार है, कहीं बाजार में नहीं है, जंगल या हिमालय पर नहीं है।

कि नहीं हैं दो, संसार और निर्वाण

भ्रमित लोग समझेंगे पर कैसे यह...

सराह कहता है, लेकिन मेढक कभी ये बात नहीं समझेंगे? एक मधुमक्खी बन कर! अपने भीतर यह बात एक गहन स्मृति में उतर जाने दो, कम से कम मेरे संन्यासियों के लिए, मधु मक्खी बनो, मेढक मत बनो। जीवन के ये फूल परमात्मा का मधु लिए हुए हैं...इसे इकट्ठा कर लो।

भ्रमित कोई जब झांकते हैं किसी दर्पण में

प्रतिबिंब नहीं, देखते हैं, वे एक चेहरा

वैसे ही जिस मन ने सत्य को नकारा हो

भरोसा वह करता है उस पर जो नहीं है सत्य

मन एक दर्पण की भांति है–यह केवल प्रतिबिंबित करता है, यह तुम्हें मात्र एक छायारूपी अनुभव दे सकता है, वास्तविक कभी नहीं, मौलिक कभी नहीं। यह एक झील की भांति है, और तुम झील में प्रतिबिंबित पूर्णमासी के चांद को देख सकते हो, पर प्रतिबिंबित पूर्णमासी का चांद है, वह कोई वास्तविक चांद नहीं वह तो पड़ रहा उसका बिंब है। वहां तुम वास्तविक चांद को तुम कभी भी न पा सकोगे।

सरहा कहता है:

भ्रमित कोई जब झांकते हैं किसी दर्पण में

प्रतिबिंब नहीं, देखते हैं, वे एक चेहरा...

एक चेहरे को देखने और उसके प्रतिबिंब को देखने में क्या अंतर है? जब तुम दर्पण में चेहरा देखने लग जाते हो, तुम भ्रम में पड़ जाते हो, तुम सोच रहे होते हो, 'यह मेरा चेहरा है।' सच पूछो तो यह तुम्हारा चेहरा नहीं है–यह तो मात्र तुम्हारे चेहरे का प्रतिबिंब है, दर्पण में असली चेहरा तो हो ही नहीं सकता। वह तो प्रतिबिंब ही हो सकता है।

मन एक दर्पण है। यह सचाई को प्रतिबिंबित करता है, परंतु यदि तुम उस प्रतिबिंब में भरोसा करना शुरु कर दो, तब तुम असत्य में, छाया में, भरोसा कर रहे होते हो। और वह भरोसा ही एक बाधा बन जाएगा।

सराह कहता है: कि यदि तुम सत्य को जानना चाहते हो, तो मन को उठा कर अलग रख दो–नहीं तो यह प्रतिबिंब बनाता ही चला जाएगा और तुम प्रतिबिंब को ही देखते चले जाओगे। मन को उठा कर अलग रख दो। यदि तुम सच में वास्तविक को जानना चाहते हो, तो प्रतिबिंब के विपरीत हो जाओ।

उदाहरण के लिए, तुम झील में प्रतिबिंबित होते पूरे चांद को देखते हो। अब, पूरे चांद को खोजने तुम कहां जाओगे? क्या तुम झील में छलांग लगा दोगे? क्या तुम चांद को पाने के लिए झील में गहरा गोता लगाओगे? तब तो तुम इसे कभी भी नहीं पा सकोगे। तुम स्वयं को भी खो दे सकते हो। यदि तुम सच में ही असली चांद को देखना चाहते हो, फिर प्रतिबिंब के विपरीत जाओ। उसके ठीक उलटी दशा में, तब तुम एक न एक दिन चांद को पा लोगे। मन में मत जाओ, मन से ठीक विपरीत दिशा में जाओ।

तुम्हारा मन विश्लेषण करता है, तुम संश्लेषण करो। मन के तर्क में विश्वास करता है, तुम तर्क में विश्वास मत करो, मन बहुत हिसाबी-किताबी है, मन बहुत चालाक है, तुम सरल हो जाओ। विपरीत दिशा में चलो! मन सबूत मांगता है, पूछता है, तर्क करता है। श्रद्धा का यही तो अर्थ है, विपरीत दिशा में जाओ। मन बड़ा संदेहवादी है। यदि तुम संदेह करते हो, तुम मन में जाते हो। यदि तुम संदेह नहीं करते, तुम मन के विपरीत जाते हो। संदेह मत करो! जीवन जीने के लिए है, संदेह करने के लिए नहीं। जीवन पर तो भरोसा रखना है। भरोसे के हाथ में हाथ डाल कर चलो और तुम सत्य को पा लोगे; संदेह के साथ रहो और तुम पागल हो जाओगे।

सत्य की खोज मन से ठीक विपरीत दिशा में खोज है, क्योंकि मन एक दर्पण है। यह प्रतिबिंब बनाता है। मन को उठा कर एक और रख देना ही तो ध्यान है।

जब तुम सचाई को बिना विचारों द्वारा इसे प्रतिबिंबित किए, सीधे ही देख पाते हो, सत्य यहां अभी यहां होता है। तब तुम सत्य होते हो और सब-कुछ सत्य होता है। मन तो भ्रम की, छलावे की, स्वप्न की एक बड़ी कार्यकारी क्षमता है।

यद्यपि छू सकता नहीं कोई सुगंध फूलों की

है यह सर्वव्यापी और एकदम अनुभवगम्य

वैसे ही अनाकृत मन स्वतः

पहचान जाते हैं रहस्यपूर्ण वृतों की गोलाई को

यह एक महान सूत्र है:

यद्यपि छू सकता नहीं कोई सुगंध फूलों की

है यह सर्वव्यापी और एकदम अनुभवगम्य

वैसे ही अनाकृत मन स्वतः

पहचान जाते हैं रहस्यपूर्ण वृतों की गोलाई को...

परंतु केवल तुम इसे सूंघ सकते हो, यह तुम्हें चारों और हो सकती हैं, पर तुम्हारे नासापुट ही इसे महसूस कर सकते है। यह तुम्हें चारों तरफ से घेर लेती है। तुम इसे छू नहीं सकते हो, यह मूर्त नहीं है, यह स्पर्शनीय नहीं है, परंतु तुम इसकी सहर्स्पशता को महसूस कर सकते हो। परंतु अगर तुम मूर्तता को ही सत्य की कसौटी बना लोगे, तब तो तुम यही कहोगे कि यह सत्य नहीं है, सत्य विचाराधीन नहीं है। यदि तुम विचार करोगे, तुम इससे चूक जाओगे।

सत्य का अनुभव तो किया जा सकता है, पर इसे छुआ नहीं जा सकता। सत्य को अनुभूत तो किया जा सकता है, पर इसे निष्कर्षित नहीं किया जा सकता। जैसे कि एक फूल की सुगंध को आंखों से देखा नहीं जा सकता, कानों से सुना नहीं जा सकता...परंतु अगर तुम यही मापदंड बना लो कि, 'जब तक कि मैं सुगंध को सुन न लूं, मैं इस पर भरोसा नहीं करूंगा।' तब तो तुम बाधाएं निर्मित कर रहे हो, और तब तुम इसे कभी नहीं जान पाओगे।

और धीरे-धीरे, तुम इस पर भरोसा न करो, यदि तुम भरोसा ही न करो, तुम इसे सूंघ पाने की क्षमता ही खो दोगे–क्योंकि जिस क्षमता का भी उपयोग नहीं किया जाता, जिस पर भरोसा नहीं किया जाता, वह अनुपयोगी हो जाती है, वह धीरे-धीरे अक्षम हो जाती है, भरोसा भी एक प्रकार कि क्षमता ही है, तुम संदेह के साथ इतने लंबे समय तक रहे हो, इतने लंबे समय से तुम संदेह के साथ गठजोड़ किए चले आ रहे हो, तुम कहते हो कि 'मुझे पहले विचारपूर्ण सबूत चाहिए–मुझे संदेह है।' इसलिए तुम संदेह के साथ रहे जाते हो और सत्य केवल भरोसे से ही जाना जा सकता है। ठीक वैसे ही जैसे कि सुगंध केवल सुंघने से ही जानी जा सकती है। यह है, यदि तुम सुंध सको, सत्य है यदि तुम भरोसा कर सको।

श्रद्धा, भरोसा, निष्ठा–बस एक बात की और इंगित करते है, कि सत्य को जानने की क्षमता संदेह नहीं है। संशयालुता नहीं है। यदि तुम संदेह पर जोर दोगे, तुम संदेह में ही रहोगे।

है यह सर्वव्यापी और एकदम अनुभवगम्य...

श्रद्धा के साथ, यह तुरंत है! एक क्षण भी नहीं खोता।

वैसे ही अनाकृत मन स्वतः ...

अपने आप को कोई सांचा। आकृति मत दो। सब सांचा एक तरह का कवच है। सब सांचे एक तरह की सुरक्षा हैं। सब सांचे एक प्रकार के आकृतिकरण ही है। खुले रहो, सांचों में मत ढलो।

वैसे ही अनाकृत मन स्वतः ...

यदि तुम आकृतियों में नहीं हो, यदि तुम बस खुले हो, तुम्हारे पास कोई कवच नहीं है, तुम तर्क से, संदेह से इससे-उससे अपनी सुरक्षा नहीं कर रहे हो, तुम बस उपलब्ध हो...अनाकृत, असुरक्षित, खुले आकाश के नीचे, सब द्वार खुले होते है। फिर चाहे मित्र प्रवेश करे या शत्रु, कोई भी खुले रहने दो, परंतु सब द्वार खुले हैं। उस खुले

पन में, तुम स्वयं में स्थित होते हो, तुम तथाता की अवस्था में होते हो, तुम रिक्त होते हो, तुम एक शून्य होते हो, और तुम जान लोगे कि सत्य क्या है:

पहचान जाते हैं रहस्यपूर्ण वृतों की गोलाई को ...

और तब तुम देखोगे कि इस तथाता से दो वृत उत्पन्न हो रहे हैं: एक है निर्वाण का, दूसरा है संसार का। तथाता के इस समुद्र में दो तरह कि लहरे उठ रही है: एक है पदार्थ की, दूसरी है मन की–परंतु दोनों लहरें हैं। और तुम दोनों के पार हो। अब न कोई विभाजन रहा और न ही कोई अंतर। सत्य न मन है, न पदार्थ, सत्य न संसार है, न निर्वाण, सत्य न पवित्र है न अपवित्र–सारे अंतर विलीन हो गए होते है।

यदि तुम परम सचाई में अपना मन लेकर आओ, यह तुम्हें परम सचाई को न देखने देगा। यह अपने-अपने असत्यों में से कुछ अपने साथ ले आएगा।

मैं एक घटना पढ़ रहा था। इस पर जरा ध्यान करो–

एक व्यक्ति मर कर स्वर्ग के मोती-जड़े द्वार के पास आया, द्वारपाल के पूछे जाने पर उसने अपना नाम बताया, 'चार्ली झपट्टा वाला।'

'मैं नहीं समझता कि तुम्हारे यहां आने की हमें कोई खबर है ', उसे सूचित किया गया। 'पृथ्वी के जीवन में तुम्हारा व्यवसाय क्या था?'

'कबाड़ीवाला,' आगंतुक ने कहा।

'अच्छा,' देवदूत ने कहा, 'मैं अंदर जाऊंगा और पूछताछ करके आपको बाताऊंगा।'

जब वह वापस लौटा, चार्ली झपट्टावाल गायब हो चुका था–और साथ ही मोती-जड़े द्वार भी।

चार्ली झपट्टावाला-कबाड़ीवाला...तुम अपनी आदतें एकदम अंत तक ले जाते हो।

शायद जहां तक मनुष्य-निर्मित संसार का संबंध है, मन उपयोगी है। शायद जहां तक पदार्थ के संबंध में विचार का संबंध है, मन उपयोगी है। पर इस मन को तुम्हारी सच्चाई के अंतर्तम केंद्र तक ले जाना खतरनाक है। वहां यह बाधा है।

मुझे यह बात इस तरह से कहने दो: विज्ञान के जगत में तो संदेह उपयोगी है–सच तो यह है कि बिना संदेह के विज्ञान निर्मित ही नहीं होता। संदेह तो विज्ञान की विधि है, क्योंकि विज्ञान इतना प्रभावी हो गया है, अतीत में इतना सफल रहा है, ऐसा जान पड़ता है कि विज्ञान जिज्ञासा की एकमात्र विधि हो गया है। इसलिए जब तुम भीतर जाते हो, तब भी तुम संदेह के साथ ही जाते हो। यह एकदम से सही नहीं है। जब तुम बाहर जा रहे होते हो, तब संदेह तुम्हारे लिए सहायक है, तुम्हारे मार्ग का मार्ग-दर्शक बन जाता है, परंतु अगर तुम भीतर जाना चाहते हो, संदेह कम और कम और कम करते जाओ, और एक क्षण ऐसा भी आने दो जब संदेह बचे ही नहीं। अ-संदेह की उस दशा में, तुम केंद्र पर होगे। यदि तुम भीतर के जगत को जानना चाहते हो, श्रद्धा वहां उपयोगी साबित होगी।

अतीत में पूरब में यही तो घटना घटी है। हमने श्रद्धा के द्वारा आंतरिक सच्चाई को जाना, इसलिए हमने सोचा कि श्रद्धा के साथ हम विज्ञान को भी निर्मित कर सकते है। पूरब में हम किसी महान विज्ञान का निर्माण न कर सके–कुछ ऐसा जिसकी चर्चा की जा सके–कुछ खास नहीं। क्योंकि हमने श्रद्धा द्वारा भीतर प्रवेश किया हमने सोचा कि श्रद्धा ही जिज्ञासा की एकमात्र विधि है–यह बात भ्रम थी। हमने बाहर की वस्तुगत चीजों पर भी श्रद्धा का प्रयास किया और हम असफल हुए। जहां तक विज्ञान का संबंध है, पूरब असफल रहा है। पश्चिम संदेह द्वारा विज्ञान में सफल हुआ है, अब वही भ्रम वहां भी है, वे सोचते हैं कि संदेह ही जानने का एकमात्र सही

और युक्तिसंगत उपाय है। परंतु ऐसा कदापि नहीं है। अब अगर तुम संदेह का उपयोग आंतरिक जगत में करो, तुम इतने ही सुनिश्चित ढंग से असफल होओगे जितना कि पूरब वैज्ञानिक विकास में असफल हुआ है।

वस्तुओं के विषय में संदेह अच्छा है, आत्म चेतनता के विषय में श्रद्धा अच्छी है। संदेह अच्छा है यदि तुम अपने केंद्र से परे हट रहे हो, परिधि की और श्रद्धा अच्छी है यदि तुम परिधि से दूर हट रहे हो अपने केंद्र की ओर। श्रद्धा और संदेह दो पंखों की भांति हैं।

भविष्य में जो मानवता पैदा होने वाली है, वह संदेह और श्रद्धा दोनों एक साथ करने में सक्ष्म होगी। वह सर्वोत्तम संश्लेषण होगा: पूरब और पश्चिम का संश्लेषण, विज्ञान और धर्म का संश्लेषण। जब एक व्यक्ति संदेह और श्रद्धा दोनों करने में समर्थ होता है–जब संदेह की आवश्यकता होती है, जब वह बाहर जा रहा होता है, वह संदेह करता है, और जब श्रद्धा की आवश्यता होती है, वह संदेह को अलग उठा कर रख देता है। और वह उस समय पूर्ण श्रद्धा से उसमें डूब जाता है, उस में उतर जाता है। और जो व्यक्ति दोनों में ही समर्थ है, वह दोनों के पार हो जाते है। निश्चय ही दोनों के पार, क्योंकि वह दोनों का उपयोग करेगा और वह जानेगा कि 'मैं दोनों से अलग हूं।' यही अनुभवातितता है, यह पार हो जाना महान स्वतंत्रता है। ठीक यही तो निर्वाण है: महान स्वतंत्रता।

इन सूत्रों पर ध्यान लगाओ। सरहा सरल शब्दों में महान बातें कह रहे हैं। वह अपनी महान अंतदृष्टि राजा पर बरसा रहा था। तुम भी इस महान अंतदृष्टि में सहभागी हो सकते हो। सराह के साथ तुम मानवीय सचाई में बहुत गहराई तक जा सकते हो।

और सदा स्मरण रखना: परम सच्चाई तक जाने का यही एक मात्र मार्ग है, क्योंकि वही तो तुम हो। कोई भी वही से तो चल सकता है जहां कि वह है। काम तुम्हारी वास्तविकता है, समाधिस्थ इसके द्वारा हो सकते हो। जीवन के उस परम तक पहुंच सकते हो, सच उसी पूर्ण समाधान का नाम समाधि है, जहां अब कोई संशय नहीं बचा सब शंका निवारण हो गई। पहुंच गए अपने घर, लौट आए तुम अपनी पूर्णता में, विलय हो गई बूंद सागर में। देह तुम्हारी वास्तविकता है, देहातितता इसके द्वारा प्राप्त की जा सकती है। बाहरीपन तुम्हारी वास्तविकता है। भीतरता इसके द्वारा प्राप्त की जा सकती है। बस जरा सा परिवर्तन तुम्हारी आंखें जो अभी बाहर की और ही देख रही है, उन्हें अंदर की तरफ मोड़ना ही तो है। और उन्हें भीतर की और मोड़ा जा सकता है।

आज इतना ही

आठवां प्रवचन

प्रेम के प्रति सच्चे रहो

(दिनांक-28 अप्रैल 1977 ओशो आश्रम पूना।)

सुत्र:

पहला प्रश्न: ओशो, मैं एक मेढक हूं: मैं जानता हूं कि मैं एक मेढक हूं, क्योंकि मैं धुंधले, गहरे पानी में तैरना और चिपचिपी कीचड़ में उछलना-कूदना पसंद करता हूं। और यह मधु क्या होता है? यदि एक मेढक अस्तित्व की एक अनादृत दशा में हो सके, क्या वह एक मधुमक्खी बन जाएगा?

निश्चय ही! मधुमक्खी बन जाना हर किसी की संभावना है। हर कोई मधुमक्खी हो जाने में विकसित हो सकता है। एक अनावृत, जीवंत, स्वस्फूर्त जीवन, क्षण-क्षण वाला जीवन, इसका द्वार है, इसकी कुंजी है। यदि कोई ऐसा जी सके कि वह जीना अतीत से न हो, तब वह मधुमक्खी है, और तब चारों तरफ मधु ही मधु है।

'मेढक' से सराह का तात्पर्य एक ऐसे व्यक्ति से है जो अतीत से जीता है, जो अपनी अतीत की स्मृतियों के पिंजड़े में कैद रहता है। जब तुम अतीत में जीते हो, तुम बस जीने का आभास मात्र देता है। वास्तव में तुम जीते नहीं हो। जब तुम अतीत में जीते हो, तुम एक यंत्र की भांति जीते हो। एक मनुष्य की भांति नहीं। जब तुम अतीत से जीते हो, यह जीना एक पुनरावृति होता है। एक नीरस पुनरावृति–तुम जीवन और अस्तित्व के आह्लाद से, आनंद से चूक रहे होते हो। वहीं तो 'मधु' है: जीवन का आनंद, बस यहां-अभी होने का माधुर्य, बस होने में समर्थ हो पाने की मधुरता। वह आनंद ही मधु है...और चारों तरफ लाखों फूल खिल रहे हैं। सारा अस्तित्व फूलों से भरा है।

मैं जानता हूं कि किसी मेढक को यह बात समझा पाना कठिन है। प्रश्न सही है: 'और यह मधु क्या होता है?' मेढक ने इसके विषय में कभी जाना नहीं होता। और वह ठीक उसी पौधे की जड़ के समीप रहता है, जहां कि फूल खिलते हैं, और मक्खियाँ मधु एकत्रित करती है, पर वह कभी उस आयाम में गया ही नहीं है।

यदि तुम जानते हो कि मधु को कैसे एकत्रित किया जाता है, यदि तुम जानते हो कि आनंदित कैसे हुआ जाए, तो तुम एक सम्राट हो जाते हो। यदि तुम यह नहीं जानते, तुम एक भिखारी बने रहते हो...यहां गीत गाते यह पक्षी–मधु बरसा रहे है! मधुमक्खी तो इकट्ठा कर लेगी, परंतु मेढक इससे चूक जाएगा। यह आकाश, यह सूरज, तुम्हारे चारों और के यह लोग–हर कोई मधु के अनंत स्रोतों को लिए फिर रहा है। हर कोई माधुर्य और प्रेम से प्रवाहित हो रहा है। यदि तुम इसे एकत्रित करना और इसका स्वाद लेना जानते हो, तब यह आपके चारों और बिखरा पड़ा है, हर जगह है। बस तुम्हें मधु एकत्रित करने की कला जाननी होगी।

परमात्मा हर स्थान पर हैं, और इन्हें समझा जाना चाहिए, और ये बातें बड़ी खतरनाक हैं। पहली बात: मधुमक्खी कभी भी किसी भी फूल से आसक्ति नहीं रखती। यह सर्वाधिक गहन रहस्य है–मधुमक्खी का किसी भी फूल से बंधन नहीं होता। इसके पास कोई आणविक परिवार नहीं होता–न पत्नी, न पति। यह बस वहीं चली जाती है, जहां कहीं भी कोई फूल इसे निमंत्रण देता है। इसके पास स्वतंत्रता है।

मनुष्य परिवार में सीमित हो गया है। तंत्र परिवारवाद के बहुत विरोध में है–और उसकी अंतर्दृष्टि महान है। तंत्र कहता है कि यह परिवार ही है जिसके कारण प्रेम पूरी तरह से क्षतिग्रस्त हो गया है। लोग एक दूसरे से अनुरक्त हो रहे हैं। लोग एक दूसरे पर मालकियत करने की चेष्टा कर रहे हैं–आनंद उठाने की चेष्टा नहीं मालकियत की चेष्टा। मालकियत ही आनंद बन जाता है। एक बड़ा परिवर्तन आ गया है: तुम एक स्त्री के साथ

होते हो उसका आनंद उठाने के लिए नहीं, तुम उस संग का आनंद नहीं उठा रहे, तुम अगर एक पुरूष के साथ होती हो उस पुरूष का आनंद उठाने के लिए नहीं, आनंद तो उसका तुम जरा भी नहीं उठा रही होती हो—पर उस पर मालकियत के लिए। हमारे बीच में राजनीति प्रवेश कर गई है, महत्वाकांक्षा प्रवेश कर गई है, अर्थ शास्त्र प्रवेश कर गया है। प्रेम तो अब वहां दिखाई ही नहीं देता।

प्रेम किसी मालकियत को नहीं जानता। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम लम्बें समय तक किसी एक स्त्री के साथ नहीं रह सकते—तुम जन्मों-जन्मों एक साथ रह सकते हो, बस शर्त यह है कि परिवार वहां न हो। 'परिवार' से मेरा तात्पर्य है कानूनी मालकियत परिवार से मेरा आशय है 'मांग'। पति-पत्नी से तकाजा कर सकता है, वह कह सकता है, 'तुम मुझे प्रेम देने के लिए बाध्य हो।' कोई भी किसी को भी प्रेम देने के बाध्य नहीं है, पति-पत्नी को उसे प्रेम देने के लिए मजबूर कर सकता है। जब कोई भी किसी को प्रेम देने के लिए मजबूर करता है, प्रेम तो वहां से अदृश्य हो जाता है—तब वहाँ केवल दिखावा मात्र रह जाता है। तब पत्नी एक कर्तव्य पूरा कर रही होती है। कर्तव्य प्रेम नहीं है। प्रेम तो मधु है: कर्तव्य सफेद शक्कर है। देर-सवेर तुम मधुमेह से पीड़ित होओगे। यह जहर है, यह शुद्ध जहर है—सफेद शक्कर। हां, माना की इसका स्वाद वैसा ही है, कुछ-कुछ मधु जैसा ही। परंतु यह मधु कदापि नहीं।

परिवार बहुत अधिकारात्मक है। परिवार विरोध में ही मनुष्य के, विरोध में है समाज के, यह विरोध में है सार्वलौकिक भाई चारा परिवार की सीमा तुम्हारी कैद है। तुम शायद इसे महसूस न करो क्योंकि तुम इसके आदी हो गए हो।

किसी देश की सीमा पार करते समय, क्या तुम अपमानित अनुभव नहीं किये गए हो? तब तुम जानते हो कि देश तुम्हारा देश न था—यह तो एक बड़ा कारागृह था। बाहर जाते समय या अंदर आते समय तुम यह बात जानोगे—जांच-चौकी पर, हवाई अड्डे पर। चुंगी से गुजरते समय ही तुम यह जान सकोगे कि तुम एक कैदी हो, स्वतंत्रता तो झूठ थी, मात्र बकवास एक दिखावा मात्र। पर किसी देश में रहते यदि तुम उसकी सीमा को कभी पार ही न करो, फिर यह बात तुम कभी न जान पाओगे। तुम हमेशा यही सोचोगे कि तुम तो स्वतंत्र हो। तुम स्वतंत्र नहीं हो! हां, रस्सी लंबी जरूर थी। तुम इधर-उधर घूम सकते थे। परंतु स्वतंत्रता बिलकुल भी नहीं।

और यहीं बात परिवार के साथ भी है, यदि तुम सीमा को पार करने लगो तब तुम जानोगे कि तुम कैद में हो। यदि तुम अपनी पड़ोसन से प्रेम करने लगो तो तुम्हारा पूरा परिवार इसके विरोध में होगा। यदि तुम किसी अन्य स्त्री से प्रेम करने लगो, तुम्हारी पत्नी ही तुम्हारी शत्रु हो जाएगी। यदि तुम किसी अन्य पुरुष के साथ नृत्य करने लगो, तुम्हारा पति तुम्हारे ऊपर पागल हो जाएगा। उसे गुस्सा भी आ सकता है, वह तुम्हें मार भी सकता है। और अभी उस दिन ही तो आपसे कह रहा थी कि मैं तुम से बहुत प्यार और विश्वास करता हूं। 'मैं तुम्हारे लिए मर भी सकता हूं।'

जरा तुम सीमा पर करके तो देखो! और तुम जान जाओगे कि तुम एक कैदी हो। सीमा कभी न पार करो और तुम इसी आनंदपूर्ण अज्ञान में हमेशा रहोगे कि सब-कुछ ठीक-ठाक है।

यहीं तो आसक्ति है, यह अधिकारत्व ही है, जिसने बहुत से फूलों तक जाने, बहुत से फूलों का स्वाद लेने की तुम्हारी क्षमता को नष्ट कर दिया है। जरा उस मधुमक्खी की सोचो जो कि केवल एक ही फूल से मधु इकट्ठा किए जा रही हो। वह मधु बहुत समृद्ध नहीं हो सकता। समृद्धि तो भिन्नता से आती है। तुम्हारा पूरी जीवन विरस पूर्ण हो गया है, यह समृद्धि नहीं है।

लोग मेरे पास आते है, और वे कहते हैं, 'मैं बोर हो गया हूं! मैं क्या करूं।' और बोर हो जाने का हर संभव काम वे कर रहे हैं और वे सोच रहे होते हैं कि बोरियत कहीं बाहर से आ रही है। अब तुम एक ऐसी स्त्री के साथ

रह रहे हो जिसे कि तुम अब प्रेम नहीं करते पर तुम्हारे धर्मग्रंथ कहते हैं, एक बार तुमने शपथ ले ली, अब वह शपथ तुम्हें पूरी तरह से निभानी ही होगी, पूरी करनी ही होगी शपथ वाले आदमी रहो! एक बार तुम वचन भर लिया, अब वचन हारी तुम नहीं हो सकते, तुम्हें उसे निभाना ही होगा। अब यदि तुम बोर होते हो, कोई हैरानी की बात नहीं है, प्रेम गायब हो गया है।

यह इसी तरह की बात है, जैसे कि तुम एक ही भोजन रोज खाने के लिए दिया जाए, कितने दिन, तुम उसका स्वाद उठा सकते हो? पहले दिन जरूर तुमने उसका आनंद लिया हो, हां, दूसरे दिन, तीसरे दिन, बस फिर अब तुम्हारी सीमा समाप्त हो जाती है, तुम पगला भी सकते हो। फिर वहीं सदा-सदा के लिए...फिर तुम बोर हो जाना शुरू कर दोगे। और चूंकि आदमी बोर होता रहता हैं, वह अपने मन के भटकाने के हजार तरीके खोज लेता है, टी.वी. के सामने छह-छह घंटे अपनी कुर्सी पर चिपका बैठा रहता है। क्या मूढ़ता है! या सिनेमा देखने चला जाता है, रेडियो सुनने लग जाता है। या फिर अखबार पढ़ने लग जाता है। या कलबो में चला जाता है, जहां तुम जैसे-तैसे आदमी उस बोरियत से बचते रहने की कोशिश करता रहता है। संबंध के कारण उत्पन्न हुई है।

जरा इसे समझने की चेष्टा करें।

तंत्र कहता है: मधुमक्खी बनो–स्वतंत्र बनो! तंत्र यह नहीं कहता कि यदि तुम किसी स्त्री से प्रेम करते हो तो उसके साथ मत रहो–उसके साथ रहो! पर तुम्हारी प्रतिबद्धता प्रेम के प्रति हो, स्त्री के प्रति नहीं, यह एक आधारभूत अंतर है। तुम प्रेम के प्रति प्रतिबद्ध होते हो, तुम आनंद के प्रति प्रतिबद्ध! जब तुम्हारा प्रेम के प्रतिबद्ध होते हो, जब प्रेम अदृश्य हो गया हो, जब आनंद तिरोहित हो गया हो, तब धन्यवाद कहो और आगे बढ़ जाओ। जीवन में हर चीज के साथ ऐसे ही होना चाहिए। यदि तुम एक चिकित्सक हो और तुम अपने कार्य से ऊब गए हो, तब तुम्हें इसे किसी भी क्षण छोड़ देने में समर्थ होना चाहिए–उसकी कीमत कुछ भी हो। खतरे के साथ, जीवन साहसिक कर्म बन जाता है।

और जीवन में हर चीज के साथ ऐसे ही होना चाहिए। यदि तुम एक चिकित्सक हो और तुम अपने कार्य से ऊब गए हो, तब तुम इसे किसी भी क्षण छोड़ देने में समर्थ होना चाहिए—फिर चाही उसकी कीमत कुछ भी क्यों न हो। खतरे के साथ, जीवन साहसिक कर्म बन जाता है। पर तुम सोचते हो, 'अब मैं चालीस का, पैंतालीस को हो गया हूं, अब मैं यह काम कैसे छोड़ सकता हूं?' और आर्थिक रुप से भी यह काम इतना अच्छा चल रहा है।...परंतु सच मानों तो अध्यात्मिक और मानसिक रुप से तुम मर रहे हो। तुम धीरे-धीरे आत्म-हत्या कर रहे हो। तब यह एकदम ठीक है: यदि तुम स्वयं को नष्ट करना और बैंक-बैलेंस को बचाना चाहते हो, तब तो यह बिलकुल ही सही है। परंतु जिस क्षण भी तुम अनुभव करो कि यह कार्य अब संतुष्टि प्रदान करने वाला कार्य न रहा, इससे बाहर निकल आओ। यह तंत्र की क्रांति है। जिस क्षण तुम देखो कि कोई चीज तुम्हें आकर्षक न रह गई है, किसी चीज ने मोहित करने का प्रफुल्लित का अपना गुण खो दिया है। अब उस में कोई आकर्षण नहीं रहा। कोई जादुई बात नहीं रही, तब तुम उससे मत चिपको। तब तुम उससे हाथ जोड़ कर कह दो, 'मुझे खेद है।' तब कृतज्ञता महसूस करो अतीत के प्रति, उसी व्यक्ति से, उस कार्य से, किसी भी चीज से जो कुछ भी मिला है उस सब के प्रति कृतज्ञता महसूस करो परंतु भविष्य के प्रति खुले रहो। यही अर्थ है एक मधुमक्खी होने का।

और सराह कहता है: केवल मधुमक्खी ही जानती है कि हर फूल मधु से भरा है।

पर मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विपरीत अति पर चले जाओ—ऐसे लोग हैं जो विपरीत अति पर चले जा सकते है। और आदमी इतना मूढ़ है...अभी उस दिन ही मैं जर्मनी में एक कम्यून के विषय में पढ़ रहा था: ऐक्शन एनालिसिस कम्यून, अब उस कम्यून में यह नियम है कि तुम उसी स्त्री के साथ लगातार दो रातें नहीं सो सकते।

अब यह बात फिर से मूढ़ता पूर्ण है। ऐसा लगता है कि मनुष्य इतना मूढ़ है कि तुम उसकी सहायता कर ही नहीं सकते। यदि तुम लगातार दो रात एक स्त्री के साथ सोते हो, कम्यून तुम्हें बाहर फेंक देता है।

अब एक अति गलत साबित हुई है—यह दूसरी अति है...यह भी गलत साबित होगी। पहली अति दमनात्मक थी: तुम्हें वर्षों तक, अपना सारा जीवन भर उसी स्त्री के साथ सोना है। उसी पुरुष के साथ सोना है। बिना यह जाने कि क्यों, क्यों तुम ऐसा किए जाते हो। समाज यह कहता है, राज्य यह कहता है, पुरोहित और राजनेता यह कहते हैं। कि तुम्हारे आणविक परिवार के स्थायित्व पर ही सारा समाज निर्भर है। यह विक्षिप्त समाज विक्षिप्त परिवार ही निर्भर है; विक्षिप्त परिवार ही वह इकाई है, वह ईंट है जिससे सारा कारागृह बना है।

विक्षिप्त राजनेता विक्षिप्त परिवार पर निर्भर हैं। विक्षिप्त धर्म विक्षिप्त परिवार पर निर्भर हैं। वे तुम्हें दबाते आए हैं। वे तुम्हें उसी स्त्री उसी पुरुष से, उस बंधन से तुम्हें दूर हटने नहीं देते। वे कहते हैं कि तुम्हें इसके साथ ही रहना है, वरना तुम अपराधी हो, पापी हो, वे तुम्हें नरम और नरक-अग्नि से बहुत भयभीत करते रहते हैं।

अब दूसरी अति, कि तुम उसी स्त्री के साथ दूसरी रात भी नहीं रह सकते। यह भी दमन है। यदि तुम अगली रात भी उसी स्त्री के साथ रहना चाहो, तो...? यह भी दमन होगा। पहली अति के साथ प्रेम तो अदृश्य हो गया। अब वहां एक ऊब प्रवेश कर गई। दूसरी के साथ घनिष्ठता अदृश्य हो जाएगी, और तुम बड़ा अलगाव महसूस करोगे, एक द्वीप की भांति। तुम अपनी जड़ें कहीं महसूस न करोगे।

तंत्र कहता है: ठीक मध्य में मार्ग है। उसी स्थान में रहो, उसी व्यक्ति के साथ रहो, उसी धंधे में रहो, जहां तुम आनंदित हो रहे हो—वरना उसे बदल दो। यदि तुम अपना सारा जीवन एक स्त्री का आनंद ले सको, यह सुंदर है, यह अत्यंत सौंदर्य पूर्ण है। तुम सौभाग्य शाली हो क्योंकि तब घनिष्ठता बढेगी, एक दूसरे में तुम्हारी जड़े स्थान ग्रहण करेंगी, तुम्हारे अस्तित्व अन्तर्गुथित हो जाएगें। धीरे-धीर तुम दोनों एक व्यक्ति, एक आत्मा, हो जाओगे और यह एक महान अनुभव है! इसके द्वारा तंत्र को सर्वोच्च शिखर जान लिया जाएगा। पर यह परिवार नहीं है—यह प्रेम-संबंध है। तुम प्रेम की गहराई में ही चले गए हो।

अब इस तरह के लोग—इस तरह के कम्यून, बहुत खतरानाक है समाज और आध्यात्मिक दोनों के लिए। वह सोच रहे है कि वे कार्य कर रहें हैं। वह तो एक प्रतिक्रिया मात्र है। समाज ने कोई गलत कार्य किया है, अब वे बहुत ज्यादा प्रतिक्रिया कर रहे है और विपरीत अति पर चले जा रहे है—जो कि फिर गलत होगी। आदमी को कहीं न कहीं संतुलन में होना ही होगा। सबसे पहली बात ये समझ लेनी चाहिए।

दूसरी बात: सराह कहता है, अस्तित्व की ढ़ांचा-रहित, अनाकृत अवस्था। यदि तुम आदत से जीते हो, तुम जीवन का आनंद नहीं ले सकते क्योंकि आदत तो पुराने की है। कैसे तुम उसी चीज को बार-बार आनदं ले सकते हो? तुम्हारा मन तो वही का वही रहता है। इसलिए ऊब होगी ही। तुम स्त्री को और पुरुष को बदल भी ले सकते हो, पर तुम तो वही हो, इसलिए पचास प्रतिशत तो सदा वही का वही ही रहता है। जीवन एक ऊब हो गया है।

इसलिए पहली बात तंत्र कहता है: कभी भी किसी व्यक्ति विशेष से ग्रस्त न रहो, व्यक्तित्वों से मुक्त रहो —तब तुम एक सौ प्रतिशत स्वतंत्र हो, एक मधुमक्खी की भांति। तुम कहीं भी उड़ जा सकते हो। तुम्हें कुछ नहीं रोकता, तुम्हारी स्वतंत्रता चरम है।

अपने अतीत के ढांचें में मत बने रहो। आविष्कार-कुशल होने की, नव-प्रवर्तक होने की चेष्टा करो। साहस-कर्ता बनो, अन्वेषक बनो। नए ढ़ंगों से जीवन का आनंद लो, इसका आनंद लेने के नए उपाय खोजो। सच में तो, उसी पुराने काम को करने के नए उपाय खोजो, नए ढंग खोज लो। संभावनाएं अनंत हैं।

तुम बहुत से द्वारों से उसी अनुभव तक पहुंच सकते हो, और हर द्वार तुम्हें एक नया दृश्य प्रदान करेगा। तब जीवन समृद्ध होता है। माधुर्य होता है, आनंद होता है, उत्सव होता है, जीवन नित नवीन बन जाता है। यही तो है जीवन का मधु। मेंढक के ढांचे में ही सीमित मत रह जाओ। हां, मेंढक थोड़ा बहुत छलांग लगा लेता है, यहां-वहां थोड़ा सा कूद-फांद लेता है। पर वह उड़ नहीं सकता। और न ही वह जान सकता है, फूल की दिव्य सुगंध को। सराह का मधु से जो तात्पर्य है वह परमात्मा के लिए एक काव्यात्मक रुपक है, कि हर कोई ईश्वरत्व को लिए है।

लोग मेरे पास आते हैं, और वह कहते हैं: 'हम परमात्मा को जानना चाहते है—परमात्मा कहां हैं?' अब यह प्रश्न ही अर्थ हीन है? वह कहां नहीं है? तुम पूछते हो कि वह कहां है, तुम्हें बिलकुल ही अंधा होना चाहिए। क्या तुम उसे देख नहीं सकते हो? केवल वही तो है, वृक्षों में, पक्षीयों में, पशुओं में, पहाड़ों में, जल में, नब में, सब जगह वहीं तो है। एक स्त्री में एक पुरुष में, पिता में माता में, बेटे में कहां नहीं हैं। उसी ने तो इतने सारे रुप ले लिए है। हर तरफ वही तो है। वह हर जगह से तुम्हें, पुकार रहा है, और तुम सुनते ही नहीं हो। तुमने अपनी आंखें हर तरफ से बंद कर ली है। तुमने अपनी आंखों पर पट्टियां बाँध ली है। तुम बस किसी और देखते ही नहीं हो।

तुम एक बहुत ही संकरे ढंग से, बड़े ही केंद्रीभूत तरीके से जी रहे हो। यदि तुम धन की और देख रहे होते हो, तुम बस धन की तरफ देखते हो; फिर तुम किसी और तरफ नहीं देखते हो। यदि तुम शक्ति की तलाश में होते हो, तुम केवल शक्ति की और ही देखते हो, तुम किसी और तरफ नहीं देखते। और स्मरण रखना : धन में परमात्मा नहीं है—क्योंकि धन तो मनुष्य निर्मित है, और परमात्मा तो मनुष्य निर्मित हो ही नहीं सकता। जब मैं कहता हूं कि परमात्मा हर जगह है, स्मरण रखना कि उन चीजों को, जिन्हें मनुष्य ने निर्मित किया है, इसमें शामिल नहीं करना है। परमात्मा मनुष्य-निर्मित नहीं हो सकता। परमात्मा धन में नहीं है। धन तो मनुष्य का एक बड़ी चालाकी भरा आविष्कार है। और ईश्वर शक्ति में भी नहीं है, वह भी मनुष्य का एक पागलपन है। किसी पर अधिपत्य जमाने का विचार ही विक्षिप्त है। यह विचार ही कि 'मैं सत्ता में रहूं और दूसरे सत्ता-विहीन रहे,' एक पागल आदमी का विचार है, एक विनष्टकारी विचार है।

परमात्मा राजनीति में नहीं है और परमात्मा धन में भी नहीं है। न ही परमात्मा महत्वकांक्षा में ही है। लेकिन परमात्मा हर उस चीज में है, जहां मनुष्य ने उसे नष्ट नहीं किया। जहां मनुष्य ने कोई अपनी ही रचना नहीं कि है। आधुनिक जगत में यह सर्वाधिक कठिन बातों में से एक है। क्योंकि चारों तरफ से तुम इतनी मनुष्य-निर्मित चीजों से धिरे हुए हो। क्या तुम बस इस तथ्य को देख नहीं पाते?

जब तुम एक वृक्ष के समीप बैठे होते हो, परमात्मा को महसूस करना आसान है। जब तुम कोलतार की बनी सड़क पर बैठे होते हो, तुम उस कोलतार की सड़क पर परमात्मा को वहां न पाओगे। यह बहुत सख्त है। तब तुम किसी आधुनिक शहर में होते हो, चारों और बस सीमेंट और कंक्रीट की इमारतें होती हैं, इस कंक्रीट और सीमेंट के जंगल में तुम परमात्मा को नहीं खोज सकते। तुम इसे नहीं महसूस कर सकते। क्योंकि मनुष्य निर्मित चीजें विकसित नहीं होती, यही तो सारी समस्या है। मनुष्य निर्मित चीजें विकसित नहीं होती। वे प्राय मृत है। उनमें कुछ जीवन नहीं होता। ईश्वर निर्मित चीजें विकसित होती है, पहाड़ तक बढ़ते है। हिमालय अभी भी बढ़ रहा है। ऊंचे और ऊंचे होता जा रहा है। एक वृक्ष उगता है, एक बच्चा विकसित होता है।

मनुष्य-निर्मित चीजें बढ़ती नहीं, महानतम चीजे भी। एक पिकासो का चित्र भी कभी बढ़ेगा नहीं। तब सीमेंट, कंक्रिट के जंगल तो क्या बढ़ेगें? बीथो वन का संगीत तक कभी विकसित नहीं होगा, तब प्रोधौगिकी का, मनुष्य-निर्मित यंत्रों का तो कहना ही क्या?

देखो! जहां कहीं भी तुम वृद्धि देखो, वहां ईश्वर है—क्योंकि केवल ईश्वर ही विकसित होता है, कुछ और नहीं। हर चीज में बस ईश्वर ही बढ़ता है। जब वृक्ष में कोई पत्ता उग रहा होता तो वह ईश्वर ही है। जब कोई पक्षी गीत गा रहा होता है, तब ईश्वर ही गा रहा है। जब कोई पक्षी उड़ान भर रहा होता है, तब परमात्मा उड़ान भर रहा होता है। जब एक छोटा बच्चा खिलखिलाकर हंस रहा होता है तब परमात्मा ही खिलखिला रहा होता है। जब तुम किसी स्त्री या पुरूष की आंखों से आंसुओं को बहते देखते हो, यह ईश्वर ही रो रहा होता है।

जहां कहीं भी तुम जीवंतता पाओं, हां; ईश्वर वहीं है। ध्यान पूर्वक सुनो। समीप आओ। ध्यान पूर्वक महसूस करो। सावधान हो जाओ। तुम पवित्र भूमि पर हो।

तंत्र कहता है: यदि तुम अपनी आंखों की पट्टी को गिरा दो, 'अनाकृत जीवन शैली' से यहीं तो तंत्र का आशय है...यदि तुम अपनी आंखों से धारणाओं को गिरा दो, उन्हें निर्मल हो जाने दो, उनको सजग हो जाने दो तब देखो अचानक तुम पाओगे कि तुम सभी दिशाओं में देख सकते हो। तुम्हें कुछ विशिष्ट दिशाओं में ही देखने के लिए समाज द्वारा बहकाया गया है। समाज ने तुम्हें एक गुलाम बना डाला है।

एक बड़ा षड़यंत्र है। हर छोटा बच्चा क्षतिग्रस्त कर दिया जाता है। तुरंत, जिस क्षण वह पैदा होता है—समाज उसे विकृत करना आरंभ कर देता है। इसलिए इससे पहले कि वह सजग हो सके, उसे गुलाम और अपंग बना दिया जाता है। हजार तरीके से अपंग। जब कोई व्यक्ति अपंग होता है, उसे निर्भर रहना ही पड़ेगा। परिवार पर, समाज पर, राज्य पर, सरकार पर, पुलिस पर, सेना पर—उसे हजार चीजों पर निर्भर रहना पड़ेगा। और उस निर्भरता के कारण वह सदा गुलाम ही बना रहेगा। वह कभी भी एक स्वतंत्र व्यक्ति नहीं हो सकेगा। इसलिए समाज अपंग बना देता है—इतने सूक्ष्म तरीकों से अपंग बना देता है—और तुम्हें पता भी नहीं चलता। इससे पहले कि तुम कुछ जानने में समर्‌थ हो सको, तुम अपंग बना दिए जाते हो।

तंत्र कहता है: पुन: स्वास्थ्य प्राप्त कर लो। समाज ने जो कुछ भी तुम्हारे साथ किया है, उसे अनिकया कर दो! धीरे-धीरे सजग होते जाओ और समाज ने जो संस्कार जबरदस्ती तुम्हारे ऊपर छोड़े है, उन्हें अनिकया करते जाओ—और अपना जीवन जीना प्रारंभ करो। यह तुम्हारा जीवन है, इससे किसी और को क्या लेना-देना है। यह पूरी तरह से तुम्हारा जीवन है। यह तुम्हें ईश्वर का एक उपहार है, तुम्हारे लिए एक व्यक्तिगत उपहार, जिसके ऊपर तुम्हारा नाम लिखा है। तुम इसका आनंद लो, तुम इसे जियो! और इसके लिए यदि तुम्हें बहुत कीमत भी चुकानी पड़े, यह कीमत चुकाने योग्य है, तुम उसके लिए तैयार रहो। अपने जीवन के लिए यदि तुम्हें अपना जीवन भी देना पड़े, वह कुछ भी नहीं, वह पूर्णत: ठीक है।

तंत्र बड़ा विद्रोहात्मक है। इसका भरोसा एक बिलकुल ही भिन्न तरह के समाज में है, ऐसा समाज में जो अधिकारात्मक नहीं है। जो धन-उन्मुख नहीं होगा। जो सत्तामुखी नहीं होगा। इसका भरोसा एक भिन्न तरह के परिवार में है। जो अधिकारात्मक नहीं होगा, और जो जीवन-नकारात्मक नहीं होगा। हमारे परिवार तो जीवन-नकारात्मक होते है।

एक बच्चा पैदा होता है और समस्त परिवार उसके जीवन के सारे आनंद को मार डालने की चेष्टा करता है। जब कभी भी बच्चा आनंदित होता है, वह गलत होता है; और जब कभी भी वह दुखी, लम्बा चेहरा लिए होता है, वह अति अज्ञाकारी, और सुशील बन जाता है। पिता कहता है: 'अच्छा है समझदार है।' बहुत अच्छा बच्चा है, किसी को तंग नहीं करता। मां भी बहुत खुश होती है, इसे पालने के लिए तो मैं जरा भी तंग नहीं हुई,

मुझे पता ही नहीं चला यह बहुत ही सीधा था। जब भी बच्चा अधिक जीविंत होगा, खतरानाक ही होगा, समस्या खड़ी करता ही रहेगा। तब हमारे सामने एक खतरा खड़ा हो जाता है, हम उसके आनंद को मारने लग जाते है। उसको अपंग बनाने की चेष्टा शुरू कर देते है।

और मूलभूत रूप से सारा आनंद कामुकता से संबंधित होता है। और समाज एंव परिवार काम से इतने भयभीत होते है कि वे बच्चों को कामुकतापूर्ण आनंदित होने की अनुमति दे नही सकते—और वही सब आनंद का आधार है। वे बड़े प्रतिबंधी हैं: बच्चों को अपने यौनांग छूने तक नहीं देते। वे उसे उसके साथ खेलने तक नहीं देते। पिता भयभीत है, मां भयभीत है, हर कोई भयभीत है। उनका भय उनके माता-पिता से आता है, वे विक्षिप्त है, बच्चें को डर रहे होते है, गुप्त अंगों को छेड़ेगे तो बीमार हो जाओगे। बच्चा डर जाता है। सहम जाता है।

क्या तुम यह सब देख नहीं रहे हो? एक बच्चा जब अपने गुप्तअंगों से खेल रहा होता है, तुरंत हम उसे डांट देते है, 'रूक जाओ! ऐसा फिर कभी मत करना।' और वह कुछ कर भी नहीं रहा था, वह बस अपने अंगों को मात्र छू रहा था, उसके छूअन का आनंद ले रहा था। शायद तुम्हें पता हो कि यौनांग सबसे अधिक संवेदनशील होते है। सबसे ज्यादा जीवंत, सबसे ज्यादा आनंददायी, सबसे ज्यादा सजीव। अचानक, बच्चे में कोई चीज कट जाती है। वह भय-भीत हो जाता है। उसकी ऊर्जा मे किसी चीज को रूकावट बना दिया है। अब वह कभी भी गुप्तअंगों को छूकर आनंद अनुभव करेगा, उसके मन में एक अपराध भाव आ जायेगा। बालमन पर वह पहले ही अंकित हो चूका है। और जब कभी भी वह अपराध भाव महसूस करेगा वह यह भी महसूस करेगा की वह पापी है। कि वह कोई गलत काम कर रहा है। उसका आनंद एक अपराध बन जायेगा, उसे वह गलत मानेगा, प्रकृति उसे अपनी और अकृषित करेगी परंतु वह जायेगा परंतु एक अपराध भाव के साथ और आनंद के बाद भी उसके मन में एक अपराध ही होगा।

हजारों संन्यासिसयों का मेरा यह अवलोकन है: जब कभी भी वे आनंदित होते हैं, वे अपराधी अनुभव करते है। वे उन माता-पिता को खोजने लग जाते है, जो अभी भी कहीं किसी रुप में आस पास होगा और कहेगा की रूक जाओ। और जब कभी भी वे उदास होते है तो सब ठीक-ठाक होता है। समाज ने उदासी को स्वीकार कर लिया है, दुख को स्वीकार कर लिया है। आनंद को इंकार किए चले जा रहे है।

और बच्चें को किसी ने किसी तरह से जीवन के आनंद को जानने से रोका जाता है। माता-पिता प्रेम-क्रीड़ा में संलग्न हो रहे है। बच्चे इस बात को जानते है। वे आवाजें सुनते है; कभी-कभी उसे महसुस भी करते है, ये क्रिया लगातार चल रही होती है। परंतु उन्हें इस सब के लिए अपराध भाव से भर दिया जाता है। बच्चों को इसे समझना चाहिए, आज समाज इतना जागरूक हो गया है, फिर भी इन क्रिया कलापों को हीनता की नजर से देख जाता है। बच्चा जब बड़ा हो जाए उसे इस बात को समझने में माता पिता को उसका सहयोग करना चाहिए। उसके मन में जो बचपन में अपराध भाव भर गया है उसे दबाने नहीं देना चाहिए। उन्हें जानना चाहिए कि प्रेम एक सुंदर घटना है—कोई कुरूप बात नहीं, कोई छिपाने वाली बात नहीं, कोई रहस्य बनाकर रखने वाली बात नहीं। यह पाप नहीं है, यह तो आनंद है।

और यदि बच्चे अपने माता-पिता को प्रेम करते देख लें, काम संबंधी हजारों बीमारियां संसार से गायब हो जाऐगी—क्योंकि उनका आनंद फूट निकलेगा। और वे अपने माता-पिता के प्रति सम्मानपूर्ण अनुभव करेंगे। हां, एक वे भी प्रेम करेंगे और वे भी जानेंगे कि यह एक महोत्सव है। यदि वे माता-पिता को इस भांति प्रेम करते देखलें मानों कि वे प्रार्थना कर रहा हों और ध्यान कर रहे हों। इसका एक महान प्रभाव होगा।

तंत्र कहते हैं कि प्रेम(संभोग) ऐसे उत्सव से, ऐसे धार्मिक सम्मान से, आदरपूर्वक किया जाना चाहिए कि बच्चे यह महसूस कर सकें कि कोई महान घटना घट रही है। उनका आनंद बढ़ेगा और उनके आनंद में कोई

अपराध भाव न होगा। यह संसार अत्यंत आनंदित हो सकता है। परंतु यह संसार आनंदित है नहीं। किसी आनंदित व्यक्ति को पा जाना एक दुर्लभ बात है। अत्यंत ही दुर्लभ। और केवल आनंदित व्यक्ति ही स्थिर-बुद्धि हो सकता है। गैर-आनंदित व्यक्ति तो विक्षिप्त होता है।

जीवन के विषय में तंत्र की तो एक भिन्न ही दृष्टि है, बिलकुल ही भिन्न, क्रांतिकारी रूप से भिन्न दृष्टि। तुम मधु मक्खी बन सकते हो। स्वतंत्रता में, तुम मधुमक्खी बन जाते हो। गुलाम होकर, तुम मेंढक होते हो। स्वतंत्र होकर तुम मधुमक्खी हो जाते हो।

स्वतंत्रता के संदेश को सुनो। स्वतंत्र होने के लिए तैयार हो जाओ। हर उस चीज के प्रति जो बंधन निर्मित करती हो, तुम्हें सजग और जागरूक हो जाना है।

दूसरा प्रश्न: मैं एक स्कूल-अध्यापक हूं, पुरोहित, राजनेता, और पंड़ित का एक तरह का पनीला—मिश्रण, जिस सबसे आपको चिढ़ है। क्या मेरे लिए भी कोई आशा है? फिर मैं छप्पन वर्ष का हूं—क्या में बाकी की बची जिंदगी भी धैर्य पूर्वक यूं ही बिता दूं। और उम्मीद करू की अगली बार मेरा भाग्य अच्छा होगा?

पुरोहित के लिए, राजनेता के लिए, पंडित के लिए तो कोई आशा नहीं है। अगले जन्म में भी नहीं। पर पुरोहित होना, राजनेता होना, पंडित होना तो तुम छोड़ सकते हो, किसी भी क्षण—और तब आशा है। लेकिन पुरोहित के लिए कोई आशा नहीं, राजनेता के लिए कोई आशा नहीं, पंडित के लिए कोई आशा नहीं। इस बारे में मैं एक दम से सुनिश्चित हूं, अगले जन्म में भी, उससे अगले और अगले जन्म में भी—कभी नहीं। मैंने कभी नहीं सुना कि कोई पुरोहित कभी निर्वाण को पहुंचा हो, कभी नहीं सुना कि किसी राजनेता का कभी परमात्मा से मिलना हुआ हो। कभी नहीं सुना कि कोई पंडित कभी जाग गया हो। ज्ञानी हुआ हो। मनीषी हो गया हो। नहीं यह संभव ही नहीं है।

पंडित ज्ञान में विश्वास करता है, जानने में नहीं। ज्ञान तो बाहर से है, जानना भीतर से है। पंडित जानकारी पर भरोसा करता है। वह जानकारी इकट्ठी करता जाता है। यह एक भारी बोझ बन जाता है। पर भीतर कुछ उगता नहीं। आंतरिक वास्तविकता तो वही की वही बनी रहती है—उतनी ही अज्ञानी जितनी कि पहले थी।

राजनेता शक्ति—सत्ता की तलाश करता है—यह एक अहंकार की यात्रा है। और जो पहुंचते है वे तो विनीत होते है। अहंकारी नहीं। अहंकारी तो कभी नहीं पहुंचते, उनके अहंकार के कारण वे पहुंच ही नहीं सकते। अहंकार तो तुम्हारे और परमात्मा के बीच सबसे बड़ी बाधा है—एक मात्र बाधा। इसलिए राजनेता तो पहुंच ही नहीं सकते।

और पुरोहित...पुरोहित बड़ा चालाक होता है। वह तुम्हारे और परमात्मा के बीच मध्यस्थ बनने की चेष्टा कर रहा होता है। और परमात्मा को जाना उसने जरा भी नहीं होता है। वह सबसे बड़ा धोखेबाज है, सबसे बड़ा कपटी। वह मनुष्य जो सबसे बड़ा पाप कर सकता है, वह वहीं पाप कर रहा है। वह दिखावा कर रहा है कि वह परमात्मा को जानता है। इतना ही नहीं यह भी कि वह परमात्मा को तुम्हें उपलब्ध भी करवा देगा, कि तुम आओ, उसका अनुसरण करो और वह तुम्हें उस परम तक ले चलेगा। और उस परम के बारे में जानता वह कुछ भी नहीं है। वह शायद कर्मकांड़ जानता है, प्रार्थना कैसे की जाए शायद वह यह भी जानता हो, परंतु उस परम को वह नहीं जानता। वह तुम्हें कैसे ले जा सकता है? वह स्वयं अंधा है और जब कोई अंधा अंधे को राह दिखलता है, दोनों कुएं में गिरजाते है।

पुरोहित के लिए तो कोई आशा नहीं, राजनेता के लिए तो कोई आशा नहीं। पंडित के लिए तो कोई भी आशा नहीं है। पर आनंद तेजस, तुम्हारे लिए आशा है, प्रश्न आनंद तेजस का है—तुम्हारे लिए आशा है, हर आशा है।

और यह आयु का प्रश्न नहीं है। तुम छप्पन वर्ष के हो, या छिहत्तर के, या एक सौ छ: के—उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। यह आयु का प्रश्न नहीं है। क्योंकि यह समय का प्रश्न नहीं है। शाश्वतता में प्रवेश करने के लिए कोई क्षण इतना ही उपयुक्त है जितना कि कोई दूसरा क्षण—क्योंकि कोई भी व्यक्ति प्रवेश तो यहां—अभी में ही करता है। इसमें फिर क्या अंतर पड़ता है कि तुम कितने वर्ष के हो? छप्पन के या सोलह के—सोलह वर्ष बाले को भी यहां अभी में प्रवेश करना है, और छप्पन वर्ष वाले को भी अभी में प्रवेश करना है। और न तो तुम्हारे सोलह वर्ष सहायक हैं, और न ही छप्पन वर्ष सहायक है। दोनों के लिए अगल-अलग समस्याएं हैं। जो कि मैं जानता हूं। जब एक सोलह वर्षीय नवयुवक ध्यान में या परमात्मा में प्रवेश करना चाहता है, उसकी समस्या उस व्यक्ति से भिन्न है, जो छप्पन वर्ष का है। क्या है अंतर? परंतु यदि तुम उसे मापो, अंतत: अंतर संख्यात्मक है, गुणात्मक नहीं।

सोलह-वर्षीय व्यक्ति के पास केवल सोलह वर्ष का अतीत है, इस तरह से तो वह उस व्यक्ति से बेहतर अवस्था में है, जो छप्पन वर्ष का है। उस व्यक्ति के पास छप्पन वर्ष का अतीत है। छोड़ने के लिए उसके पास भारी बोझ है। बहुत सी आसक्तियां है—एक छप्पन वर्ष के जीवन के बहुत से अनुभव है, बहुत सारा ज्ञान है। सोलह वर्ष वाले के पास छोड़ने के लिए कुछ अधिक नहीं है। उसके पास छोटा सा भार है, जरा सा सामान—एक छोटा सा सूटकेस एक छोटे से लड़के का सूटकेस। छप्पन वर्ष वाले के पास बहुत सा सामान है। इस तरह से तो छोटे वाला एक बेहतर स्थिति में है।

लेकिन एक दूसरी बात भी है: बड़ी आयु वाले के पास अब भविष्य नहीं बचा है। छप्पन वर्ष वाले के पास, यदि वह पृथ्वी पर सत्तर साल तक जीने वाला है, केवल चौदह वर्ष बचे है। मात्र चौदह वर्ष...उसके पास न के बराबर भविष्य बचा है। न ही अधिक कल्पना, न अधिक सपने। सोलह वर्ष वाले के पास लम्बा जीवन है, उसके लिए लम्बा भविष्य है, बहुत सी कल्पनाए उसका इंतजार कर रही है। कितने सपने उसकी राह में इंतजार कर रहे है। अनंत कल्पनाएं खड़ा उसकी राह तक रही है।

नवयुवक के लिए अतीत छोटा है पर भविष्य बहुत बड़ा; वृद्ध के लिए अतीत बड़ा है, भविष्य छोटा है—कुल मिलाकर बात वही है। यह सत्तर वर्ष की ही बात है; दोनों को ही सत्तर वर्ष ही छोड़ने होते है। नवयुवक के लिए, सोलह वर्ष अतीत में, बाकी वर्ष भविष्य में। भविष्य भी उतना ही छोडा जाना है जितना कि अतीत। इसलिए अंत में, अंतिम हिसाब में, कुछ अंतर नहीं पड़ता।

तुम्हारे लिए हर आशा है, आनंद तेजस। और चूंकि तुमने प्रश्न पूछा है, काम शुरू हो ही चुका है। तुम अपने पुरोहित, राजनेता, पंडित के प्रति सजग हो गए हो—यह एक अच्छी बात है। किसी रोग के विषय में सजग हो जाना, यह जान लेना कि यह क्या है, आधा इलाज हो जाता है।

और तुम संन्यासी हो गए हो, तुमने पहले से ही अज्ञात में एक कदम उठा लिया है। यदि तुम मेरे साथ होने जा रहे हो, तुम्हें अपने पुरोहित से, अपने राजनेता से अपने पंडित से अलविदा कहना होगा। परंतु मुझे विश्वास है कि तुम यह काम कर सकते हो, वर्ना तुमने यह प्रश्न पूछा ही नहीं होता। तुमने यह महसूस किया है कि यह अर्थहीन है। वह सब जो अब तक तुम करते आए हो, वह सब अर्थहीन है—यह तुमने अनुभव किया है। यह भाव बड़ा कीमती है।

इसलिए मैं यह नहीं कहूंगा कि बस धैर्य रखो और अगले जन्म की प्रतीक्षा करो, न। मैं कभी भी स्थगन के पक्ष में नहीं हूं। सब स्थगन खतरनाक होते है, और बड़ी चालबाजी होती है उनमें। यदि तुम कहते हो, 'इस जन्म में तो मैं स्थगित कर दूंगा अब कुछ नहीं किया जा सकता है! तुम बस दिखाव कर रहे हो। और यह बचने की एक तरकीब है: 'अब क्या किया जा सकता है? मैं इतना वृद्ध हो गया हूं।'

मृत्यु के समय पर भी, अंतिम क्षण में भी, परिवर्तन घट सकता है। उस समय भी जब कि व्यक्ति मर रहा हो, एक क्षण के लिए वह अपनी आँख खोल सकता है...और परिवर्तन घट सकता है। और इससे पहले कि मौत आए, वह अपने सारे अतीत को छोड़ सकता है। और वह पूरी तरह से ताजा हो कर मर सकता है। तब वह एक नए ही ढंग से मर रहा होता है। वह एक संन्यासी की तरह से मर रहा है। वह गहन ध्यान की अवस्था में मर रहा है। और गहन ध्यान में मरना-मरना नहीं होता। क्योंकि वह उस समय पूरी जागरूकता के साथ मर रहा है, तब कहां मृत्यु है। मृत्यु तो एक बेहोशी का नाम है।

यह तो एक क्षण में घट सकता है। इसलिए कृपया स्थगित मत करो। ऐसा मत कहो: 'क्या में बाकी की बची जिन्दगी को धैर्यपूर्व यूं ही बीता दूं...?' न, तुम इसे अभी छोड़ दो यह मूल्यहीन है, इसे क्यों ढोना? प्रतीक्षा क्यों करना? और यदि तुम प्रतीक्षा करते हो, अगला जन्म भी कोई भिन्न होने नहीं जा रहा है—इसीलिए तो मैं कहता हूं कि पुरोहित के लिए और राजनेताओं के लिए, पंडितों के लिए तो कोई आशा नहीं है। अगला जीवन तो वहीं से शुरू होगा जहां से तुम इस जीवन को समाप्त करते हो। फिर से पुरोहित, फिर से राजनेता, फिर से पंडित। तुम अगला जीवन इसी जीवन की निरंतरता में तो पाओगे। यह फिर भिन्न कैसे होगा? यह वही चक्र होगा और फिर से घूम गया होगा।

और इस बार तो मैं तुम्हें उपलब्ध हूं। कौन जानता है? अगली बार शायद मैं उपलब्ध न रहूं। इस बार तो, जैसे-तैसे अंधेरे में टटोलते-टटोलते तुम मुझसे टकरा गए हो। अगली बार कोई नहीं जानता...इस बार तो तुम्हें छप्पन वर्ष लग गए उस आदमी के पास आने जिसके द्वारा क्रांति संभव है। कौन जानता है? अगली बार शायद तुम बोझिल हो जाओ, निश्चय ही तुम और अधिक बोझिल हो जाओगे—पिछले जन्म को बोझ, और अगले जन्म का बोझ...तुम्हें ऐसे आदमी तक आने में, उसे ढूंढ पाने में शायद सत्तर वर्ष लग जाएं।

इसलिए तो मैं कहता हूं कि राजनेता के लिए और पुरोहित के लिए और पंडित के लिए तो भविष्य में भी कोई आशा नहीं है। लेकिन तुम्हारे लिए हर आशा है—क्योंकि तुम पुरोहित नहीं हो, और न ही तुम राजनेता हो, और न ही तुम पंडित हो। तुम हो भी कैसे सकते हो? यह तो चीजें है जो चारों और इकट्ठी हो जाती है, परंतु अन्तर्तम केंद्र तो सदा स्वतंत्र रहता है। अपने आप एक मेंढक होने की तरह मत सोचो—मधुमक्खी बनो....।

तीसरा प्रश्न: एक सन्यासी के जीवन में दान का क्या महत्व होना चाहिए?

प्रश्न एक संन्यासी का नहीं है—प्रश्न फिलिप मार्टिन का है। पहली बात तो यह, फिलिप मार्टिन, कि संन्यासी हो जाओ। तुम्हें दूसरों के विषय में प्रश्न नहीं पूछने चाहिए, यह सज्जनता नहीं है। तुमने अपने बारे में प्रश्न पूछने चाहिए। पहले संन्यासी हो जाओ, फिर पूछो। लेकिन प्रश्न अर्थपूर्ण है, इसलिए उत्तर तो मैं देने जा रहा हूं। और मुझे ऐसा महसूस होता है कि देर-सवेर फिलिप मार्टिन संन्यास हो ही जाएगा। प्रश्न में ही झुकाव दिखाई देता है।

पहली बात: दुनिया के सारे धर्मों में चैरिटी पर, दान पर, बहुत जोर दिया गया है। और उसका कारण यह है कि आदमी ने धन के साथ सदा अपराधभाव महसूस किया है। दान का इतना प्रचार इसीलिए किया गया है ताकि मनुष्य कुछ कम अपराधभाव महसूस करे। तुम्हें हैरानी होगी; प्राचीन अंग्रेजी में एक शब्द है गिल्ट

जिसका अर्थ है धन। जर्मन भाषा में एक शब्द है गेल्ड जिसका अर्थ धन है। और गोल्ड तो बहुत करीब है ही। गिल्ट, गिल्ट, गोल्ड—किसी ने किसी तरह गहरे में धन के साथ अपराधभाव जुड़ा है।

जब कभी भी तुम्हारे पास धन होता है तुम अपराधीर अनुभव करते हो…और यह स्वाभाविक हैं, क्योंकि इतने सारे लोगों के पास धन नहीं है। तुम अपराध भाव से बच कैसे सकते हो? जब कभी भी तुम्हें धन मिलता है, तुम जानते हो कि तुम्हारी वजह से कोई गरीब हो गया है। जब कभी भी तुम्हें धन मिलता है, तुम जानते हो कि कहीं न कहीं कोई न कोई जरूर भूख से मर रहा होगा। और इधर तुम्हारा बैंक बैलेंस बड़ा और बड़ा होता जा रहा है। किसी बच्चे को जीवित रहने के लिए औषधि न मिल सकेगी। किसी स्त्री को दवा न मिल सकेगी, कोई गरीब आदमी मर जाएगा क्योंकि उसके पास भोजन न होगा। इन चीजों से तुम कैसे बच सकते हो? ये तो वहां होगी ही। जितना अधिक धन तुम्हारे पास होगा, उतनी ही अधिक ये चीजें तुम्हारी चेतना में विस्फोटित होती रहेंगी, तुम अपराधी अनुभव करोगे।

दान तुम्हें तुम्हारे अपराध-भाव से निर्भार करने के लिए है, इसिलए तुम कहते हो, 'मैं कुछ तो कर रहा हूं: मैं एक अस्पताल खोलने जा रहा हूं, एक कॉलेज खोलने जा रहा हूं। मैं इस दान फंड को रूपया देता हूं, उस ट्रस्ट को रूपया देता हूं।' तुम थोड़े से आनंदित महसूस करते हो। संसार सदा निर्धनता में जिया है, संसार सदा तंगी में जिया है, निन्यान्वे प्रतिशत लोग निर्धनता का जीवन जिए है। करीब-करीब भूखे रहते है, और मर जाते है। और केवल एक प्रतिशत व्यक्ति समृद्धि के साथ, धन के साथ जिए है। उन्होंने सदैव अपराध-भाव अनुभव किया है। उनकी सहायता करने के लिए धर्मों ने दान की धारणा का विकास किया है। यह उन्हें उनके अपराध-भाव से छुटकारा दिलाने के लिए है।

इसलिए पहली बाता जो मैं तुमसे कहना चाहूंगा वह यह है: दान कोई सदगुण नहीं है—यह बस तुम्हारी स्थिर बुद्धि को सकुशल बनाए रखने के लिए है, वरना तो तुम विक्षिप्त हो जाओगे। दान सद्‌गुण नहीं है—यह एक पुण्य भी नहीं है। यह नहीं कि जब तुम दान देते हो तो तुम कोई अच्छा काम करते हो। बात कुल यह है कि धन को इकट्ठा करने में तुम जो बुरे काम करते हो, तुम उसके लिए पश्चाताप करते हो। मेरे देखे तो दान कोई महान गुण नहीं है—यह तो पश्चाताप है, तुम पश्चात्ताप कर रहे होते हो। एक सौ रूपये तुमने कमाये, दस रूपये तुमने दान में दे दिए। यह एक पश्चात्ताप है। तुम थोड़ा सा अच्छा महसूस करते हो; तुम उतना खराब महसूस नहीं करते, तुम्हारे अहंकार थोड़ा सा सुरिक्षत महसूस करता है। तुम परमात्मा से कह सकते हो, 'मैं केवल शोषण ही नहीं कर रहा था, मैं गरीब आदमियों की मदद भी कर रहा था।' मगर यह किसी तरह की मदद है? एक तरफ तो तुम सौ रूपए छीन लेते हो, और दूसरी और देते हो केवल दस रूपये—ये तो ब्याज तक नहीं?

यह एक तरकीब है जिसका आविष्कार तथाकथित धार्मिक लागों ने किया था। गरीबों की सहायता करने के लिए बल्कि धनवालों की सहायता करने के लिए। यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाने दो: यह मेरी दृष्टि है—यह एक तरकीब रही है धनवालों की सहायता करने की, गरीबों की नहीं। यदि निर्धन लोगों की सहायता हुई भी, वह तो मात्र इसका परिणाम था, एक उप-उत्पाद, परंतु यह उनका उद्देश्य नहीं था।

मैं अपने संन्यासियों को क्या कहता हूं?

मैं दान की बात ही नहीं करता हूं। यह शब्द ही मुझे कुरूप लगता है। मैं तो बांटने की बात करता हूं—और इसमें एक बिलकुल ही भिन्न गुण के साथ बांटना। यदि तुम्हारे पास है, तुम बांट लो। इसलिए नहीं कि बांटने से तुम दूसरों की सहायता करोगे, न; बल्कि बांटने से तुम विकसित होओगे। जितना ज्यादा तुम बांटते हो, उतना ही ज्यादा तुम विकसित होते हो।

और जितना ज्यादा तुम बांटते हो, उतना ही ज्यादा तुम्हें और मिलता है—चाहे जो भी हो। यह केवल धन का ही प्रश्न नहीं है। यदि तुम्हारे पास ज्ञान हो, उसे बांटो। यदि तुम्हारे पास प्रेम हो, उसे भी बांटो। जो भी तुम्हारे पास हो, उसे बांटो, उसे चारों और फैलाओ; हवाओं में उड़ती एक फूल की सुगंध की तरह इसे फैलने दो। इसका विशेष रूप से गरीबों से ही कोई संबंध नहीं है। जो भी उपलब्ध हो उसी के साथ बांट लो...और गरीब भी तरह-तरह के होते है।

एक धनी व्यक्ति भी गरीब हो सकता है क्योंकि उसने कभी कोई प्रेम जाना ही नहीं है। उसके साथ प्रेम बांटो। एक गरीब आदमी ने शायद प्रेम जाना हो पर अच्छा भोजन नहीं—उसके साथ भोजन को बांटो। एक धनी व्यक्ति के पास शायद सब कुछ हो, परंतु समझ न हो, उसे अपनी समझ को बांटो लो, वह भी गरीब है। गरीबी की हजार किस्में है। जो भी तुम्हारे पास हो, उसे भी बांट लो।

लेकिन याद रखना, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यह पुण्य है, कि परमत्मा इसके लिए स्वर्ग में तुम्हें एक विशेष स्थान देगा, कि तुम्हारे साथ एक विशेष्ट व्यवहार किया जाएगा। कि तुम्हें एक अति विशिष्ट व्यक्ति माना जाएगा। और न ही बांटने से तुम अभी और यही आनंदित हो जाओगे। जमाखोर कभी आनंदित नहीं हो सकता। जमाखोर तो मूल रूप से बड़ा कब्जियत वाला व्यक्ति होता है। वह जमा ही किए चला जाता है। वह विश्राम नहीं कर सकता, वह दे नहीं सकता। वह जमा ही किए जाता है, जो कुछ भी उसे मिलता है, वह बस उसी को जमा कर लेता है। वह कभी उसका आनंद नहीं उठा पाता क्योंकि आनंद उठाने के लिए भी तुम्हें बांटना तो पड़ता ही है—क्योंकि सारा आनंद एक तरह का बांटना ही है।

यदि तुम सच में ही अपने भोजन का आनंद उठाना चाहते हो, तुम्हें मित्रों को बुलाना होगा। यदि तुम सच में ही भोजन का आनंद उठाना चाहते हो, तुम्हें अतिथियों को निमंत्रण देना होगा, वरना तुम इसका आनंद न उठा पाओगे। यदि सच में ही तुम मदिरापान का लुत्फ उठाना चाहते हो, कैसे तुम अकेले अपने कमरे में इसका लुत्फ उठा सकते हो। तुम्हें दोस्त, अपने साथी खोजने ही होगे। तुम्हें बांटना आना ही चाहिए, आनंद बांटने से बढ़ता है।

आनंद सदा बांटना है। आनंद अकेले में नहीं होता। अकेले तुम कैसे आनंदित हो सकते हो? एकदम अकेले —जरा सोचो! कैसे तुम आनंदित हो सकते हो, एकदम अकेले? नहीं, आनंद तो एक संबंध है। यह संग-साथ है। सच तो यह है कि जो लोग पहाड़ पर भी चले गए होते हैं, और एकांत जीवन जीते होते हे। वे भी अस्तित्व के साथ बांटते है, वे भी अकेले नहीं होते। वे बांट लेते है, तारों और पहाड़ों, पक्षियों और वृक्षों के साथ—वे भी वहां अकेले नहीं होते।

जरा सोचो! बारह वर्ष तक महावीर जंगल में अकेले खड़े रहे थे—पर वह अकेले नहीं थे। मैं तुमसे कहता हूं, अधिकारता से, कि वह अकेले नहीं थे। पक्षी वहां आते थे, और उनके चारों और खलते रहते थे। पशु आते थे उनके पास बैठ जाते थे। वृक्ष उन्हें देख का गद्दगद्द हो कर उन पर फूल बरसाते थे। रात को सितारे जगमगाते थे, सुबह जब सूर्य उदय होता तो उनके तन बदन को छूता था, दिन-रात, सर्दियां-गर्मिया... और सारे वर्ष कुछ न कुछ होता ही रहता था। यह आनंदपूर्ण था। हां, इंसानों से वह दूर थे—उन्हें दूर रहना ही था क्योंकि इन्सानों ने उन्हें इतनी हानि पहुंचाई थी कि स्वस्थ होने के लिए उन्हें दूर रहना ही था। यह तो बस एक निश्चित समय तक इंसानों से दूर रहने के लिए चले गए थे। ताकि वह उन्हें और अधिक कष्ट न पहुंचा सके। यही कारण है कि संन्यासी कभी-कभी एकांत में चला जाता है। बस अपने घाव को भरने के लिए। वरना लोग अपने खंजर तुम्हारे धावों में चुभोजे ही रहेंगे, वे उन धावों को हरा ही रखेंगे; वे उन्हें भरने न देंगे, वे तुम्हें जो उन्होंने किया है उसे अनकिया करने का अवसर ही न देंगे।

बारह वर्ष तक महावीर मौन थे: चट्टानों और वृक्षों के पास खड़े, बैठे, पर वह अकेले न थे—सारे अस्तित्व ने उनके आसपास भीड़ लगा रखी थी। सारा अस्तित्व उनके ऊपर समाविष्ट हो रहा था। फिर एक दिन वह आया जब वह स्वस्थ्य हो गए। उनके घाव भर गए। और अब वह जान गए थे कि कोई उन्हें हानि नहीं पहुंचा सकता है। वह पार जा चुके थे। अब कोई भी इंसान उन्हें चोट नहीं पहुंचा सकता था। वह इंसानों से संबंधित होने के लिए, उस आनंद को बांटने के लिए जो उन्हें वहां जंगल में प्राप्त हुआ था, वापस लौट आना ही पड़ा।

जैन धर्मग्रंथ केवल इतना ही कहते है कि वह इस संसार को छोड़ कर चले गए थे। वे उस दूसरे तथ्य की बात ही नहीं करते...वह संसार में वापस क्यों लोट कर आ गए? कौन सा कारण है जो उन्हें संसार में धकेल रहा था, वह आनंद जो उनके भीतर घटा था वह बहने को तत्पर हो रहा था। यह तो आधी ही बात हुई कि वह संसार को छोड़ कर जंगलों में चले गए, यह पूरी कथा नहीं है।

बुद्ध जंगल में चले गए थे, पर वह वापस भी लौट आये थे। कैसे तुम वहां जंगल में बने रह सकते हो जब कि तुम्हें 'वह' मिल गया हो? तुम्हें वापस आना होगा और इस बांटना होगा। हां, वृक्षों के साथ बांट लेना अच्छा है, पहाड़ो के साथ बाटा जा सकता है, पक्षियों के साथ बांट सकते हो। परंतु वृक्ष इतना तो नहीं समझ पाते। वे तो बड़े ही र्निबुद्धि हैं। पशुओं के साथ बांट लेना अच्छा है; वे सुंदर है—पर मानवीय आदान-प्रदान की सुंदरता ही कुछ और होती है। उस सम्पूर्णता की पूर्णता मनुष्य के पास बांटना ही प्रत्युत्तर हो सकता है। उन सबको वापस लौटना ही पड़ा, संसार में, मनुष्य के बीच में, अपनी उत्फुल्लता, अपने आनंद, अपनी समाधि को बांटने के लिए।

'दान' कोई अच्छा शब्द नहीं है, यह बड़ा ही भारी शब्द है। मैं तो बांटने की बात करता हूं। अपने संन्यासियों से मैं कहता हूं कि बांटो। 'दान' शब्द में कुछ कुरूपता भी है; ऐसा लगता है कि तुम तो ऊंचे हो और दूसरा तुमसे नीचे है; कि दूसरा एक भिखारी है। कि तुम दूसरे की मदद कर रहे हो, कि वह जरूरत में है। यह अच्छी बात नहीं है। दूसरों को ऐसे देखना मानो कि वह तुमसे नीचा हो—तुम्हारे पास है और उसके पास नहीं है—अच्छी बात नहीं है। यह अमानवीय है।

बांटना एक बिल्कुल ही भिन्न दृष्टि की बात है। इस बात का प्रश्न ही नहीं है कि उसके पास है अथवा नहीं है। प्रश्न तो बस यह है कि तुम्हारे पास बहुत अधिक है—तुम्हें बांटना ही है। जब तुम दान देते हो, तुम दूसरे से तुम्हें धन्यवाद देने की अपेक्षा करते हो। जब तुम बांटते हो, तुम उसे धन्यवाद देते हो कि उसने तुम्हें ऊर्जा उडेलने का अवसर दिया—जो कि तुम पर बहुत एकत्रित हो गई थी। यह भारी होने लगी थी। तुम कृतज्ञ अनुभव करते हो।

बांटना तुम्हारी प्रचुरता से है। दान दूसरे की गरीबी के लिए है। वरना तुम्हारी समृद्धि से है। उनमें गुणात्मक भेद है।

नहीं, मैं दान की बात ही नहीं करता, मैं तो बांटने की बात करता हूं...और यह बढ़ेगा। यह एक आधारभूत नियम है। जितना अधिक तुम देते हो, उतना ही अधिक तुम्हें मिलता है। देने में कभी कंजूस न बनो।

चौथा प्रश्न: ध्यान करते समय, मेरा मन फिर भी पांच सौ मील प्रतिघंटा चलता रहता है। मैं कभी मौन का अनुभव नहीं करता हूं, और जो कुछ भी साक्षीभाव घटता है वह अत्यंतअल्प होता है। झलकों की भांति। क्या मैं अपना समय बर्बाद कर रहा हूं?

तुम्हारा मन तो बड़ा सुस्त है। केवल पांच सौ मील प्रति घंटा, बस? और क्या तुम सोचते हो कि यह कोई गति है? तुम तो काफी धीमें हो। मन की गति को जानते ही नहीं, वह तो इतना तेज चलता है। यह तो प्रकाश से भी तेज चलने वाला है। प्रकाश एक सेकंड में एक लाख छियासी हजार मील चलता है। मन तो उससे भी तेज

चलता है। लेकिन चिंता की कोई बात नहीं—यही तो मन का सौंदर्य है, यही तो उसका महान गुण है। इसे नकारात्मक रूप से लेने के स्थान पर, मन के साथ लड़ने के स्थान पर इसे दोस्त बना लो।

तुम कहते हो, 'ध्यान करते समय मेरा मन फिर भी पांच सौ मील प्रति घंटा चलता रहता है'—इसे चलने दो। इसे और तेज जाने दो। तुम बस दृष्टा रहो। तुम मन को इतना तेज चलते, इतनी गति से भागते, देखते रहो। इसका आनंद उठाओं मन के इस खेल को आनंद लो।

संस्कृत में इसके लिए हमारे पास एक विशेष शब्द है; हम इसे कहते है चिद्विलास—चैतन्य की क्रीड़ा। यह सितारों की और भागता है, यहां से वहां तेजी से दौड़ता, सारे अस्तित्व में उछल-कूद मचाना, मन की इस क्रीड़ा का आनंद लो। इस में गलत क्या है? इसे एक सुंदर नृत्य होने दो। इसे स्वीकार कर लो।

मेरे ख्याल में तुम जो कर रहे हो वह यह है कि तुम इसे रोकने की चेष्टा कर रहे हो—वह तुम कर नहीं सकते। मन को कोई नहीं रोक सकता। हां, मन एक दिन रूकता है, पर कोई इसे रोक नहीं सकता। मन थमता है, पर ऐसा तुम्हारे प्रयास से नहीं होता। मन थमता है, तुम्हारी समझ से। तुम बस साक्षी बनो और यह देखने की चेष्टा करो कि हो क्या रहा है, यह मन क्यों दौड़ रहा है। यह बिना किसी कारण के नहीं दौड़ रहा है। तुम महत्वकांक्षी होगे। देखने की चेष्टा करो कि यह मन क्यों दौड़ रहा है, यह कहां दौड़ रहा है—तुम्हारी महत्वकांक्षा इसे दौड़ा रही है। यदि यह धन के विषय में सोच रहा है, तो इसे समझने की चेष्टा करो। मन प्रश्न नहीं है। तुम धन के विषय में स्वप्न देखना शुरू कर देते हो, कि तुमने एक लाटरी जीत ली है। या यह या वह, और फिर तुम योजनाएं तक बनाना प्रारंभ कर देते हो कि इस धन को कैसे खर्च किया जाए। क्या खरीदा जाए, क्या न खरीदा जाए? या फिर सोचता है कि तुम एक राष्ट्रपति बन गए हो। एक प्रधान मंत्री बन गए हो। और फिर तुम सोचना शुरू कर देते हो कि अब क्या किया जाए, देश को या संसार को कैसे चलाया जाए। जरा मन का अवलोकन तो करो। मन जा किस तरफ रहा है। तुम्हारे भीतर एक गहन बीज होना चाहिए। तुम तब तक मन को नहीं रोक सकते जब तक कि वह बीज अदृश्य न हो जाए। मन तो बस तुम्हारे अंतर्तम बीज के ही आदेश का पालन कर रहा है। कोई काम के विषय में सोच रहा है; तब उसके भीतर कहीं न कहीं दमित कामवासना है। देखो कि मन किस तरफ दौड़ रहा है। अपने भीतर गहराई में देखो, खोजा कि बीज कहां है।

मैंने सुना है:

पादरी बहुत परेशान था। 'सुनो' उसने अपने चर्च-सहायक से कहा, 'किसी ने मेरी साईकिल चुरा ली है।'

'आप इस पर बैठकर कहां-कहां गए थे। रेक्टर?' सहायक ने पूछा।

'केवल अपने ही इलाके में मुलाकातों के लिए।'

सहायक ने सुझाव दिया कि पादरी अपना रविवारीय प्रवचन 'दस आज्ञाएं' विषय पर दें। जब आप 'तुम चोरी नहीं करोगे' पर पहुचेंगे, आप और मैं चेहरों को गौर पर देखेंगे—हमें कुछ न कुछ मिलेगा।'

रविवार आया, पादरी ने आज्ञाओं के विषय में सही प्रवाह में अपना प्रवचन प्रारंभ किया, मगर फिर वह सूत्र खो गया, उसने अपना विषय बदल दिया और बड़े असंतोषपूर्ण तरीके से घसीटते हुए प्रवचन पूरा किया।

'सर', सहायक ने कहा, 'मैंने तो सोचा था कि आप....।'

'मैं जानता हूं, गाइल्स, मैं जानता हूं। लेकिन तुम्हें पता है कि जब मैं तुम व्यभिचार नहीं करोगे पर पहुंचा तो अचानक मुझे याद आया कि मैं अपनी साइकिल कहां छोड़ आया था।'

जरा देखो तो तुम अपनी साईकिल कहां छोड़ आए हो। मन किन्हीं कारणों से ही दौड़ता फिरता है।

मन को चाहिए समझ, जागरूकता। इसे रोकने का प्रयत्न मत करो। यदि तुम इसे रोकने का प्रयत्न करते भी हो, अव्वल तो तुम सफल हो ही नहीं सकते, दूसरे अगर तुम सफल हो भी गए—यदि कोई निरंतर बरसों

तक प्रयत्न करे तो सफल हो भी सकता है—यदि तुम सफल हो गए, तुम मंदबुद्धि हो जाओगे। इससे कोई सतोरी घटित न हो सकेगी।

पहली बात तो यह कि तुम सफल हो ही नहीं सकते हो। और यह शुभ भी है। तुम सफल नहीं हो रहे हो। यदि तुम सफल हो सको, यदि तुम सफल होने की व्यवस्था कर लो, यह बड़ी दुर्भाग्य जनक बात होगी—तुम मंदबुद्धि हो जाओगे। तुम बुद्धिमत्ता खो दोगे। उस गति के साथ ही तो बुद्धिमत्ता है, उस गति के साथ ही तो सोच-विचार की, तर्क की, बौद्धिकता की तलवार निरंतर तेज होती रहती है। कृपया अपने मन को मत रोको, न ही चेष्टा करो, मैं मंद-बुद्धियों के पक्ष में नहीं हूं। और मैं यहां किसी को मूढ़ बन जाने में सहायता के लिए नहीं आया हूं।

धर्म के नाम पर बहुत से लोग मूढ़ हो गए है। वे करीब-करीब जड़ बुद्धि हो गए हैं—मन को रोकने की चेष्टा में बिना यह समझे कि यह इतनी गति से क्यों चल रहा है...अव्वल तो यह चलता ही क्यों है? मन बिना किसी कारण के नहीं चलता। बिना इसके कारण में जाए, बिना इसकी पर्तों में, अचेतन मन की गहन तहों में जाए, बस इसे रोकने का प्रयत्न न करे। रोक वे सकते हैं पर उन्हें इसकी कीमत चुकानी होगी, और कीमत यह होगी कि उनकी बुद्धिमता खो जाएगी।

तुम भारत में चारों और घूम सकते हो, तुम्हें हजारों ऐसे संन्यासी, महात्मा मिल जाएंगे, उनकी आंखों में झांको, वे अच्छे लोग है, भले लोग है, पर मूढ़ बन गए है। यदि तुम उनकी आंखों में झांको, वहां कोई बुद्धिमता नहीं पाओगे। तुम वहां कोई प्रज्ञा नहीं पाओगे। वह असृजनशील व्यक्ति हैं, वे किसी चीज का सृजन नहीं कर रहे होते है। वे जीवंत लोग नहीं है। उन्हें किसी भी तरह से संसार की कोई सहायता नहीं की है। उन्होंने एक चित्र या एक कविता या एक गीत भी नहीं रचा है, क्योंकि एक कविता रचने के लिए भी तुम्हें बुद्धिमता की आवश्यकता की जरूरत होती है। तुम्हारे मन में एक विशिष्ट गुणों की आवश्यकता होगी।

मैं तुम्हें यह सुझाव नहीं दूंगा कि तुम मन को रोको, बल्कि तुम इसे समझो। समझ के साथ एक चमत्मकार घटता है। चमत्कार यह है कि समझ के साथ, धीरे-धीरे, जब तुम उन कारणों को समझते हो और उन कारणों में गहराई से देखा जाता है, और उन कारणों में गहराई से देखने पर वे कारण विलीन हो जाते है। तब मन धीमा हो जाता है। परंतु बुद्धिमत्ता खोती नहीं, क्योंकि मन के साथ जबरदस्ती नहीं की जा रही होती है।

जब तुम समझ के करणों को दूर नहीं करते, तब तुम क्या कर रहे होते हो? तुम एक कार चला रहे हो, उदाहारण के लिए, और तुम एक्सीलेरेटर को दबाए चले जाते हो और साथ में दूसरे पैर से ब्रेक को भी दबाने लग जाते हो। तब कार अस्वभाविक रूप से चल रही होती है। तुम उसके यंत्र को बिगाड़ रहे होते हो। ये चेष्टा बहुत खतरनाक है। और इस बात कि बहुत अधिक संभावन बन जाती है कि तुम कोई ने कोई दुर्घटना करने को तैयार हो। ये काम साथ-साथ नहीं किए जाने चाहिए। यदि तुम ब्रेक का इस्तेमाल कर रहे हो तो तुम एक्सीलीरेटर पर से पैर को हटा लो। तुम इसे छोड़ दो, इसे मत दबाओ। यदि तुम एक्सीलीरेटर को दबा रहे हो तो ब्रेक से पैर को हटा लो। दोनों काम एक साथ मत करो। वर्ना तुम कार के सारे यंत्र को बरबाद कर दोगे। वह नष्ट हो जाएगी। तुम दो विपरीत काम एक साथ कर रहे हो।

महत्वाकांक्षा तुम लिए फिरते हो—और मन को तुम रोकने की चेष्टा करते हो? महतवकांक्षा गति निर्मित करती है, इसलिए गति को तो तुम बढ़ा रहे होते हो—और दूसरी और मन पर तुम ब्रेक भी लगा रहे हो। तुम मन के सारे सूक्ष्म यंत्र को खराब कर रहे हो। वह विनष्ट हो रहा है। इस तरह से तुम उस नष्ट कर दोगे यह अति

संवेदन शील है। बहुत नाजुक यंत्र है। सारे आस्तित्व में सबसे नाजुम चीज मन ही है। इसलिए इस बारे में कृप्या मुढ़ मत बनों।

इसे रोकने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम कहते हो, 'मैं कभी मौन का अनुभव नहीं करता और जो कुछ भी साक्षीभाव घटता है, वह अत्यल्प होता है, झलकों की भांति।'

आनंदित महसूस करो। यह भी बड़ी मूल्यवान बात है। ये झलकें ये साधारण झलकें नहीं है। इन्हें बस यूं ही मत ले लो। लाखों लोग ऐसे है, जिन्हें में अत्यल्प झलकें भी नहीं घटी है। वे लोग जियेगे और मर जाएंगे। वे कभी न जानेंगे कि साक्षीभाव क्या है—एक क्षण के लिए भी नहीं। तुम आनंदित हो तुम सौभाग्यशाली हो।

पर तुम कृतज्ञ अनुभव नहीं कर रहे हो। यदि तुम कृतज्ञ अनुभव नहीं करोगे, ये झलकें विलीन हो जाएंगी। कृतज्ञ अनुभव करो, बे बढ़ेंगी। कृतज्ञता के साथ हर चीज बढ़ती है। आनंदित महसूस करो कि तुम धन्य हो—वे बढ़ेंगी। इस सकारात्मकता के साथ चीजें बढ़ेंगी।

'और जो कुछ भी साक्षीभाव घटता है वह अत्यल्प होता है।'

इसे अत्यल्प होने दो! यदि यह एक अकेले क्षण के लिए भी घटता है, यह घट तो रहा है, तुम्हें इसका स्वाद तो मिलेगा। और उस स्वाद के साथ, धीरे-धीरे, तुम अधिक से अधिक ऐसी स्थितियां निर्मित करोगे जिनमे यह अधिक और अधिक घटेगा।

'क्या मैं अपना समय बर्बाद कर रहा हूं?'

तुम समय बर्बाद नहीं कर रहे हो, क्योंकि समय पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं हुआ है। उस पर तुम्हारी कोई मालकियत नहीं है। तुम उसी चीज को तो बर्बाद कर सकते हो जिसे पर तुम्हारी मालकियत हो। समय पर तुम्हारी कोई मालकियत नहीं है। समय तो बर्बाद होगा ही चाहे तुम ध्यान करो या न करो—समय तो नष्ट हो ही रहा है। समय तो दौड़ ही रहा है। तुम चाहे जो भी करो, तुम कुछ करो या न करो, समय की गति तो अपनी रफतार से चलती ही रहेगी। तुम समय बचा नहीं सकते हो। तब तुम इसे बर्बाद भी कैसे कर सकते हो। तुम केवल उसी चीज को बर्बाद कर सकते हो जिसे तुम बचा सकते हो।

समय तुम्हारा नहीं है। इसके विषय में तो भूल ही जाओ।

और समय का जो सर्वश्रेष्ठ उपयोग तुम कर सकते हो वह है इन झलकों को ले लेना—क्योंकि आखिर में तुम पाओंगे कि केवल वही क्षण बच गए है जो कि साक्षीभाव के क्षण थे। बाकी तो सब कुछ बह गया। खत्म हो गया। मिट गया। वह धन जो तुमने कमाया था, वह प्रतिष्ठा जो तुम ने अर्जित की थी, वह सम्मान जो तुमने प्राप्त किया था, वे सब तो समय की गोद में मिट गए। खत्म हो गये बह एक उस धार में। केवल वे क्षण जब तुम्हें साक्षी भाव की कुछ झलकें मिली, केवल वही क्षण बच गए है। केवल वही क्षण तुम्हारे साथ जाएंगे जब तुम यह जीवन छोडकर जाओगे—केवल वही क्षण तुम्हारी पूंजी है, वह तुम्हारे संग जा भी सकते है, क्योंकि वह शाश्वत की पूंजी है। वे क्षण समय के नहीं है।

परंतु आनंदित अनुभव करो कि यह घट रहा है। यह सदा धीरे-धीरे घटता है। लेकिन बूंद-बूंद से एक महासागर भर जाता है। यह बूंदों में घटता है। लेकतिन बूंदों में सागर आ रहा है। तुम बस कृतज्ञता पूर्वक, समारोह पूर्वक, सधन्यवाद इसका स्वागत्म करो।

और मन को रोकने की चेष्टा बिलकुल भी मत करो। मन को अपनी गति से चलने दो—तुम बस देखो।

पांचवा प्रश्न–काम उर्जा को समाधि में कैसे रूपांतरित किया जा सकता है?

तंत्र और योग के पास मनुष्य के भीतर का एक विशिष्ट मानचित्र है। अच्छा हो यदि तुम इस मानचित्र को समझ लो—यह तुम्हारी मदद करेगा, यह तुम्हारी बड़ी सहायता करेगा।

तंत्र और योग कहते है कि मनुष्य के शरीर में सात केंद्र हैं—सूक्ष्म शरीर में, देह में नहीं। सच तो यह है कि ये रूपक हैं। पर आंतरिक मनुष्य के संबंध में कुछ समझने के लिए ये बहुत ही सहायक हो सकते है। ये सात चक्र इस तरह से हैं।

पहला और सर्वाधिक मूलभूत है मूलाधार—इसीलिए इसे मूलाधार कहते है। मूलाधार का अर्थ है आधारभूत, तुम्हारी जड़ों वाला। मूलाधार चक्र वह केंद्र है जहां काम-उर्जा ठीक अभी उपलब्ध है, परंतु समाज ने उस चक्र को बहुत बिगाड़ दिया है।

इस मूलाधार चक्र के तीन कोण हैं: पहला है मौखिक, मुंह, दूसरा है गुद्दा, और तीसरा है जाननेन्द्रिक। ये मूलाधार के तीन कोण हैं। बच्चा अपना जीवन मौखिक से प्रारंभ करता है, और गलत लालन-पालन के कारण बहुत से लोग मौखिक पर ही अटके रह जाते है, वे कभी बढ़ते ही नहीं। यही कारण है कि धूम्रपान, च्यूंगम, निरंतर-भोजन, करना जैसी इतनी धटनाएं घटती है। यह एक मौखिक स्थिरण है—वह केवल मुंह तक ही सिमित हो कर रह जाते है।

बहुत से ऐसे आदिम समाज है जिनमें चुम्बन नहीं लेते। सच तो यह है कि यदि बच्चा सही ढंग से बड़ा हुआ है, उसका पालन पौषण सही हुआ है तो वहा चुम्बन अद्दश्य हो जाता है। चुम्बर हमें दर्शाता है कि मनुष्य मौखिक ही रहा है। जब पहली बार आदिम समाजों को सभ्य मनुष्य के चुम्बन के विषय में पता चला, वे हंसे, उन्होंने सोचा यह तो हास्यस्पद बात है। दो आदमियों का एक दूसरे को चूमना: यह अस्वास्थ्यकर भी जान पड़ता है; हर तरह के रोग को, संक्रमण को एक दूसरे मे स्थानांतरित कर देना। और वे कर क्या रहे है? और ये सब किस लिए? परंतु मनुष्य मौखिक ही रह गया है।

बच्चा मौखिक रूप से अतृप्त रहता है। मां उसे अपना स्तन इतना अधिक नहीं देती जितना कि उसकी आवश्यकता होती है। इसलिए बच्चे सिगरेट पियेगे। बड़ा चुम्बन लेने वाला बनेगा, च्यूंगगम चबाएगा। या अधिक खाने वाला होगा। निरंतर उसे खाने की लत लगी ही रहेगी। यदि मांऐं अपने बच्चों को उनकी आवश्यकतानुसार स्तन देती रहें, तब मूलाधार क्षति-ग्रस्त नहीं होता।

यदि तुम धूम्रपानी हो, चुसनी का उपयोग करके देखो, इसने बहुत से लोगों की सहायात की है। मैं इसे बहुत लोगों को देता हूं, यदि कोई मेरे पास आता है और पूछता है कि धूम्रपान कैसे बंद किया जा सकता है। मैं कहता हूं, 'एक चुसनी ले लो, एक नकली स्तन, और उसे अपने मुंह में रखो। इसे अपने गले में लटता लो और जब कभी भी तुम धूम्रपान करना चाहो, इस चुसनी को अपने मुंह में रख लो और इसका आनंद लो। और तीन सप्ताह के भीतर, तुम हेरान रह जाओगे, धूम्रपान की तलब विलीन हो गए है।'

कहीं न कहीं, स्तन अभी भी आकर्षित करता है। यही कारण है कि आदमी स्त्रीयों के स्तनां पर इतना केंद्रित हो गया है। इसका कोई कारण नहीं जान पड़ता...क्यों? क्यों आदमी स्त्रियों के स्तनों में इतना उत्सुक है? चित्रकला, मुर्तिकला, फिल्म, अश्लील-साहित्य—हर चीज स्तनोन्मुख जान पड़ती है। और स्त्रियां भी निरंतर अपने स्तनों को छिपाने और फिर भी दिखाने की चेष्टा करती रहती है—वर्ना तो ब्रा मूढ़ता है। यह एक तरकीब है एक साथ छिपाने और दिखाने की, यह एक बड़ी विरोधाभासी तरकीब है। और अब अमरीका में जहां हर मूढ़तापूर्ण बात अपने अति पर पहुंचती है, वे इंजक्श्नप द्वारा रसायन पदार्थ, सिलिकान व अन्य वस्तुएं स्त्रियों के स्तनों के अंदर पहूंचा रहे है। वे स्तनों को सिलिकान से भर रहे हे ताकि वे बड़े हो जाए व आकार में आ जाएं—उस आकार में जिसमे अ-प्रौढ़ मनुष्यता उन्हें देखना चाहती है। यह बचकाना विचार है, पर आदमी कैसे न कैसे मौखिक ही रहता है।

यह मूलाधार की सबसे निचली अवस्था है।

फिर थोड़े से लोग मौखिक से बाहर निकल आते है और वे गुद्दे पे अटक जाते है क्योंकि दूसरी बड़ी क्षति शौच-प्रशिक्षण के साथ घटती है। बच्चों को एक निश्चित समय पर शौच जाने के लिए बाध्य किया जाता है। अब बच्चे तो अपने अंत्र-गति पर नियंत्रण रख सकते नहीं, इसमें समय लगता है, इस पर नियंत्रण पाने में तो उन्हें बरसों लग जाते हैं। इसलिए वे क्या करते है? वे बस जोर-जबरदस्ती करते हैं, वे अपने गुदीय-यंत्र को बंद कर लेते हैं, और इसी कारण वे गुद्दीय स्थिरित हो जाते है।

यहीं कारण है कि संसार में इतनी कब्जियत है। ये बीमारी केवल मनुष्य को ही है, बाकि किसी प्राणी को नहीं है। जंगली अवस्था में कोई जानवर कब्ज का शिकार नहीं होता। कब्ज मनौविज्ञानिक अधिक है। यह एक क्षति है मूलाधार को। और इस कब्ज के कारण बहुत सी चीजे मनुष्य के मन में घटने लग जाती है।

एक आदमी संग्रहकर्ता हो जाता है—संग्रहकर्ता ज्ञान का, संग्रहकर्ता धन का, संग्रहकर्ता पुण्य का—वह संग्रहकर्ता हो जाता है, और कंजूसी उसके रग-रग में समा जाती है। वह कोई चीज छोड़ ही नहीं सकता। जिस किसी चीज पर भी उसका हाथ पड़ता है, वह उसी को पकड़ लेता है। और इस गुद्दीय-प्रमुखता के कारण, मूलाधार को बड़ी क्षति पहुंचती है क्योंकि जाना तो पुरूष या स्त्री को जननेन्द्रिक तक है। यदि वे मौखिक या गुद्दीय पर स्थिर हो जाएं, तो वे जननेन्द्रिक तक कभी नहीं पहुंच पाते—यही कारण है कि समाज तुम्हें कभी भी पूरी तरह कामुक नहीं होने देता। इसी तरकिब का उपयोग कर रहा है।

तब गुद्दीय स्थिरीकरण इतना महत्वपूर्ण हो जाता है कि जननेन्द्रियां कम महत्वपूर्ण हो जाती हैं। इसी कारण इतनी समयौनता है। समयौनता संसार से तब तक विलीन नहीं होगी जब ते कि गुदोन्मुखता विलीन नहीं हो जाती। शौचप्रक्षिण एक बड़ा खतरनाक प्रशिक्षण है।

और फिर कुछ व्यक्ति यदि जननेन्द्रिक हो भी जाए, किसी न किसी तरह वे मौखिक व गुदीय पर स्थिर न रहें और जननेन्द्रिक हो जाए, तब मनुष्यता में काम के प्रित बड़ा अपराध-भाव निर्मित कर दिया जाता है। सेक्स को अर्थ पाप हो जाता है।

ईसाइयत ने काम को इतना बड़ा पाप माना है कि वे एक मूढ़ता पूर्ण बात को प्रस्तावित करते रहते हैं, दिखाते रहते है और उसे सिद्ध करने की चेष्टा करते रहते हैं, कि ईसा का जन्म एक चमत्कार से हुआ था, कि वह स्त्री-पुरूष के संबंध से पैदा ही नहीं हुए थे। कि मेरी कुंवारी थी। सेक्स इतन बड़ा पाप है कि जीससे की मां भला कैसे सेक्स में उतर सकती है? साधारण जन के लिए तो यह ठीक है पर जीसिस की मां का सेक्स में संलग्न हो जाना और उसी बीच जीसस का जन्म, इतना पवित्र व्यक्ति, सेक्स के द्वारा कैसे पैदा हो सकता है?

मैं पढ़ रहा था:

एक नवयुवती थी जिसकी तबीयत ठीक नहीं चल रही थी, इसलिए उसकी मां उसे एक डॉक्टर के पास ले गई, सारी बातचीत मां ने ही की—वह इसी किस्म की स्त्री थी।

'वह गर्भवती है,' डॉक्टर ने कहा।

'डॉक्टर, मैं तो कहूंगी कि तुम मूर्ख हो। मेरी बेटी ने तो कभी किसी पुरूष का चुंबन तक नहीं लिया है! क्या तुमने ऐसा किया है, डार्लिंग?' लड़की की मां ने लड़की की और मुड कर पुछा।

'नहीं मम्मी, मैंने तो कभी किसी पुरूष का हाथ तक नहीं पकड़ा है।'

डॉक्टर अपनी कुर्सी से उठा, और खिड़की तक गया, फिर आकाश में ताकने लगा। एक लम्बे मौन के बाद, मां ने पूछा, 'क्या वहां कुछ गड़बड है, डॉक्टर?'

नहीं बिलकुल नहीं, बिलकुल नहीं। केवल इतना मात्र भेद है, पिछली बार जब ऐसी घटना घटी थी, तब पूरब में एक तारा प्रकट हुआ था—शायद इस बार इससे मैं चूकना नहीं चाहता वहीं देख रहा हूं।

सेक्स की इतनी निंदा की गई है कि तुम इसका आनंद उठा नहीं पाते हो। और यही कारण है कि उर्जा कहीं न कहीं मौखिक, गुद्दीय या जननेन्द्रिय में अटक कर रह जाती है। यह उपर नही जा पाती है।

तंत्र कहता है कि आदमी को मुक्ति दी जानी है, इन तीन चीजों से अनाकृत किया जाना है। इसलिए तंत्र कहता है कि पहला बड़ा काम तो मूलाधार में किया जाना है। मौखिक स्वतंत्रता के लिए: चीखना, हंसना, चिल्लाना, रोना-पीटना बहुत सहायक हो सकता है। इसलिए मैंने एनकाउन्टर, प्राईमल, गेस्टाल्ट और इसी तरह की समूह-चिकित्साओं को चुना है—ये सब मौखिक स्थिनतरण से मुक्ति दिलाने में सहायक हो सकती है। और गुद्दिय स्थिति से तुम्हें छुटकारा दिला सकती है। प्राणायम, त्रीवरश्वास प्रणाली, इसमें बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। क्योंकि यह सीधी गुद्दीय केंद्र पर चोट करती है। और धीर-धीर इस प्रकृयां के द्वारा इस गुदीयकेंद्र से मुक्त हो सकते हो। तब तुम्हारे मन को शरीर को एक विशेष शांति का अनुभव होगा। एक तनाव जो तुम लिए चल रहे हो वह मुक्त होते ही तुम र्निभार महसूस करोगे। इसलिए सक्रिय ध्यान और कुंड़लनी ध्यान को करने के लिए मैं अधिक जोर देता हूं। आज के मनुष्य के लिए यह बहुत अधिक महत्व पुर्ण है।

और फिर काम केंद्र: काम केंद्र को अपराध भाव से, निंदा से मुक्त किया जाना है। तुम्हें इसके विषय में फिर से सीखना प्रारंभ करना है। केवल तभी क्षति-ग्रस्त काम केंद्र स्वस्थ हो सकता है। वह एक स्वास्थ ढंग से कार्य कैसे कर सकता है। तुम्हें इसका आनंद उठाना फिर से सीखना है—बिना किसी अपराध भाव के।

अपराध-भाव की भी हजार किस्में हैं। हिन्दू मन में एक भय है कि वीर्य उर्जा एक महान उर्जा है—यदि एक बूंद भी खो गई तो, तुम भी गए। यह बड़ी खतरनाक कब्जियत वाली दृष्टि है। इसे जमा कर लो! तुम इस बात को जान लो की खोता कुछ भी नहीं, तुम इतना सक्रिय शक्ति हो, तुम उस उर्जा को प्रतिदिन निर्मित करते जाते हो। खोता कुछ भी नहीं है।

हिंदु मन वीर्य से, वीर्य-उर्जा से अत्याधिक ग्रस्त है। एक बूंद भी खोनी नही चाहिए। वे निरंतर भयभीत रहते है। इसलिए जब कभी भी वे संभोग करते है, यदि वे संभोग करे तो, तब वे बड़ी हताशा में पड़ जाते है, वे सोचते है कि हाए इतनी सारी उर्जा बर्बाद हो गई। इसे शरीर किस महनत से तैयार करता है। एक मुढ़ धारणा। तुम्हारे पास उर्जा की एक मृत-मात्रा नहीं है; तुम एक डायनमो हो—तुम उर्जा निर्मित करते हो तुम इसे प्रतिदिन निर्मित करते हो। सच तो यह है कि जितना अधिक तुम इसका उपयोग करते हो, उतना ही अधिक तुम्हारे पास यह होती है। यह ऐसे ही काम करता है। जैसे कि तुम्हारा सारा शरीर। यदि तुम अपने मांस-पेशियों को उपयोग में लाओंगे, वे बढ़ेगी। यदि तुम चलोगे, तुम्हारी टांगें मजबूत होंगी। यदि तुम दौड़ोगे, दौड़ने के लिए तुम्हें और उर्जा मिलेगी। यह मत सोचना कि जो व्यक्ति कभी न दौड़ा हो और अचानक दौड़ने लगे, उसके पास अधिक ऊर्जा होगी—उसके पास उर्जा होगी ही नहीं। उसके पास तो दौड़ने का पेशी-तंत्र ही न होगा।

उस सब को जो परमात्मा ने तुम्हें दिया है, उसका उपयोग करो, उसे उपयोग में लाओ और तुम्हें वह और अधिक मात्रा में मिलने लगेगा।

इसलिए एक हिंदू पागलपन है: जमा करो। यह कब्ज की तरह से है। और अब एक अमरीकन पागलपन है, वह अतिसार की तरह से कि बस फेंकों इसे, बाहर निकालने दो, अर्थपूर्ण हो, अथवा न हो, इस से कुछ लेना देना नहीं है। बस फेंकते जाओ। इसलिए अस्सी वर्ष का आदमी भी बचकाने ढंग से सोचता है। काम शुभ है, काम सुंदर है पर यह अंत नहीं है। यह एल्फा तो है, परंतु ओमेगा नहीं है। व्यक्ति को इसके पार जाना है। पर इसके पार जाना कोई निंदा नहीं है। इसके पार जाने के लिए भी इसी से होकर गुजरना होता है।

तंत्र काम के प्रति सबसे स्वस्थ दृष्टि रखता है। यह कहता है काम शुभ है, काम स्वास्थ है, काम प्राकृतिक है, परंतु मात्र पुनर्उत्पाद के अतिरिक्त काम में और अधिक संभवानएं भी है। और काम में केवल मौज-मस्ती के

अलावा और भी अधिक संभावनाएं है। काम अपने में परम का कुछ अंश छिपाए है, समाधि की एक झलक छुपाए है, आनंद का एक उतंग छुपाए है।

मूलाधार चक्र को विश्रांत करना है, विश्रांत कब्जियत से, विश्रांत अतिसार से। मूलाधार चक्र को अपने अधिकतम पर, एक सौ प्रतिशत पर कार्य करना है। तभी ऊर्जा गति करना प्रारंभ करती है।

दूसरा चक्र है स्वाधिस्थान चक्र, हारा, मृत्यु-केंद्र। ये दोनों केंद्र बहुत क्षतिग्रस्त हुए है। क्योंकि मनुष्य काम से भयभीत रहा है और मनुष्य मृत्यु से भी भयभीत रहा है। इसलिए मृत्यु से दूर रहना है: मृत्यु के विषय मे बात मत करो! इसे तो भूल ही जाओ। यह तो घटती ही नहीं। यदि कभी यह घटती हो भी, इस पर कोई ध्यान मत दो। इसको अवधान में लाओ ही मत। यहीं सोचते रहो कि तुम सदा ही जीने वाले हो—मृत्यु से बचो।

तंत्र कहता है: न तो काम से बचो, न ही मृत्यु से बचो। यही कारण है कि सरहा श्मशान में ध्यान करने के लिए गया—मृत्यु से बचने के लिए नहीं। और वह तीर बनाने वाली स्त्री के साथ रहा स्वस्थ काम का, परिपूर्ण काम का, अधिकत्म काम का एक जीवन जीने के लिए। श्मशान भूमि में, एक स्त्री के साथ रहा, उस स्त्री के साथ रहने के कारण उसके क्रेंद्रों को विश्रांति मिली, उसे खिलने में सहयोग मिला, उसके द्वार पुर्णता से खुल गए। मृत्यु और काम। एक बार तुम मृत्यु को स्वीकार कर लो और इससे भयभीत न रहो, एक बार तुम काम को स्वीकार कर लो और इससे भयभीत न रहो, तुम्हारे दोनों निचले केंद्र विश्रांति में हो जाते हैं।

और यही दो वे निचले केंद्र है जो समाज द्वारा क्षति-ग्रस्त किए गये है। बुरी तरह से क्षति-ग्रस्त। एक बार ये स्वास्थ हो जाएं...बाकी पांच केंद्र क्षति-ग्रस्त नहीं होते, इन्हें क्षति-ग्रस्त करने की अवश्कता ही नहीं होती क्योंकि इन पांचों क्रेंद्र तक लोग जीते ही नहीं वहां तक पहूंचते ही नहीं। इस लिए समाज इन्हें क्षति-ग्रस्त करने के बारे मे सोचता ही नहीं क्योंकि उसका काम तो निचले दो केंद्र से ही चल जाता है। ये दो केंद्र तो प्राकृतिय रूप में उपलब्ध हैं। जन्म घट चुका है—काम केंद्र मूलाधार। और मृत्यु धटने को है: स्वाधिस्थान—दूसरा केंद्र। ये दो चीजें हर व्यक्ति के जीवन मे हैं, इसलिए समाज ने इन दोनों केंद्र को नष्ट कर दिया है। और इन्हीं दोनों की सहायता से शासन करने की चेष्टा की है।

तंत्र कहता है: ध्यान करो जब तुम संभोग मे उतरो, ध्यान करो जब कोई मरता हो—वहां जाओ, देखो, उस पर अवध्यान करो। मरते हुए व्यक्ति की बगल में कुछ क्षण के लिए बैठ जाओ। उसकी मृत्यु को महसूस करो, उसमे भागीदार बनो। मरते हुए आदमी के साथ गहन ध्यान मे उतरो। और जब कोई आदमी मर रहा होता है तब इस बात की संभावना है कि मृत्यु का स्वाद लिया जा सकता है। क्योंकि इस बात को जरा समझों कि जब कोई व्यक्ति मर रहा होता है, वह स्वाधिस्थान चक्र से बहुत सी ऊर्जा मुक्त करता है...उसे ऊर्जा मुक्त करनी पड़ती है क्योंकि वह मर जो रहा है। बिना इसे मुक्त किय वह मर भी नहीं सकता। क्योंकि स्वाधिस्थान चक्र पर समस्त दबी हुई ऊर्जा मुक्त होगी ही क्योंकि अब वहां उसका काम खत्म हो रहा है, वह मर जो रहा है। इस बात को जरा समझ लो।

इसलिए जब कोई आदमी या कोई स्त्री मरती हो, इस अवसर को चूको मत। यदि तुम किसी मरते हुए व्यक्ति के पास हो, मौन हो, शांत बैठे हो, चुपचाप ध्यान की अवस्था में बैठे हो। उस अवसर का उपयोग करे ध्यान में उतरों और देखों तुम किस सरलता से ध्यान की गहराई में उतर सकते हो। जब भी कोई मरता है तब अचानक एक विस्फोट से ऊर्जा चारों और फैल जाएगी, और तुम मृत्यु का स्वाद ले सकते हो। और उससे तुम्हें बड़ी विश्रांति मिलेगी: हां, मृत्यु घटती है, पर मरता कोई नहीं। हां, मृत्यु घटती है, पर सच तो यह है कि मृत्यु कभी घटती ही नहीं।

संभोग के समय, ध्यान करो ताकि तुम जान सको कि समाधि का कुछ अंश कामुकता में प्रवेश कर जाता है। और मृत्यु पर ध्यान करते समय, इसमे गहरे उतरो ताकि तुम देख सको कि अमर्त्य का कुछ मृत्यु में प्रवेश करता हे। ये दो प्रयोग बहुत सरतला से ऊपर जाने में तुम्हारी सहायता कर सकते है। और मैं कहता हूं की जरूर ही करेंगे।

इस बात भी जरा समझ लो, की संभोग से बाकी पांच केंद्र जो तुम्हारे है वह नष्ट नहीं होते है। वह तो उस समय समंजित होते है, बस इतना भर करना है उससे ऊर्जा को गति करने देनी है, उसे रोकना नहीं है, वे वहां पूर्णत: समंजित होते है—बस ऊर्जा से उन दोनों केंद्रों की सहायता की जाए, ऊर्जा गति करना प्रारंभ कर देती है। इसलिए मृत्यु और प्रेम को अपने ध्यान की दो विषय वस्तु होने दो। उसे सरलता और सहजता से अपने जीवन मे उतरने दो।

अंतिम प्रश्न: प्यारे ओशो, क्या 'ओशो' सारे संसार में कोका-कोला के विज्ञापन की भांति ही होने जा रहा है?

क्यों नहीं....... ?

आज इतना ही

नौवां प्रवचन

अपने में थिर निष्कलंक मन

(दिनांक-29 अप्रैल 1977 ओशो आश्रम पूना)

सुत्र:

जब (शिशिर में) छेड़ता है निश्चल जल को समीर
बन हिम ग्रहण कर लेता है वह
आकृति और बनावट किसी चट्टान सी
जब होता मन व्यथित है व्याख्यात्म विचारों से
जो अभी तक था एक अनाकृत सौम्य सा
बन वही जाता है कितना ठोस और कठोर।
अपने में थिर निष्कलंक मन कभी नहीं होगा दूषित
संसार या निर्वाण की अपवित्रताओं से भी
कीचड़ में पड़ा एक कीमती रतन ज्यों
चमकेगा नही यद्यपि है उसमें कांति।
ज्ञान चमकता नहीं है अंधकार में,
पर अंधकार जब होता है प्रकाशित,
पीड़ा अदृश्य हो जाती है(तुरंत)
शाखाएं-प्रशाखएं उग आती है बीज से
पुष्प पल्वित होते नुतपात शाखाओं से।
जो कोई भी सोचता-विचारा है
मन को एक या अनेक, फेंक देता है
वह प्रकाश को और प्रवेश करता है संसार में
जो चलता है (प्रचण्ड) अग्नि मे खुली आंख
तब किस और होगी करूण की आवश्यकता अधिक।

आह, अस्तित्व का सौंदर्य, इसका शुद्ध आनंद, उल्लास, गीत और नृत्य! पर हम तो यहां है नहीं। हम हैं ऐसा दिखाई तो पड़ता है पर हम लगभग हैं अस्तित्व-हीन-क्योंकि अस्तित्व के साथ संपर्क हमने खो दिया है। इसमे अपनी जड़ों को हमनें खो दिया है। हम उस वृक्ष की भांति है, जिसकी जड़ें उखड़ गई हों। अब जीवन सत्व उसमें नहीं बहता, उसका रस सूख गया है। अब उसमें फूल या फल लगेंगे नहीं। अब तो पक्षी भी हममें शरण लेने के लिए नहीं आते।

हम मुर्दा हैं। क्योंकि हम अभी तक पैदा ही नहीं हुए हैं। हमने भौतिक जन्म को ही अपना जन्म मान लिया है। वह हमारा जन्म नहीं है। हम अभी तक मात्र संभावनाएं हैं। हम वास्तविक अभी नहीं हुए हैं। इसीलिए यह संताप है। वास्तविक तो आनंदपूर्ण है, संभावना दुखद है। ऐसा क्यों है? क्योंकि विश्रांति में नहीं हो सकता। संभाव्य तो निरंतर बेचैन है—इसे बेचैन होना ही है। कोई चीज होने को है! वह अधर में लटकी है। यह विस्मृति में है।

यह एक बीज की भांति है—बीज कैसे निश्चल हो सकता है, कैसे विश्रांति में हो सकता है? निश्चलता और विश्रांति तो केवल फूलों के द्वारा जानी जा सकती है। बीज को तो गहन संताप में होना ही है, बीज को तो निरंतर कंपना ही है। कंपकपाहट यह है: क्या वह वास्तविक हो जाने में समर्थ हो सकेगा? अथवा क्या वह मर जाएगा बिना पैदा हुए ही? बीज भीतर कंपता रहता है। बीज को चिंता है, संताप है। बीज सो नहीं सकता; बीज अनिन्द्रा से पीड़ित रहता है।

संभाव्य महत्वाकांक्षी है; संभाव्य भविष्य की लालसा करता है। क्या तुमने अपने स्वयं के अस्तित्व में इसका अवलोकन नहीं किया है? कि तुम निरंतर किसी बात के घटने की लालसा करते रहते हो और यह घटती नहीं, कि तुम निरंतर उत्कंठा, आशा, इच्छा करते रहते हो, स्वप्न देखते रहते हो, और यह घटती नहीं! और जीवन गुजरता जाता है। जीवन तुम्हारे हाथों से फिसलता चला जाता है। और मृत्यु समीप आ जाती है और तुम अभी तक वास्तविक नहीं हुए होते। कौन जानता है? कौन पहले आएगा?—वास्तवीकरण, अनुभूति, स्फुटन, या हो सकता है मृत्यु? कौन जानता है? इसीलिए भय है, संताप है, कंपन है।

सोरेन किरेकगाड ने कहा है कि मनुष्य एक कंपन है। हां, मनुष्य एक कंपन है क्योंकि मनुष्य एक बीज है। फ्रैडरिक नीत्से ने कहा है कि मनुष्य एक सेतु है। एकदम सहीं! मनुष्य को कोई विश्रांत करने की जगह नहीं है। यह तो एक सेतु है जिसे पार किया जाना है। मनुष्य एक द्वार है जिसमें से होकर गुजरना है। तुम मनुष्य होने में विश्राम नहीं कर सकते हो। मनुष्य कोई प्राणी नहीं है: मनुष्य तो रास्ते का एक तीर है, दो शाश्वतताओं के बीच खिंची एक रस्सी है। मनुष्य एक तनाव है। सभी प्राणियों में केवल मनुष्य ही है जो चिंता से पीड़ित है। वह पृथ्वी पर एक मात्र पशु है। जो एक पीड़ित प्राणी है। इसका क्या कारण हो सकता है?

यह केवल मनुष्य ही है जिसका अस्तित्व एक संभावयता के रूप में होता है। एक कुत्ता वास्तविक है, उसे कुछ और नहीं होता है। एक भैंस वास्तविक है, वह कुछ अधिक नहीं हो सकती है। उसके साथ जो घटना था वह पहले से ही घट चुका है। जो कुछ भी हो सकता था, वह हो चुका है। तुम एक भैस से यह नहीं कह सकते की, 'तुम अभी तक भैंस नहीं हो।'—यह बड़ी ही मूढ़तापूर्ण होगा। पर एक आदमी से तुम यह कह सकते हो, 'तुम अभी तक आदमी नहीं हए हो।' एक आदमी से तुम यह कह सकते हो, 'तुम अधुरे हो।' तुम एक कुत्ते से यह नहीं कह सकते, 'तुम अधूरे हो।' यह कहना कितना भद्दा और मुढ़ता पूर्ण लगेगा। सब पशु-पक्षी पूर्ण है।

मनुष्य की एक संभावना है, एक भविष्य है। मनुष्य एक अंतराल है। इसीलिए निरंतर भय भी है: हम यह कर पाऐंगे अथवा नहीं? क्या इस बार हम सफल हो पाएंगे अथवा नहीं? पहले भी हम निरंतर बार चूके हैं? क्या हम इस बार भी चूक जाएंगे? यही कारण है कि हम आनंदित नहीं है। अस्तित्व तो उत्सव मनाता ही जाता है। वहां बड़े गीत है, वहां आनंद है, वहाँ बड़ा हर्षोन्माद है, सारा अस्तित्व सदा आनंद में है। यह एक कार्निवाल है। सारा अस्तित्व प्रत्येक क्षण एक परम आनंद में है। बस मनुष्य ही किसी तरह एक अजनबी बन गया है।

मनुष्य निर्दोषपन की भाषा ही भूल गया है। मनुष्य भूल गया है कि अस्तित्व से कैसे संबंधित हुआ जाए। मनुष्य शायद भूल गया है कि स्वयं से कैसे संबंधित हुआ जाए। मनुष्य भूल गया एक बात की स्वयं से संबंध होने का अर्थ है ध्यान। अस्तित्व से संबंधित होने का अर्थ है प्रार्थना। मनुष्य वह भाषा ही भूल गया हे। यही कारण है कि हम अजनबी से जान पड़ते हे। अपने घर में ही अजनबी। स्वयं से ही अजनबी। हम नहीं जानते कि हम कौन हैं, हम नहीं जानते कि हम क्या हैं, और शायद हम नहीं जानते कि हम क्यों यहां जिए चले जा रहे है। यह एक अनंत प्रतीक्षा जान पड़ती है...गोडोत की प्रतीक्षा।

कोई नहीं जानता कि गोडोत को कभी आना है भी अथवा नहीं। सच में तो यह गोडोत है कौन, कोई यह भी नहीं जानता—पर आदमी को किसी न किसी की प्रतीक्षा तो करना ही होती है। इसलिए किसी विचार को

रच ही लेता है और फिर उसी की प्रतीक्षा किए चला जाता है। ईश्वर वही विचार है। स्वर्ग भी वहीं एक विचार है। निर्वाण भी वही विचार है। आदमी को प्रतीक्षा करनी ही पड़ती है। क्योंकि किसी न किसी तरह वह अपने अस्तित्व को भरना चाहता है, वरना तो वह बड़ा खालीपन महसूस करता है। प्रतीक्षा से एक प्रयोजन का, एक दिशा का भान होता है। तुम अच्छा महसूस कर सकते हो। कम से कम तुम प्रतीक्षा तो कर रहे हो। अभी तक यह घटा नहीं है। परंतु किसी न किसी दिन तो यह घटना ही है। यह क्या है जिसे कि घटना है?

हमने तो कभी सही प्रश्न ही नहीं उठाया है। सही उत्तर का तो कहना ही क्या? हमने तो सही प्रश्न क्यों नहीं पूछा कभी? और इसे याद रखना, एक बार सही प्रश्न पूछ लिया जाए, तो सही उत्तर बहुत दूर नहीं होता। यह बस कोने में ही है। सच तो यह है कि यह सही प्रश्न में ही छिपा है। यदि तुम सही प्रश्न पूछते ही जाओ, तुम उस प्रश्न पूछने में ही सही उत्तर को पा लेते हो।

इसलिए पहली बात जो मैं आज तुमसे कहना चाहूंगा वह यह है कि हम चूक रहे हैं, हम निरंतर चूक रहे हैं क्योंकि हमने अस्तित्व से संबंधित होने के लिए मन को ही भाषा के रूप में ले लिया है। और मन तरकीब है तुम्हें अस्तित्व से काट कर अलग कर देने की। यह तुम्हें बंद कर देने की विधि है, यह तुम्हें खुला रखने की विधि नहीं है। सोच-विचार ही तो बाधा है। विचार तो तुम्हारे चारों और चीन की दीवार की भांति हैं, और तुम विचारों में ही टटोलते रहते हो। तुम सचाई को स्पर्श न कर पाओगे। ऐसा नहीं है कि सचाई तुमसे बहुत दूर है। परमात्मा अति समीप ही है—बस ज्यादा से ज्यादा एक प्रार्थना भर की दूरी है।

परंतु यदि तुम सोचविचार, चिंतन-मनन, विश्लेषण, व्याख्याकरण, दर्शनीकारण जैसी कोई चीज कर रहे होते हो, तब तुम सच्चाई से कौसो दूर जा रहे होते हो। बहुत परे, परे और परे हटते ही जाते हो। क्योंकि जितने ही अधिक विचार तुम्हारे पास होते है उनके अंदर से देख पाना उतना ही अति कठिन होता है। वे एक बड़ा कुहासा खड़ा कर देते है। वे अंधापन पैदा कर देते हैं।

तंत्र के आधारों में से एक यह है कि सोच-विचार करने वाला मन चूकने वाला मन है, कि सोचना-विचारना सचाई से संबंधित होने की भाषा नहीं है। तब सचाई से संबंधित होने की भाषा क्या है? अ-विचार। सचाई के साथ शब्द अर्थहीन हैं। मौन अर्थपूर्ण है। मौन सारगर्भित है, शब्द तो बस मृत हैं। आदमी को मौन की भाषा सीखनी होती है।

और फिर कोई ठीक इस तरह की घटना घटती है: तुम अपनी मां के गर्भ में थे—तुम इस विषय में पूरी तरह से भूल चुके हो पर नौ महा तक तुम एक शब्द भी नहीं बोले थे...पर तुम साथ-साथ थे, गहन मौन में। तुम अपनी मां के साथ एक थे; तुम्हारे और तुम्हारी मां के बीच में कोई बाधा न थी। एक अलग प्राणी के रूप में तुम्हारा अस्तित्व न था। उस गहन मौन में तुम्हारी मां और तुम एक थे। वहां गहन एकांत था। पर एक मिलन न था, यह एकत्व था। तुम दो न थे, इसलिए यह एक मिलन न था—यह बस एकत्व था। तुम दो न थे।

जिस दिन तुम पुन: मौन हो जाते हो, वही घटना घटती है, फिर से तुम अस्तित्व के गर्भ में गिर जाते हो; फिर से तुम संबंधित होते हो—तुम एक बिलकुल ही नए ढंग से संबंधित हो जाते हो। ठीक-ठीक कहें तो बिलकुल नए ढंग से तो नहीं, क्योंकि अपनी मां के गर्भ में तो तुमने इसे जाना था, पर तुम इसे भूल गए हो। यही मेरा तात्पर्या है जब मैं कहता हूं कि आदमी संबंधित होने की भाषा भूल गया है। यही तो उसका ढंग है: जैसे कि अपनी मां के गर्भ में तुम उससे संबंधित थे—हर स्पंदन तुम्हारी मां को संप्रेषित हो जाता था, मां का हर स्पंदन तुम्हें संप्रेषित हो जाता था। वहां बस एक संगति थी; तुम और तुम्हारी मां के बीच कोई असंगति न थी। असंगति तो केवल तभी आती है जब विचार बीच में आ जाते है।

बिना विचार के तुम कैसे किसी को गलत समझ सकते हो? क्या तुम ऐसा कर सकते हो? क्या तुम मुझे गलत समझ सकते हो यदि तुम मेरे बारे में विचार न करो? तुम गलत समझ कैसे सकते हो? और तुम मुझे ठीक भी कैसे समझ सकते हो यदि तुम सोचते होओ? असंभव है। जिस क्षण तुम सोचते हो, तुमने व्याख्या करनी शुरू कर दी है। जिस क्षण तुम सोचते हो, तुम मेरी और देख नहीं रहे होते हो। तुम मुझसे बच रहे होते हो। तुम अपने विचारों के पीछे छिप जाते हो। तुम्हारे विचार आते है तुम्हारे अतीत से। मैं यहां मोजूद हूं। मैं एक वक्तव्य हूं यहां-अभी और तुम अपने अतीत को लेकर आते हो।

तुम अष्टपाद के विषय में जानना चाहिए। जब अष्टपाद छिपना चाहता है, यह अपने चारों तरफ काली स्याही छोड़ता है, काली स्याही का एक बादल। तब कोई अष्टपाद को नहीं देख सकता। यह अपने ही द्वारा निर्मित काली स्याही के बादल में खो जाता है, यह एक सुरक्षा का उपाय है। ठीक यही घटना घटती है जब तुम अपने चारों और विचारों का एक बादल छोड़ देते हो—तुम इसी में खो जाते हो। जब न तुम किसी से संबंधित हो सकते हो, न कोई तुमसे संबंधित हो सकता है। किसी मन के साथ संबंधित हो पाना असंभव है, तुम केवल एक चेतना के साथ संबंधित हो सकते हो।

चेतना का कोई अतीत नहीं होता। मन तो बस अतीत है और कुछ भी नहीं। इसलिए पहली बात जो तंत्र कहता है। वह यह है कि तुम्हें रति-आनंद की भाषा सीखनी होगी। पुन: जब तुम एक स्त्री से या पुरूष से संभोग करते होते हो तो क्या घटता है? कुछ क्षणों के लिए—यह बड़ा दुर्लभ है; यह दुर्लभ से दुर्लभतर होता जा रहा है। जैसे-जैसे आदमी सभ्य से सभ्यतर होता जा रहा है—पुन: कुछ क्षणों के लिए तुम मन में नहीं होते। एक झटके के साथ तुम मन से अलग हो जाते हो। एक छलांग में तुम मन से बाहर आ जाते हो। रति-आनंद के उन कुछ क्षणों के लिए जबकि तुम मन से बाहर होते हो, तुम पुन: संबंधित हो जाते हो। फिर से तुम गर्भ में वापस होते हो... अपनी स्त्री के गर्भ में, या अपने पुरूष के गर्भ में। तुम अब अलग नहीं होते। फिर से वहां एकत्व होता है—मिलन नहीं।

जब तुम एक स्त्री या पुरूष से संभोग करना शुरू करते हो, मिलन की शुरूआत होती है। पर जब रतिक्षण आता है। तब वहां मिलन नहीं होता—वहां एकत्व होता है; द्वैत खो जाता है। उस गहन, चोटी के अनुभव में क्या होता है?

तंत्र तुम्हें बार-बार याद दिलाता है कि उस चोटी के क्षण में जो घटता है वही वह भाषा है जिससे कि अस्तित्व से संबंधित हुआ जा सकता है। यह भाषा है रहस्यों की सहास की, यह भाषा है तुम्हारे होने की। इसलिए चाहे तो इस तरह से सोचो कि तुम अपनी मां के गर्भ में थे, अपना चाहे स्वयं को फिर से अपनी प्रेमिका के गर्भ में खो जाने की तरह से सोचो। और कुछ क्षणों के लिए मन बस काम नहीं करता।

अ-मन की ये कुछ झलके है तुम्हारी समाधि की, झलकें है सतोरी की, झलकें है परमात्मा की। उस भाषा को हम भूल गए हैं और वह भाषा फिर से सीखी जानी है। प्रेम वह भाषा है।

प्रेम की भाषा मौन है। दो प्रेमी जब सच ही में गहन लयवद्धता में होते हैं, जिसे कि कार्ल गुस्तक जुंग समक्रमिकता कहता है। जब उनके स्पंदन एक दूसरे मे बस समस्वर हो रहे होते हैं, जब वे दोनों एक ही तरंग दैर्घ्य मे तरंगित हो रहे होते हैं, तब वे मौन होते हैं, तब वे बातचीत करना पसंद नहीं करते। ये तो केवल पति-पत्नी ही है जो केवल बात-चीत किए चले जा रहे है। प्रेमी तो मौन हो जाते है।

सच तो यह है कि पति और पत्नी मौन नहीं रह सकते क्योंकि भाषा दूसरे से बचने की तरकीब है। यदि तुम दूसरे से बच नहीं रहे हो, यदि तुम बातचीत नहीं कर रहे हो यह (स्थिति) बड़ी असमंजस में डाल देने वाली होती है। यह दूसरे उपस्थिति है। पति और पत्नी तुरंत अपनी स्याही छोड़ने लग जाते हैं। कुछ भी बातचीत काम

करेगी, पर वे अपने चारों और स्याही छोड़ने लगते हैं, उस बादल में वे खो जाते हैं, फिर कोई समस्या नहीं रह जाती।

भाषा संबंधित होने की विधि नही है—अधिक या कम, यह (दूसरे से) बचने की विधि है। जब तुम गहन प्रेम में होते हो, तुम शायद अपनी प्रेमिका का हाथ पकड़े रहो, पर तुम मौन होओगे…पूर्णत: मौन, एक लहर भी नहीं। तुम्हारी चेतना की उस लहरहीन झील में कोई चीज संप्रेषित हो जाती है, संदेश दे दिया गया होता है। यह एक शब्दहीन संदेश होता है।

तंत्र कहता है कि मनुष्य को सीखनी है भाषा प्रेम की, भाषा मौन की, भाषा एक दूसरे की उपस्थिति की, भाषा ह्रदय की भाषा अस्तित्व की।

हमने एक भाषा सीख ली है जो कि अस्तित्वगत नहीं है। हमने एक परदेशी की भाषा सीख ली है। उपयोग इसका निश्चिय होता है। निश्चय ही एक प्रयोजन विशेष की पूर्ति भी यह करती है, पर जहां तक चेतना के उच्च-अन्वेषण का संबंध है, यह एक बाधा है। नीचे के स्तर पर तो यह ठीक-ठाक है—हाट-बजार में तो निश्चय ही तुम्हें एक भाषा की आवश्यकता होती है। वहां तो मौन से काम नहीं चलेगा। पर जैसे-जैसे तुम गहरे में, और गहरे में उतरते हो, भाषा से काम न चलेगा। वहां भाषा होती ही नहीं।

अभी उस दिन ही मैं चक्रों की बात कर रहा था, मैं ने दो चक्रों की बात की: मूलाधार चक्र और स्वाधिस्थान चक्र की। 'मुलाधार का अर्थ होता है जड़े, आधार।' ये काम का केंद्र है या तुम इसे जीवन-केंद्र, जन्म-केंद्र भी कह सकते हो। यह मूलाधार ही है जिससे कि तुम जन्म लेते हो। ये तुम्हारी मां का मूलाधार और तुम्हारे पिता का मूलधार ही हैं जिनसे कि तुमने अपना शरीर प्राप्त किया है। अगला चक्र है स्वाधिस्थान: इसका अर्थ होता है, स्व: का निवासस्थान—यह मृत्यु का चक्र होता है। यह बड़ा ही अदभुत नाम है: स्व: का निवासस्थान, स्वाधिस्थान—जहां तुम सच में रहते हो। मृत्यु में?…हां!

जब तुम मरते हो, तुम अपने विशुद्ध असतित्व पर आते हो—क्योंकि मरता केवल वही है जो तुम नहीं हो, शरीर मरता है, शरीर ही उत्पन्न होता है। मूलाधार से। जब तुम मरते हो, शरीर तो अदृश्य हो जाता है, पर तुम..न कुछ हो। क्योंकि मूलाधार ने जो कुछ दिया था वह स्वाधिस्थान द्वारा वापस ले लिया जाता है। तुम्हारी मां-पिता ने तुम्हें एक यंत्र विशेष दिया था, ये शरीर, वह मृत्यु ने तुमसे ले लिया। परंतु तुम…? तुम्हारा अस्तित्व तो जब तुम्हारे माता-पिता ने एक दूसरे को जाना था उससे भी पहले से था; तुम तो सदा ही रहे हो।

जीसस कहते हैं—कोई उनसे अब्राहम के बारे में पूछता है कि पैगाम्बर अब्राहम के बारे में वह क्या सोचते है। तब वह कहता हैं: 'अब्राहम? अब्राहम कभी था उससे पहले मैं हूं।'

अब्राहम जीसस से लगभग दो हजारा, तीन हजार वर्ष पहले हुआ था। और वह कहते है: अब्राहम था उससे पहले में हूं।

वह क्या बात कह रहे थे? जहां तक शरीर को संबंध है, वह अब्राहम से पहले कैसे हो सकते हैं? वह शरीर के विषय में बात ही नही कर रहे। वह बात कर रहे है मैं—हूं—अपनेपन के विषय में, अपने शुद्ध, अस्तित्व के विषय में…।

यह नाम, स्वाधिस्थान, सुंदर नाम है। यह ठीक वहीं केंद्र है जिसे जापान मे 'हारा' के नाम से जाना जाता है। इसलिए जापान में आत्महत्या को हाराकीरी कहते हैं—हारा केंद्र पर मर जाना या स्वयं को मार लेना। स्वाधिस्थान केवल उसी को ले लेता है जो मूलाधार द्वारा दिया गया होता है, लेकिन जो शश्वतता से आ रहा है होता है। तुम्हारी चैतन्य को नहीं लिया जा सकता। हिंदू चैतन्य के महान अन्वेषक रहे है। उन्होंने इसे स्वाधिस्थान कहा क्योंकि जब तुम मरते हो तब तुम जानते हो कि तुम कौन हो। प्रेम में मरो और तुम जान लोगे

कि तुम कौन हो। ध्यान में मरो और तुम जान लोगे कि तुम कौन हो। अतीत के प्रति मर जाओ और तुम जान लोगे कि तुम कौन हो। मन के प्रति मर जाओ और तुम जान लोगे कि तुम कौन हो। मृत्यु उपाय है उसे जानने का।

प्राचीन काल में गुरू को मृत्यु कहा जाता था। क्योंकि तुम्हें गुरू से मरना होता है, शिष्य को गुरू में मरना होता है... केवल तभी वह जान पाता है कि वह कौन है।

इन दोनों केंद्रों को समाज ने बहुत जहरीला बना दिया है। यह दो केंद्र समाज को सरलता से उपलब्ध हो जाते है। इनके अतिरिक्त पांच और केंद्र भी हैं। तीसरा, मणिपुर, चौथा है अनाहत, पांचवा है-विशुद्ध, छटा है-आज्ञा चक्र, और सातवां हैं सह्त्रासार।

तीसरा केंद्र मणिपुर, तुम्हारे समस्त संवेगों, भावनाओं का केंद्र है। हम अपनी समस्त भवनाओं को मणिपुर में दमित किए जाते हैं। इसका अर्थ है मणि—जीवन मूल्यवान है संवेगों, भावनाओं, हास्य, रूदन, आंसु और मुस्कानों के कारण। जीवन मूल्यवान है इन्हें सब चीजों के कारण। ये सब जीवन के गौरव हैं—इसलिए इस चक्र को मणिपुर कहते है। मणिपुरचक्र।

केवल मनुष्य ही इस कीमती मणि को रख पाने मे समर्थ है। पशु हंस नहीं सकते, स्वभावत: वे रो भी नहीं सकते। आंसुओं का सौंदर्य, हंसी का सौंदर्य, ये केवल मनुष्य को उपलब्ध है। इस महान उपलब्धी को केवल मनुष्य ने ही प्राप्त किया है। इसका आनंद मनुष्य ही ले सकता है। बाकी के सभी पशु केवल दो चक्रों के साथ जीते है। मूलाधार और स्वाधिस्थान। वे पैदा होते हैं, और मर जाते है। इन दोनों के बीच अधिक कुछ नहीं होता। यदि तुम भी अगर पैदा हुए और मर गए तो तुम भी पशु ही हो...। तुम अभी मनुष्य नहीं हुए हो। और बहुत से, लाखों लोग बस इन्हीं दो चक्रों के साथ जीते है, वो कभी इनके पार नहीं जाते।

हमें भावनाओं का दमन करना सिखाया गया है। हमें भावुकता को दबाने के लिए कहा जाता है, भावुकता एक रोग है, तुम्हें भावुक नहीं होना है। हमें सिखाया गया है कि भावुकता से कुछ लाभ नहीं है—व्यवहारिक बनो, कठोर बनो, कोमल मत बनो, मेद्य मत बनो वर्ना तुम्हारा शोषण कर लिया जाएगा। कठोर होओ! कम से कम दिखाओ तो यही कि तुम बहुत कठोर हो, कम से कम दिखावा तो यही करो कि तुम बहुत खतरनाक हो। कि तुम कोई कोमल प्राणी नहीं हो। अपने चारो और एक भय का माहोल पैदा करो। हंसो मत, क्योंकि यदि तुम हंसोगे, तुम अपने चारों तरफ भैया पैदा नहीं कर सकोगे। रोओ मत—यदि तुम रोते हो तो तुम दर्शते हो कि तुम स्वयं ही भयभीत हो। अपनी मानवीय सीमाएं दिखाओं मत। ऐसा दिखाव करो कि तुम पूर्ण हो।

तीसरे केंद्र का दमन करो और तुम सिपाही बन जाते हो, इंसान नहीं बल्कि सिपाही—एक फौजी की तरह, एक आज्ञाकारी बच्चे की तरह। एक मशीन, निर्मित कर दी जाती है तुम्हारे चारो और।

तंत्र ने इस तीसरे केंद्र को विश्रांत करने के लिए बहुत सा कार्य किया है। भावनाओं को मुक्त करना है, विश्रांत करना है। जब तुम्हें रोने जैसा लगे, तुम्हें रोना है; जब तुम्हें हंसने जैसा लगे तुम्हें हंसना है। दमन की इस बकवास को तुम्हें छोड़ना होगा, तुम्हें अभिव्यक्ति सीखनी है—क्योंकि अपने संवेगों के द्वारा ही, अपनी भावनाओं के द्वारा ही, अपनी संवेदन शीलता के द्वारा ही तुम उस स्पंदन तक पहुंचते हो जिसके द्वारा संप्रेषण संभव है।

क्या तुमने देखा है? तुम जितना चाहे कह दो और कुछ कहा नहीं जाता; पर एक आंसू तुम्हारे गाल पर लुड़क आता है और सब कुछ कह दिया जाता है। एक आंसू बहुत ही किमती है। कहने के लिए। तुम घंटो बात करते रहो और उससे काम नहीं चलता, और एक आंसू सब कुछ कह देता है। तुम कहते रह सकते हो, ‘मैं बहुत आनंदित हूं, यह और वह...पर तुम्हारा चेहरा बिलकुल विपरीत ही प्रदर्शित करेगा। थोड़ी सी हंसी एक सच्ची,

प्रामाणिकता बिखेर देती है। एक प्रामाणिक हंसी, और तुम कुछ कहतने की आवश्यकता नहीं रह जाती—हंसी सब कुछ कह देती है।' जब तुम अपने मित्र को देखते हो तुम्हारा चेहरा चमक उठता है, आनंद से दमकने लगता है।

तीसरे केंद्र को अधिक, और अधिक उपलब्ध किया जाना है। यह विचार को विरोधी है, इसलिए जब तुम तीसरे केंद्र को अनुमति दोगे, तुम अपने तनावग्रस्त मन में अधिक सरलता से विश्रांत हो सकोगे। प्रामाणिक होओ, संवदनशील होओ, अधिक स्पर्श करो, अधिक महसूस करो, अधिक हंसो, अधिक रोओ। और समरण रखना, तुम जितना आवश्यक है उससे अधिक कर भी नहीं सकते; तुम अतिश्योक्ति कर ही नहीं सकते। तुम जितना आवश्यक हो उससे एक आंसू भी अधिक ला नहीं सकते हो, और जितना आवश्यक हो उससे अधिक तुम हंस भी नहीं सकते हो। इस लिए न तो तुम भयभीत ही हाओ और न ही कंजूसी करो।

तंत्र जीवन को इसके समस्त संवेगों की अनुमति देता है। ये तीन निचले केंद्र हैं—निचले, किसी मूल्यांकन के अर्थ में नहीं कह रहा हूं, ये तीन नीचे वाले केंद्र हैं, सीड़ी के नीचे वाले तीन डण्डे।

फिर आता है चौथा केंद्र, हृदय केंद्र, जो अनाहत कहलाता है। यह शब्द बहुत सूंदर है। 'अनाहत' का अर्थ है बिना आहत की घ्वनि-इसका ठीक वहीं अर्थ है जो कि झेन लोगों का अर्थ सुनते है?'—बिना आहत की ध्वनि हृदय ठीक बीचों-बीच है: तीन केंद्र इसके नीचे और तीन केंद्र इसके ऊपर। और हृदय निम्न से उच्च का या उच्च से निम्न का द्वार है। हृदय एक चौराहे की भांति है।

और हृदय को पूरी तरह से छोड़ ही दिया गया है। तुम हृदय पूर्ण होना सिखाया ही नहीं गया है। तुम हृदय के क्षेत्र में जाने तक की अनुमति नहीं दी गई है। क्योंकि यह बहुत खतरनाक है। यह केंद्र है ध्वनि रहित ध्वनि का; यह गैर-भाषीय केंद्र है—अनाहत ध्वनि। भाषा आहत ध्वनि हे; हमें इसे अपने स्वर-तंतुओं से निर्मित करनी होती है; यह आहत (ध्वनि) है—यह दो हाथों की ताली हैं। हृदय एक हाथ की ताली है। हृदय में कोई शब्द नहीं है। यह नि:शब्द है।

हम हृदय से पूरी तरह से बचे हैं, हम इसे छोड़कर ही गुजर गऐ है। हम अपने होने में इस भांति गति करते हैं मानों कि हृदय हो ही नहीं—अथवा, अधिक से अधिक मानों कि यह बस एक श्वासन यंत्र हो, बस इतना ही। ऐसा पर है नहीं। फेफड़े हृदय नहीं है। हृदय तो फेफड़ों के पीछे गहराई में कहीं छिपा होता है। और न ही यह भौतिक है। यह तो वह जगह है जहां से प्रेम उठता है। यही कारण है कि प्रेम भावनात्मक नहीं है। भावनात्मक प्रेम तो तीसरे केंद्र से संबंधित होता है, चौथा से नहीं।

प्रेम केवल भावनात्मकत ही नहीं है। प्रेम में भावनाओं से अधिक गहराई है, प्रेम में भावनाओं से अधिक प्रामाणिकता है। भावनाएं तो क्षणिक होती हैं। अधिक या कम, प्रेम का संवेग ही प्रेम के अनुभव की तरह से गलत समझ लिया गया है। एक दिन तुम किसी स्त्री या किसी पुरूष के प्रेम में पड़ते हो और अगले दिन यह चला गया होता है—और तुम इसे ही प्रेम देते हो। यह प्रेम नहीं है। यह एक संवेग है: तुमने स्त्री को पसंद किया—पसंद किया, याद रखो, प्रेम किया नहीं—यह एक पसंद थी। ठीक ऐसे ही जैसे तुम आईसक्रीम को पसंद कर लेते हो। पसंद तो आती है जाती है। पसंद क्षणिक होती है, वे देर तक नहीं ठहर सकती; उसमें देर तक ठहर सकने का साम्थर्य नहीं होता। तुम एक स्त्री को पसंद करते हो, तुमने उसे प्रेम किया, और बात खत्म! पसंद खत्म हो गई। यह ठीक ऐसे ही है जैसे तुमने आईसक्रीम को पसंद किया और उसे खा लिया। अब तुम आईसक्रीम की और देखते तक नहीं। और यदि कोई तुम्हें और अधिक आईसक्रीम दिए चला जाए तो, तुम कहोगे, 'अब यह वमन पैदा करने वाली है। जरा रूको, अब मैं और नहीं खा सकता हूं।'

पसंद प्रेम नहीं है। पसंद को प्रेम समझने की भूल मत करना, वरना अपना सारा जीवन तुम एक पानी पर बहती लकड़ी रहोगे... एक व्यक्ति से तुम दूसरे तक जाते रहोगे। न कभी गहराई और न ही कभी घनिष्टता को तुम महसूस कर सकोगे।

चौथा केंद्र, अनाहत बड़ा महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह हृदय में ही है जब कि तुम पहली बार अपनी मां से संबंधित हुए थे। यह हृदय ही था। सिर नहीं, जिसके द्वारा तुम अपनी मां से जुड़े थे। गहन प्रेम में, गहन रति-आनंद में तुम फिर से हृदय से संबंधित होते हो, सिर से नहीं।

ध्यान में, प्रार्थना में, भी तुम इसी घटना को घटते हुए पाते हो। तुम अस्तित्व से हृदय के द्वारा जुड़ते हो—हृदय से हृदय का संबंध। हां यह एक वार्तालाप है हृदय से हृदय की। सिर से सिर की नहीं। यह गैर-भाषीए है। अ-शब्द है।

और हृदय केंद्र ही वह केंद्र है जहां से ध्वनि-रहित ध्वनि उत्पन्न होती है। यदि तुम हृदय केंद्र में विश्रांत हो जाओ, तुम ओंकार, औम की ध्वनि सुनोगें। यह एक महान खोज है। जिन लोगों ने भी हृदय में प्रवेश किया है। वे अपने हृदय में निरंतर एक धुन सुनते हैं जो कि ओम जैसी सुनाई देती है। कभी तुमने एक धुन जैसी कोई चीज सुनी है जो स्वत: ही होती रहती हो—ऐसा नहीं कि तुम उसे कहते हो। या उसे करते हो।

यही कारण है कि मैं मंत्रों के पक्ष में नहीं हूं। तुम ओम..ओम..ओम की धुन लगातार गा सकते हो, तब एक कंपन गुंजयमा होता है, एक प्रकार गुंजन...वह ओम की ध्वनि नहीं है। तुम हृदय का एक मानसिक परिपूरक निर्मित कर सकते हो। परंतु याद रखो इससे तुम्हें सहायता नहीं मिलेगी। यह एक प्रकार का धोख ही होगा। और तुम वर्षों तक यह धुन दोहराए जा सकते हो, और तुम अपने भीतर एक झूटी ध्वनि निर्मित कर ले सकते हो जिैसे कि तुम्हारा हृदय बोल रहा हो—यह बोल रहा नहीं होता। हृदय के अनाहत नाद को जानने के लिए तुम्हें ओम का जाप नहीं करना होता—तुम्हें बस मौन होना होता है। एक दिन, अचानक, मंत्र वहां होता है। एक दिन जब तुम मौन होते हो, अचानक तुम सुनते हो कि वह ध्वनि आ रही है किसी स्थान से नहीं। यह तुम में से उठ रही है। तुम्हारे अंतरतम केंद्र से उठ रही हे। यह तुम्हारे आंतरिक मौन की ध्वनि होती है। जैसे कि एक मौन रात्रि में, एक विशिष्ठ ध्वनि होती है। मौन की ध्वनि ठीक वैसे ही एक गहरे, बहुत गहरे स्तर पर तुम्हारे भीतर भी एक ध्वनि उठती है।

यह स्वत: उठती है—मुझे इस बात को तुम्हें बार-बार स्मरण कराने दो—ऐसा नहीं है कि तुम इसे भीतर लाते हो, ऐसा नहीं है कि तुम ओम-ओम दोहराते हो। न, तुम एक शब्द भी नहीं कहते। तुम बस चुप होते हो। तुम बस मौन होते हो। और यह एक झरने की भांति फूट पड़ता है...अचानक यह प्रवाहित होना प्रारंभ हो जाती है। यह वहां होती है। तुम केवल इसे सुनते हो-बोलते नहीं। ये अंतरतम की ध्वनि है, शाश्वत की ध्वनि है केंद्र की ध्वनि है।

यह अर्थ है जब मुसलमान कहते है कि मौहम्मद ने कुरान सुनी—उसका यही अर्थ है। यह ठीक वही घटना है जो तुम्हारे हृदय के अंतरम केंद्र पर घटती है। ऐसा नहीं है तुम इसे दोहरा रहे होते हो। मौहम्मद ने कुरान को सुना—उन्होंने इसे अपने भीतर घटते सुना। वह सच में हैरान रह गए थे। ऐसा कोई चीज उन्होंने इससे पहले नहीं सुनी थी। यह इतनी अजनबी, अनजानी थी, यह इतनी अपरिचित थी। कथा कहती है कि वह बीमार हो गए। यह इतनी विलक्षण घटना थी। जब एक दिन, अपने कमरे में बैठ-बैठे, अचानक अपने भीतर तुम ओम-ओम या कुछ और सुनने लग जाओ, तुम भी महसूस करने लगोगे, 'क्या में पागल तो नहीं हो गया हूं?' वहीं कहीं से बहकर आ रही होती है, तुम इसे दोहरा नहीं होते, तुम्हारे होट इसे बुदबुदा नहीं होते...कोई इस कर नहीं रहा होता। क्या तुम पागल हो रहे हो?

मोहम्मद एक पहाड़ी की चोटी पर बैठे हुए थे जब उन्होंने इसे सुना। वह घर वापस आए, कंपकंपाते हुए, पसीने-पसीने होते हुए, उन्हें तेज बुखार भी हो गया था। वह सच में ही परेशान हो गए थे। ये अनुभव होता ही इतना सजीव है। उन्होंने अपनी पत्नी को कहा, 'सारे कंबल ले आओ और मेरे उपर डाल दो! मुझे न जाने क्या हो गया है, ऐसी कंपकपाहट पहले कभी नहीं हुई, मुझे बुखार भी चढ़ गया है। तब उनकी पत्नी ने उन्हें देखा की उनका चेहरा एक आभा से दमक रहा था। यह किस तरह का बुखार है? उनकी आंखें एक अप्रतितम सौंदर्य से लवरेज थी। उनके आस पास एक प्रसाद झर रहा था।' पूरा घर एक आलोकिक सूंगध से भर गया था। एक आभा हर और छाई थी। एक महान मौन सारे घर में फैला हुआ था। उनकी पत्नी बहुत समझदार और संवेदनशील थी। वह भी उसे महसूस करने लगी। उसे भी वह सुनाई देने लगा। उसने मोहम्मद सहीब को कहा: 'मैं नहीं सोचती की यह एक साधारण बुखार है, मैं तो समझती हूं कि परमात्मा ही उतर आया है आप में, उनका आशीर्वाद झर रहा है आपके आस-पास, मैं उसे सघनता से महसूस कर रही हूं, यह अति शुभ है, आप डरो मत। ये अति शुभ है। हुआ क्या है तुम्हें मुझे बताओ?'

मोहम्मद सहीब की पत्नी पहली मुसलमान थी। खादिजा उसका नाम था। वह पहली धर्मान्तरित व्यक्ति थी। उसने कहां की मैं देख सकती हूं परमात्मा तुम में घट रहा है। कुछ तुम से बह रहा है, तुम्हारा हृदय एक विशाल झरना बन गया है। तुम कांतिमय हो गए हो। ऐसा रूप तुम्हारा पहले मैंने कभी नहीं देखा। ये कोई साधारण घटना नहीं है। तुम चिंता मत करो मुझे बताओ...तुम जरा भी चिंतित मत हो। क्यों तुम इतने कांप रहे हो। कुछ तुम में घट रहा है वह अति शुभ है। उसे उतरने दो। डरो मत।

तब कहते है मोहम्मद न उन्हें सारी बात बतलाई, बहुत ही डरते-डरते हुए। वह डर रहे थे कि वह क्या सोचेगी, पर वह तो धर्मान्तरित हो गई—वह पहली मुसलमान थी।

ऐसा ही सदा हुआ है। हिंदु कहते है कि वेदों के वचन स्वयं ईश्वर द्वारा उतरे है। इसका सीधा आवहन हुआ है। वह बस सुने गये है। भारत में पवित्र ग्रंथो के लिए हमारे पास एक शब्द है, वह शब्द है, श्रुति–श्रुति का अर्थ है वह जो कि सुना गया हो।

हृदय के इस केंद्र पर, अनाहत चक्र पर, तुम सुनते हो। पर तुमने तो अपने भीतर कुछ सुना ही नहीं है—न कोई ध्वनि, न ओंकार, न मंत्र ही। इसका सरल सा अर्थ बस यह है कि तुम हृदय से बच गए हो। झरना है और बहते हुए जल की ध्वनि भी है—पर तुम इससे बच गए हो। तुम इससे बच कर गुजर गए हो, तुमने कोई दूसरा रास्ता चुन लिया है। तुम किसी लधु-मार्ग से चले गए हो। यह लधु मार्ग चौथे केंद्र को बचाता हुआ तीसरे केंद्र से गुजरता है। चौथा सबसे जयादा खतरनाक केन्द्र है। क्योंकि यही वह केन्द्र है जिससे कि भरोसा पैदा होता है, श्रृध्या पैदा होती है। और मन को इससे बचना है। यदि मन इससे नहीं बचेगा, तब संदेह की संभावना न रहेगी। मन जीता है संदेह से।

यह चौथा केन्द्र है। और तंत्र कहता है कि प्रेम के द्वारा तुम इस चौथे केन्द्र को जान सकोगे।

पाँचवाँ केन्द्र 'विशुद्धि' कहलता है। विशुद्धि का अर्थ है पवित्रता। निश्चय ही, प्रेम जब घट गया होता है उसके उपरांत ही पवित्रता और निर्दोषता घटती है—उससे पहले कभी नहीं। केवल प्रेम ही शुद्ध करता है, और केवल प्रेम—और कोई चीज शुद्ध नहीं करती। कुरूपतम व्यक्ति भी प्रेम में सुंदर बन जाता है। प्रेम अमृत है। यह सभी विषो का साफ कर देता है। इसलिए पाँचवाँ चक्र विशुद्धि कहलाता है। विशुद्धि का अर्थ शुद्धि पूर्ण शुद्धि। यह कंठ केंद्र है।

और तंत्र कहता है: केवल तभी बोलो जब तुम चौथे केन्द्र से होते हुए पांचवे केन्द्र तक पहुंच गए हो—केवल प्रेम से बोलो अन्यथा बोलो ही मत। केवल करूणा से बोला अन्यथा बोला ही मत। बोलने का अर्थ क्या

है? यदि तुम हृदय चक्र से होकर आए हो, और यदि तुमने ईश्वर को वहां बोलते सुना है या ईश्वर को एक झरने के समान वहां दौडते सुना है, यदि तुमने ईश्वर की घ्वनि को सुना है, एक हाथ की ताली को सुना है, तब ही तुम्हें अनुमति है बोलने की, तब तुम्हारा कंठ केन्द्र संदेश को प्रेषित कर सकता है। तब तो शब्दों में भी कोई चीज उडेली जा सकती है। जब तुम्हारे पास यह हो, तो इसे शब्दों में उडेला जा सकता है।

बहुत थोड़े से लोग ही पांचवे केन्द्र पर पहुंचते है, बहुत ही थोड़े—क्योंकि वे चौथे तक ही नहीं पहुंच पाते, तो पांचवे तक तो वे कैसे पहुंच सकते है। यह बड़ी दुलर्भ बात है। कभी कोई क्राइस्ट, कोई बुद्ध, कोई सरहा जैसे लोग ही पांचवे पर पहुंचते है। उनके शब्दों का सौन्दर्य तक महान है—उनके मौन का तो कहना ही क्या? उनके शब्दों तक मैं मौन समाया होता है। वे बोलते हैं और फिर भी वे बोलते नहीं है। वह कहते हैं और वे उसे भी कह देते हैं जिसे कि कहा नहीं जा सकता, जो कि अनिर्वचनीय है, अनाभिव्यक्त है।

तुम भी कंठ का उपयोग तो करते ही हो पर वह विशुद्धि वहां नहीं है। वह चक्र तो पूरी तरह से मृत ही है। जब वह चक्र प्रारंभ होता है, तुम्हारे शब्दों में मधु होता है। तब तुम्हारे शब्दों में एक सुंगध होती है। तब तुम्हारे शब्दों में एक संगीत होता है। एक नृत्य होता है, तब जो भी कुछ तुम कहते हो वह एक काव्य बन जाता है। जो कुछ भी तुम उच्चारित करते हो, वह आनंद का मंत्र बन जाता है।

और छटा चक्र है आज्ञा चक्र, आज्ञा का अर्थ है व्यवस्था। छट्ठे चक्र के साथ ही तुम व्यवस्थित होते हो, उससे पहले कभी नहीं। छट्ठे चक्र के साथ ही तुम मालिक होते हो, उससे पहले कभी नहीं। उससे पहले तो तुम एक गुलाम थे। छट्ठे चक्र के साथ, जो कुछ भी तुम कहोगे वही हो जाएगा। जो भी तुम्हारी इच्छा होगी, पूरी हो जाएगी। छट्ठे चक्र के साथ ही तुम्हारे पास संकल्प होता है। और इसमें जीवन है उससे पहले कभी नहीं। उससे पहले संकल्प होता ही नहीं। पर इसमें एक असंगति है।

चौथे चक्र में अहंकार विलीन हो जाता है। पांचवे चक्र में सब अशुद्धियां विलीन हो जाती है। और तब तुम्हारे पास संकल्प होता है—अंत: इस संकल्प से तुम किसी को हानि नहीं पहुंचा सकते। सच तो यह है कि अब यह तुम्हारा संकल्प है ही नहीं; यह परमात्मा का ही संकल्प बन जाता है। क्योंकि अहंकार विलीन हो गया है। चौथे चक्र पर जाकर सब अशुद्धियां विलीन हो जाती है। पांचवे पर अब तुम एक शुद्धत्म अस्तित्व हो। बस एक वाहन हो, एक उपकरण हो, एक संदेशवाहक हो। अब तुम्हारे पास संकल्प है क्योंकि तुम हो ही नहीं। अब केवल परमात्मा की इच्छा ही तुम्हारी इच्छा बन जाती है।

बहुत ही कभी कोई व्यक्ति इस छट्ठे चक्र तक पहुंचते हैं। क्योंकि, एक तरह से तो यह, अंतिम ही है। संसार में तो यह आखिरी है। इसके बाद सातवां चक्र भी है पर तब तो तुम एक पूर्णत: भिन्न जगत में, एक अलग ही सच्चाई में प्रवेश कर जाते हो। छट्ठा अंतिम सीमा रेखा है, सीमा चौकी है।

सातवां है सहस्त्रार का अर्थ है एक हजार पंखुडियों-वाला कमल का फूल। जब तुम्हारी ऊर्जा सातवें पर पहुंचती है। तुम एक कमल हो जाते हो। अब तुम्हें मधु के लिए किसी दूसरे कमल पर जाने की आवश्यकता नहीं होती—अब तुम खुद मधु से लवरेज होते हो। अब दूसरी मधुमक्खियां तुम्हारे पास आने लग जाती है। अब तुम सारी पृथ्वी से मधुमक्खियों को आकर्षित करने लगते हो बल्कि कभी-कभी तो दूसरे ग्रहों से मधुमक्खियां तुम्हारे पास आने लग जाती है। तुम्हारा सहस्त्रार खूल गया है। तुम्हारा कमल पूरी खिलावट में है। यह कमल निर्वाण है।

सबसे निचला (चक्र) है मूलाधार। सबसे से जीवन पैदा होता है—देह और इंदियों वाला जीवन। सातवें से भी जीवन पैदा होता है—शाश्वत जीवन, देह का नहीं, इन्दियों का नहीं। यह तंत्र का शरीर-शास्त्र है। यह चिकित्सा की किताबों का शरीर शास्त्र नहीं है। कृपा करके चिकित्साशास्त्रों में इसे मत खोजना—यह वहां नहीं मिलेगा। यह तो एक रूपक है—बोलने का एक ढंग है। यह तो एक नक्शा है चीजों को समझने योग्य बनाने का।

यदि तुम इस रास्ते पर चलो, तुम विचारों के बादलों में कभी नहीं धिरोगे। यदि तुम चौथे चक्र से बचते हो, तब तुम सिर में चले जाते हो। अब सिर में होने का अर्थ है प्रेम में न होतना, विचारों में होना, अब श्रद्धा तुम से चूक गई है। वह मार्ग भिन्न आयाम में चला गया है। तुम उससे बंचित हो गए हो। सोचते रहने का अर्थ है न देखना। विचार एक बादल बन गए है।

अब हम सूत्रों में प्रवेश करेंगे:

जब (शिशिर में) छेड़ता है निश्चल जल को समीर

बन हिम ग्रहण कर लेता है वह

आकृति और बनावट किसी चट्टान सी

जब होता मन व्यथित है व्याख्यात्म विचारों से

जो अभी तक था एक अनाकृत सौम्य सा

बन वही जाता है कितना ठोस और कठोर.....

सरहा कहता है शिशिर हे शिशिर में—हर शब्द को सुनो, ध्यान में डूबों तभी तुम उतर सकोगे सरहा के शब्दों में गहरे...

शिशिर में छेड़ता है निश्चल जल को समीर

बन कर हिम ग्रहण कर लेता है यह

आकृति और बनावट चट्टान की...

एक निश्चल झील बिना किन्हीं लहरों के एक रूपक है चेतना के लिए—एक स्थिर झील बिना तरंगों के, बिना लहरों के, न कोई हचचल होती है, न हवा ही वहां बहती है—यह एक रूपक है, चेतना के लिए—एक स्थिर झील बिना तरंगों के, बिना लहरों के, न कोई हलचल होती है, न हवा बहती है—यह एक लक्षण है, चेतना के लिए। झील द्रव है, बहती हुई है, मौन है, यह कठोर नहीं है, यह चट्टान जैसी नहीं है। यह गुलाब के फूलों जैसी कोमल है, भेद्य है। यह किसी भी दिशा में प्रवाहित हो सकती है यह रूकी हुई नहीं है। इसमें प्रवाह है। और इसमें जीवन है और इसमें गत्यात्मकता है, लेकिन व्यग्रता किसी चीज में नहीं है—झील निश्चल है, शांत है। यह दशा है चेतना की।

'शिशिर' का अर्थ है जब आकांक्षाएं उठ खड़ी हो गई हों। उन्हें शिशिर क्यों कहना? जब इच्छाएं उठती हैं, तुम एक शीतल रेगिस्तान में होते हो, क्योंकि वे कभी पूरी नहीं होती। इच्छाएं तो रेगिस्तान हैं। वे तुम्हें धोखा देती हैं, उनमें कोई तृप्ति नहीं होती। वे कभी किसी फल को प्राप्त नहीं होती—यह एक रेगिस्तान है, और बहुत शीतल, मौत की भांति शीतल इच्छाओं में कोई जीवन नहीं बहता। इच्छाएं जीवन में बाधा पहुंचाती है, वे जीवन को सहायता नहीं पहंचाती।

इसलिए सराह कहता है: 'जब शिशिर में जब आकांक्षएं तुममें उत्पन्न हो गई हों, वही शिशिर का मौसम है...छेड़ता है निश्चल जल को समीर और विचार आते हैं, हजरों विचार हर तरफ से आते हैं, यह संकेत है हवा का। हवाएं आ रही होती हैं, तुफानी हवाएं आ रही होती हैं। तुम आकांक्षा की एक अवस्था में होते हो, लालसा से भरे, महत्वकांक्षी, कुछ बनने को आतुर, और विचार उठते होते है।'

सच तो यह है, आकांक्षएं ही विचारों को आमंत्रित करती हैं। जब तक कि तुम आकांक्षा न करो, विचार आ नहीं सकते। एक आकांक्षा को जरा प्रारंभ तो करो और तुरंत तुम पाओगे कि विचार आने प्रारंभ हो गए। अभी एक क्षण पहले, एक भी विचार न था। और फिर एक कार समीप से गुजरती है और एक आकांक्षा उठ आती है; तुम्होरे पास भी ऐसी ही कार होनी चाहिए। अब हजार विचार, तुरंत वहां आ जाते हैं। आकांक्षा

विचारों को आमन्त्रित करती है। इसलिए जब कभी भी कोई आकांक्षा होगी, विचार हर दिशा से आऐंगे ही, चेतना की झील पर हवाएं चलने लगेंगी। और आकांक्षा होती है शीतल, और विचार झील को मथता रहता है।

बन हिम ग्रहण कर लेता है वह

आकृति और बनावट किसी चट्टान सी.....

...तब झील जमना शुरू हो जाती है। यह ठोस, चट्टान सदृश होने लग जाती है। यह तरलता खो देती है। यह जम जाती है। यही तो वह बात है जिसे तंत्र में मन कहते हैं। इसके ऊपर ध्यान करो। मन और चेतना दो चीजें नहीं हैं। बल्कि दो अवस्थाएं हैं। एक ही घटना के दो पहलू हैं। चेतना तरल है, प्रवाहमान है; मन चट्टान जैसा है, बर्फ की तरह। चेतना जल की भांति है। चेतना जल जैसी है, मन हिम जैसा है—यह वही चीज है। वही जल बर्फ बन जाता है और बर्फ को फिर से पिघलाया जा सकता है। जा सकता है। और यह फिर से जल बन जाएगी।

और तीसरी अवस्था है जब जल वाष्पीकृत हो जाता है,वह अदृश्य हो जाता है, विलीन हो जाता है—यह निर्वाण है, समाप्त हो जाना है। अब तुम इसे देख भी नहीं सकते हो। जल तरल है पर इसे तुम देख सकते हो; जब यह वाष्प बन जाता है, यह अदृश्य हो जाता है। यह तीन अवस्थाएं हैं जल की, और मन की भी यही तीन अवस्थाएं हैं। मन का अर्थ बर्फ, चेतना का अर्थ है तरल जल, और निर्वाण का अर्थ है वाष्प बन जाना।

जब भ्रमित होते व्यथित हैं व्याख्यात्म विचारों से

जो अभी तक था अनाकृत

जो वही जाता है कितना ठोस और कठोर....

झील अनाकृत है। तुम जल को किसी भी पात्र में डाल ले सकते हो, यह उसी की आकृति ग्रहण कर लेगा। पर बर्फ को तुम किसी भी पात्र में नहीं डाल ले सकते हो। यह प्रतिरोध करेगी, यह लड़ेग।

दो तरह के लोग मेरे पास आते है: एक वह जो जल की भांति होते है। उसका समर्पण सरल होता है। बहुत निर्दोष, एक बच्चे की भांति; वह प्रतिरोध नहीं करता। कार्य तुरंत शुरू हो जाता है। समय बर्बाद करने की आवश्यकता नहीं होती। फिर कोई आता है बड़े प्रतिरोध के साथ, बड़े भय के साथ; वह स्वयं को सुरक्षित कर रहा होता है, स्वयं को कवच पहना रहा होता है। तब वह हम की भांति होता है। उसे तरलता दे पाना बहुत कठिन होता है। उसे तरल बनाने के सारे प्रयासों से वह लड़ता रहता है। वह डरता है कि कहीं वह अपनी पहचान खो न दे। वह ठोस-पन ही तो उसकी पहचान है, वह तो खोएगा-यह तो सच ही है। परंतु पहचान नहीं। हां वह उस पहचान को तो खोएगा ही जो कि ठोस-पन ला रहा होता है, पर वह ठोसपन सिवाय संताप के और क्या ला रहा है।

जब तुम ठोस होते हो, तुम एक मृत चट्टान की भांति होते हो। न तुममें कुछ पुष्पित हो सकता है, न तुम प्रवाहित हो सकते हो। जब तुम प्रवाहित हो रहे होते हो, तुममें रस होता है। जब तुम प्रवाहित हो रहे होते हो तुम्हारे पास ऊर्जा होती है। जब तुम प्रवाहित हो रहे होते हो, तुम्हारे पास एक गत्यात्मकता होती है। जब तुम प्रवाहित हो रहे होते हो, तुम सृजनशील होते हो। जब तुम प्रवाहित हो रहे होते हो, तुम परमात्मा के अंग होते हो। जब तुम जम गए होते हो, तुम फिर इस महान प्रवाह के अंग नहीं रहे होते। तुम इस महासागर के हिस्से नहीं रहे होते, तुम अब कट चूके होते हो। तुम एक छोटा सा द्वीव हो गए होते हो, जमा हुआ मृत।

जब होता मन व्यथित है व्याख्यात्म विचारों से

जो अभी तक था एक अनाकृत सौम्य सा

बन वही जाता है कितना ठोस और कठोर....

ध्यान रखो। इस अनाकृति की गैर-ढांचेपनिए अवस्था में अधिक से अधिक रहो। बिना चरित्र के रहो—यही तो तंत्र कहता है। यह बात समझनी भी अत्यंत कठिन है, क्योंकि सदियों से हमें चरित्रवान होना ही तो सिखाया गया है। चरित्र का अर्थ है एक अशिथिल ढांचा रखना। चरित्र का अर्थ है अतीत; चरित्र का अर्थ है एक विशिष्ट वाधित अनुशासन। चरित्र का अर्थ है अब तुम स्वतंत्र नहीं हो—तुम बस विशिष्ट नियमों का पालन भर करते हो, तुम उन नियमों के पार कभी नहीं जाते। तुममें एक ठोस-पन होता है। चरित्र वान व्यक्ति एक ठोस व्यक्ति होता है। तंत्र कहता है: चरित्र छोड़ो, तरह बनो, अधिक प्रवाहमान बनो, क्षण-क्षण जिओ। इसका अर्थ गैर-जिम्मेदारी नहीं है। इसका अर्थ है और अधिक जिम्मेदारी के साथ, क्योंकि इसका अर्थ है अधिक जागरूकता। जब तुम एक चरित्र के द्वारा जीते हो, तुम्हें जागरूक रहने की आवश्यकता नहीं होती-चरित्र स्वयं ही चिंता लेता है। जब तुम चरित्र के द्वारा जीते हो, तुम आसानी से निंद्रा में गिर सकते हो। जागरूक रहने की तब कोई आवश्यकता नहीं होती। चरित्र एक यंत्रिक रूप में जारी रहेगा। परंतु जब तुम्हारे पास कोई चरित्र नहीं होता, जब तुम्हारे इर्द-गिर्द कोई कठोर ढांचा नहीं होता, तब तुम्हें हर क्षण सजग रहना होता है। हर क्षण तुम्हें यह देखना होता है कि तुम क्या कर रहे हो। हर क्षण तुम्हें नई स्थिति के प्रति प्रतिवार करना होता हे।

चरित्रवान व्यक्ति मृत होता है। उसका अतीत तो होता है परंतु भविष्य नहीं होता। जिस व्यक्ति के पास चरित्र नहीं है—और मैं यह शब्द उसी अर्थ में उपयोग नहीं कर रहा हूं जिस अर्थ में कि तुम इसका उपयोग किसी व्यकति के बारे में करते हो। कि वह चरित्रहीन है। जब तुम 'चरित्रहीन' शब्द का उपयोग करते हो, तुम इसका सही उपयोग नहीं कर रहे होते हो क्योंकि जिस किसी को भी तुम चरित्रहीन कहते हो उसे पास चरित्र होता ही नहीं है। शायद वह समाज के विपरीत हो, पर चरित्र तो उसके पास हैं; तुम उस पर भी निर्भर कर सकते तो हो।

संत के पास चरित्र होता है, वैसे ही पापी के पास भी चरित्र होता है—चरित्र उन दोनों के पास हैं। तुम पापी को चरित्रहीन कहते हो। क्योंकि तुम उसके चरित्र की निंदा करना चाहते हो; वरना चरित्र तो उसके पास भी है। तुम उस पर निर्भर कर सकते हो; उसे अवसर दो और वह चोरी करेगा—उसके पास एक चरित्र है। उसे अवसर दो और वह जरूर उस चरित्र का उपयोग करेगा। तुम उसे अवसर दोगें तो वह जरूर ही गलत काम करेगा ही। उसके पास बस यही चरित्र है। जिस क्षण वह कारागृह से बाहर आता है, वह सोचने लगात है, 'अब क्या किया जाए? परंतु फिर से वह जेल में फेंक दिया जाता है, फिर से वह बाहर आ जाता है...किसी कारागृह न आज तक किसी को नहीं सुधारा है। सच तो यह है कि किसी व्यक्ति को जेल में बंद करना,किसी को कारागृह में डाल देना उसे और अधिक चालाक बना देना है—बस इतना ही।' शायद अगली बार तुम उसे इतनी आसानी से न पकड़ सकोगे, बस और कुछ नहीं। तुम उसे बस ज्यादा चालाकी दे देते हो। परंतु चरित्र उसके पास वही का वही रहता है।

क्या तुम देख नहीं सकते?—एक शराबी का अपना चरित्र होता है, और बहुत-बहुत हठी चरित्र। हजार बार वह फिर शराब न पीने की सोचता है, और फिर-फिर उसका वही पुरान चरित्र जीत जाता है। वह हर बार लगभग हार जाता है।

पापी के पास भी चरित्र होता है। वैसे ही संत के पास भी चरित्र होता है। चरित्रहीनता से तंत्र का जो तात्पर्य है वह है चरित्र से मुक्ति—संत का चरित्र और पापी का चरित्र, दोनों तुम्हें चट्टान जैसा, हिम जैसा कठोर बनाते है। तुम्हारे पास कोई स्वतंत्रता नहीं होती, तुम सरलता से गति नहीं कर सकते। यदि एक नयी स्थिति उठ खड़ी हो, तुम एक नए ढंग से प्रतिवाद नहीं कर सकते—तुम्हारे पास तो एक चरित्र है, तुम नए ढंग से प्रतिवाद

कैसे कर सकते हो? तुम्हें पुराने ढंग से ही प्रतिवाद करना होगा। पुराना, भली-भांति जाना हुआ, भली भांति अभ्यास में लाया गया—उसमें तो तुम कुशल हो गए होते हो।

चरित्र तो एक अन्यत्रता बन जाता है। तुम्हें जीने की आवश्यकता ही नहीं होती।

तंत्र कहता है: चरित्र विहीन बनो; बिना चरित्र बाले बनो। चरित्र विहीनता स्वतंत्रता हे।

सराह राजा से कहता रहा है: हे राजन, मैं चरित्र विहीन हूं। आप मुझे दरबार में एक विद्वान होने की, एक पंडित होने की ठोसता में वापस रखना चाहते हैं? आप मुझे मेरे अतीत में वापस रखना चाहते हैं? मैं इससे बाहर निकल आया हूं। मैं एक चरित्रहीन व्यक्ति हूं। मेरी और देखिए! अब मैं किन्हीं नियमों को पालन नहीं करता—मैं अपनी जागरूकता का पालन करता हूं। मेरे और देखिए...मेरे पास कोई अनुशासन नहीं है। मेरे पास केवल मेरी चेतना है। मेरा एक मात्र आश्रयस्थ्ल मेरी चेतना है। मैं इसी से जीता हूं। मेरे पास कोई अंतकरण कोई धारणा नहीं बची। मेरी चेतना ही मेरा शरण-स्थल बन गई है।

अंत:करण चरित्र है अंत:करण एक तरकीब है समाज की। समाज तुम्हारे भीतर एक अंत:करण निर्मित कर देता है। ताकि तुम्हें चेतना की आवश्यकता ही न पड़े। यह तुम्हें पंगु बना दता है। यह तुम्हें कुछ विशिष्ट नियमों बाँध देता है, उनका पालन करने के लिए लम्बा अभ्यास करता है। यह तुम्हें पुरस्कार देता है, तुम्हारा सम्मान करता है। फिर यदि तुम उन नियमों का पालन नहीं कर रहे होते हो तो, यह तुम्हें एक यंत्र-मानव बना देता है। एक बार जब यह अंत:करण का यंत्र तुम्हारे भीतर स्थापित हो जाता है, यह तुमसे मुक्त हो सकता है—फिर तुम्हारा भरोसा किया जा सकता है; फिर तुम अपना सारा जीवन गुलाम बने रहोगे। इसने एक अंत:करण ठीक वैसे ही तुम्हारे भीतर रख दिया है जैसे कि डेलगाडो ने इलेक्ट्रोड तुम्हारे भीतर रख दिया हो, यह (अंत:करण) एक सूक्ष्म इलेक्ट्रोड ही तो है। पर इसने तुम्हें मार डाला है। तुम अब एक प्रवाह न रहे हो, तुम अब एक गत्यात्मकता न रहे हो। तुम जम गए हो, एक शीला की तरह। ठोस आकार बन गया है।

सराह राजा से कहता है: हे राजन, मैं अनाकृत हूं, मैंने सब ढांचे छोड़ दिए है। अब मेरी कोई पहचान नहीं रही है। मैं केवल क्षण में जीता हूं।

अपने में थिर निष्कलंक मन कभी नहीं...
होगा दूषित संसार या निर्वाण की अपवित्रताओं से भी
कीचड़ में पड़ा एक कीमती रतन ज्यों
चमकेगा नही यद्यपि है उसमें कांति....

कहता है सराह: निष्कलंक मन...जब मन में कोई विचार नहीं होते—यानि कि जब मन शुद्ध चेतना होता है, सही मायने में वहां मन होता ही नहीं। जब मन एक मौन झील होता है, जिसमे कोई लहर नहीं उठती नहीं होती, व्याख्यात्मक विचार नहीं, कोई विश्लेषणत्मक विचार नहीं, जब मन दर्शनीकरण नहीं कर रहा होता, परंतु बस होता है...अपनी पूर्णता में...

तंत्र कहता है: चलते हुए, बस चलो;बैठते हुए बस बैठो;होते हुए बस हो जाओ, बिना विचार के जिओ। जीवन को अपने भीतर से बहने दो, बिना किसी अवरोध के एक विचार शुन्यता के। उसे मात्र प्रवाहित होने दो किसी भय के। डरने को कुछ है ही नहीं। खोने को तुम्हारे पास कुछ है ही नहीं। भय भीत होने की कोई बात नहीं है क्योंकि मृत्यु तुमसे केवल वही ले लेती है जो कि जन्म ने तुम्हें दिया हो। और उसे यह लेगी ही। इसलिए डरने की कोई बात ही नहीं है। जीवन को स्वयं के भीतर से प्रवाहित होने दो।

अपने में थिर निष्कलंक मन कभी नहीं
होगा दूषित संसार या निर्वाण की अपवित्रताओं से...

और सराह कहता है: हे राजन, तुम सोचते हो कि मैं अशुद्ध हो गया हूं, इसलिए तुम मेरी सहायता करने और मुझे शुद्ध कर के शुद्ध लोगों के संसार में वापस ले जाने के लिए आये हो। आप मेरी और देखों मैं तो अब मन की एक निष्कलंक अवस्था में हूं। मैं अब ठोस हित नहीं रहा हूं। अब मुझे कोई चीज दूषित नहीं कर सकती। क्योंकि कोई विचार अब मेरे भीतर कोई तरंग पैदा नहीं कर सकता है—मेरे भीतर कोई आकांक्ष उपेक्षा बची ही नहीं है। मैं तो अब हूं ही नहीं न कुछ।

इसलिए—एक महान व्यक्तव्य—यह कहता है:...होगा दूषित संसार या निर्वाण की अपवित्रताओं से नहीं। यह संभव नहीं है। निर्वाण भी अब मुझे दूषित नहीं कर सकता। संसार को तो कहना ही क्या? हे, राजन आप समझते हो कि यह तीर बनाने वाली स्त्री मुझे दुषित कर रही है। न आपका यह श्मशान मुझे दूषित कर सकता है। न ही मेरी पागल सी दिखने वाली गतिविधिया मुझे दूषित कर सकती है। अब मुझे कुछ भी दूषित नहीं कर सकता। मैं इन सब के पास, प्रत्येक दृश्य और अदृश के पार हो गया हूं, मुझे अब कोई भी वस्तु दूषित नहीं कर सकती। मेरी अवस्था को देखो, मैं उस अवस्था के पार हो गया हूं जहां कोई दूषित हो सकता है। मैं उसके पास चला गया हूं। आपका निर्वाण तक मुझे दूषित नहीं कर सकता।

उसका क्या तात्पर्या है जब वह कहता है, 'निर्वाण भी, निर्वाण की अशुद्धियां भी?' सराह कह रहा है: मुझे संसार की आकांक्षा नहीं है, मुझे निर्वाण तक की आकांक्षा नहीं रही है।

आकांक्ष करना अशुद्ध होना है। आकांक्षा ही अशुद्ध है—तुम किसकी आकांक्षा करते हो, यह बात ही असंगत है। तुम धन की आकांक्षा करते हो, यह अशुद्धि है। तुम शक्ति की आकांक्षा कर सकते हो, यह भी अशुद्धि है। तुम परमात्मा की आकांक्षा कर सकते हो, यह भी अशुद्धि ही है। तुम निर्वाण की आकांक्षा कर सकते हो, यह भी अशुद्धि ही है। आकांक्षा मात्र अशुद्धि है—उसकी विषय वस्तु क्या है इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। तुम किस चीज की आकांक्षा करते हो, यह अर्थहीन है...आकांक्षा।

जिस क्षण आकांक्षा आती है, विचार भी आते हें। एक बार जब शिशिर की ऋतु होती है, आकांक्षा की, जब हवाएं चलने लग जाती हैं। यदि तुम सोचना प्रारंभ कर दो कि निर्वाण को कैसे प्राप्त किया जाए, सम्बुद्ध कैसे हुआ जाए, तुम विचारों को आमंत्रित कर रहे होगे। तुम्हारी झील क्षुब्घ हो उठेगी। फिर से तुम टुकड़ो-टुकड़ो में जमने लगोगे; तुम हो जाओगे ठोस चट्टान, सदृश्य मृत। तुम प्रवाह को खो दोगे—और प्रवाह जीवन है, प्रवाह परमात्मा है, प्रवाह ही निर्वाण है। इसलिए सराह कहता है: मुझे कुछ भी दूषित नहीं कर सकता। मेरे बारे में चिंता मत करो। मैं उस बिंदु तक आ गया हूं, मैंने उस बिंदु को प्राप्त कर लिया है जहां अशुद्धि संभव नहीं है।

कीचड़ में पड़ा एक कीमती रतन ज्यों

चमकेगा नही यद्यपि है उसमें कांति...

तुम मुझे कीचड़ में फेंक दे सकते हो, गंदी मिट्टी में पर अब गंदी मिट्टी भी मुझे गंदा नहीं कर सकती। मैंने उस बहुमूल्य रत्नता को प्राप्त कर लिया हे। मैं अब एक कीमतली रत्नी हो गया हूं। मैं समझ गया हूं कि मैं कौन हूं। अब तुम इस रत्न को किसी भी कीचड़ में, धूल में फैंक सकते हो, शायद यह चमके न पर यह अपनी बहुमूल्यता खो नहीं सकता है। इसकी क्रांति को अब छीना नहीं जा सकता। उसकी कांति उसकी अस्तित्व बन गई है। यह फिर भी वही बहुमूल्य रत्न रहेगा।

एक क्षण आता है जब तुम स्वयं में झांकते हो और तुम अपनी भावातीत चेतना को देखते हो, फिर कोई भी चीज तुम्हें प्रदूषित नहीं कर सकती।

सत्य एक अनुभव नहीं है। सत्य अनुभव करने की प्रक्रिया (अनुभवीकरण) है। सत्य जागरूकता की कोई विषय वस्तु नहीं है। सत्य जागरूकता है। सत्य बाहर नहीं है, सत्य तुम्हारी आंतरिकता है। सौरेन किर्कगार्ड

कहता है: सत्य आत्मचेतनता है। यदि सत्य किसी बस्तु की भांति हो, तुम इसे पा सकते हो और खो सकते हो; पर यदि सत्य ही होओ, तुम इसे खो कैसे सकते हो। एक बार तुमने जान लिया, तुमने जान लिया; फिर कोई वापस जाना नहीं होता। यदि सत्य कोई अनुभव हो, यह दूषित हो सकता है। पर सत्य तो अनुभवीकरण है, यह तो तुम्हारी अंतरम चेतना है। यह तुम ही हो, यह तुम्हारा होना है।

ज्ञान चमकता नहीं है अंधकार में,

पर अंधकार जब होता है प्रकाशित...

सराह कहता है: हे राजन, ज्ञान चमकता नहीं है अधंकार में...अंधकार मन का, अंधकार आकृत अस्तित्व का,अधंकार अहंकार का, अंधकार विचारों का—हजार-हजार, अधंकार जो तुम एक अष्ठपदी की भांति अपने चारों और निर्मित किए जाते हो। उस अंधकार, जिसे कि तुम निर्मित करते चले जाते हो, के कारण तुम्हारे अंतर का रत्न चमकता नहीं, वर्ना तो यह प्रकाश का एक दिया है। एक बार तुम अपने चारों और यह सियाही, यह काला बादल निर्मित करना बंद कर दो, तब वहां प्रकाश हो जाता है।

और पीड़ा अदृश्य हो जाती है, तुरंत यह तंत्र का संदेश है, एक महान मुक्तिदायी संदेश। बाकी धर्म कहते हैं, तुम्हें प्रतीक्षा करनी होगी। ईसाइयत कहती है, इस्लाम कहता है, यहूदी धर्म कहता है, तुम्हें अंतिम निर्णय दिवस की प्रतीक्ष करनी होगी जब हर चीज का हिसाब किया जाएगा—तुमने क्या-क्या किया है, भला किया है, तुमने क्या बुरा किया है—और फिर तुम्हें उसी के अनुसार प्ररस्कृत किया जाएगा या दंडित किया जाएगा। तुम्हें भविष्य की, उस निर्णय दिवस की प्रतीक्षा करनी होती है।

परंतु हिन्दु, जैन और अन्य धर्म यह कहते हैं कि तुम्हें अपने बुरे कृत्यों को अपने भले कृत्यों से संतुलित करना होगा; बुरे कर्मो को त्यागना होगा और अच्छे कर्मों में वृद्धि करनी होगी। उसके लिए भी तुम्हें प्रतीक्षा तो करनी ही होगी। इसमें भी समय तो लगेगा ही। लाखों जीवनों में तुम लाखों कृत्य करते आए हो, अच्छे भी बुरे भी। अब तुम्हें उन्हें सुलझाना होगा। उन्हें संतुलित करना होगा। यह एक असंभव काम होगा।

ईसाई, यहूदी और मुस्लिम निर्णय-दिवस सरल है: कम से कम तुम्हें जो कुछ भी तुमने किया है उसका हिसाब-किताब नहीं करना होगा। ईश्वर चिंता लेगा, वह निर्णय करेगा—वहीं तो उसका काम है। लेकिन जैनधर्म और हिंदु तो कहते हे कि तुम्हें अपने बुरे कर्मों को देखना होगा। उन्हें खुद ही भले कर्मों में बदलना होगा। उन्हें छोड़ना होगा, अच्छे कर्मों में स्थांतरित करना होगा। इस सब में भी, ऐसा लगता है, लाखों जनम लग जाऐंगे।

तंत्र तो एक दम मुक्ति दायी है। तंत्र कहता है:

जिस क्षण तुम स्वयं में झांकते हो, आंतरिक दृष्टि का वह अकेला क्षण और पीड़ा अदृश्य हो जाती है—क्योंकि वास्तव में पीड़ा का अस्तित्व कभी था ही नहीं। यह एक दुखस्वप्न था। ऐसा नहीं है कि तुमने बुरे कर्म किए हैं, इसलिए तुम पीड़ित हो रहे हो। तंत्र कहता है कि तुम पीड़ित हो रहे हो। तंत्र कहता है कि तुम पीड़ित हो रहे हो क्योंकि तुम स्वप्न देख रहे थे। तुमने किया कुछ भी नहीं था यह मात्र एक नींद्रा थी, न कुछ शुभ है न ही अशुभ।

यह बड़ी सुंदर बात है। तंत्र कहता है: तुमने किया कुछ भी नहीं था, करने वाला तो परमत्मा है। समस्त है कर्ता—तुम कैसे हो सकते हो? यदि तुम एक संत रहे हो, यह उसी की इच्छा थी, यदि तुम एक चोर या पापी रहे हो तो भी तो उसी की मर्जी ही थी। तुम जब कर्ता हो ही नहीं तब तुम कर ही कैसे सकते हो। तुमने कुछ किया ही नहीं। तुम कर भी नहीं सकते हो? तुम उस अस्तित्व से अलग कहां हो, तुम्हारी कोई अलग इच्छा ही नही है —यह उसी की इच्छा है, यह सार्वलौकिक इच्छा है।

इसलिए तंत्र कहता है कि तुमनेकुछ अच्छा या बुरा कुछ भी नहीं किया होता है। इसे बस देखना है, बस इतना ही। तुम्हें अपनी अंतरतम चेतना को देखना है—यह शुद्ध है, शाश्वत रूप से शुद्ध है, संसार या निर्वाण से अदूषित नहीं हो सकती। एक बार तुमने अपनी शुद्ध चेतना की वह दृष्टि देख ली, सब पीड़ा समाप्त हो जाती है—तुरंत उसी समय। इसमें एक क्षण की भी देरी नहीं होती।

शाखाएं-प्रशाखएं उग आती है बीज से

पुष्प पल्वित होते नुतपात शाखाओं से...

और तब, चीजें बदलनी शुरू हो जाती हैं। फिर बीज टूट जाता है। बंद बीज, तंत्र कहता है, अहंकार है; शून्यता है। तुम बीज को धरती में दबा देते हो, यह तब तक उग नहीं सकता जब तक कि यह बिलीन न हो जाए, जब तक कि यह टूट ही न जाए, मर ही न जाए। मिट ही न जाए। अहंकार एक अंडे के समान हे, इसके पीछे वृद्धि की संभावना छिपी होती है।

बीज एक बार टूट जाए तो, अहंकार शून्यता बन जाता है फिर शाखाएं निकलती हैं—शाखाएं है अ-विचार, अनकांक्षएं, अ-मन। फिर पत्तियां आती हैं—पत्तियां है ज्ञान, अनुभवीकरण, प्रकाश, सतोरी, समाधि। फिर फूल आते है—फूल है सच्चिदानंद: सत्-चित्-आनंद। और फिर फल-फूल है निर्वाण, अस्तित्व में पूर्णता: विलीन हो जाना। एक बार बीज टूट जाए, फिर हर चीज उसके पीछे-पीछे चली आती है। एक मात्र कार्य जो किया जाना है वह बीज को भूमि में डालना, इसे अदृश्य होने देना है। गुरू है भूमि और शिष्य है बीज।

अंतिम सूत्र:

जो कोई भी सोचता-विचारा है

मन को एक या अनेक, फेंक देता है

वह प्रकाश को और प्रवेश करता है संसार में

जो चलता है (प्रचण्ड) अग्नि मे खुली आंख

तब किस और होगी करूण की आवश्यकता अधिक...

जो कोई भी सोचता-विचारता है मन को एक

या अनेक...

सोचना-विचारना सदा विभाजक है, यह विभाजित करता है। सोचना विचारना एक प्रिज्म की भांति है, हां, मन एक प्रिज्म जैसा ही तो है। एक शुद्ध श्वेत किरण प्रिज्म में प्रवेश करती है और सात रंगों में विभाजित हो जाती है—एक इंद्रधनुष पैदा हो जाता है। संसार एक इंद्रधनुष है। मन से होकर, मन के प्रिज्म से होकर, सत्य की एक किरण गुजरती है और एक इंद्रधनुष, एक मिथ्या वस्तु बन जाती है। संसार एक मिथ्या वस्तु है।

मन विभाजित करता है। मन द्वैतवादी है। या, मन द्वंदात्मक है: यह वादी-प्रतिवादी के रूप में सोचता है। जिस क्षण तुम प्रेम की बात करते हो, घृणा उपस्थित होती है। जिस क्षण तुम करूणा की बात करते हो, क्रोध उपस्थित होता है। जिस क्षण तुम क्षण तुम लालच की बात करते हो, उसके विपरीत मौजूद होता है, दान मौजूद होता है। दान की बात करते हो और लालचमौजूद होता है—वे दोनों साथ-साथ रहते है। वे एक ही गठरी में बंधे है, वे अलग-अलग नहीं है। पर मन निरंतर ऐसा सृजन करता रहता है।

तुम कहते हो 'सुंदर' और तुमने 'करूप' भी कह दिया। कैसे तुम सुंदर कह सकते हो यदि तुम जानते ही न हो कि कुरूपता क्या है? तुमने विभाजन कर दिया। कहो 'दिव्यता' और तुमने 'अपवित्रता' भी कहा दिया। कहो 'ईश्वर' और तुमने एक शैतान की प्रस्तावना भी कर दी। कैसे तुम ईश्वर कह सकते हो जब तक कि वहां एक शैतान भी न हो। वे साथ-साथ होते है।

मन विभाजन करता है और सचाई एक है, अविभाज्य रूप से एक। तब क्या किया जाए? मन को उठाकर अलग रखना होगा। प्रिज्म के द्वारा मत देखो। प्रिज्म के अलग खिसका के रख दो और श्वेत प्रकाश को, अस्तित्व के एकत्व को, अपने अस्तित्व को बींधने दो।

जो कोई भी सोचता-विचारा है

मन को एक या अनेक, फेंक देता है

वह प्रकाश को और प्रवेश करता है संसार में

जो चलता है (प्रचण्ड) अग्नि मे खुली आंख

तब किस और होगी करूण की आवश्यकता अधिक...

यदि तुम एक या अनेक की सोचते हो, द्वैत या अद्वैत की सोचते हो, यदि तुम धारणाओं में सोचते हो, तुमने संसार में प्रवेश कर लिया तुमने प्रकाश को फेंक दिया। यह तुम्हारा चुनाव है।

एक व्यक्ति एक बार रामकृष्ण के पास आया और वह रामकृष्ण की बड़ी प्रशंसा कर रहा था और वह बार-बार रामकृष्ण के चरण छू रहा था, और वह कह रहा था, 'आप तो बस महान हैं—आपने तो संसार को त्याग दिया। आप इतने महान व्यक्ति हैं। आपने कितना त्याग किया है?'

रामकृष्ण उसकी बात सुनते रहे और हंसे फिर बोले, 'रूको! अब तुम बहुत दूर जा रहे हो—सचाई तो ठीक उलटी है।'

उस व्यक्ति ने कहा: 'आपका क्या तात्पर्य है?'

राम कृष्ण ने कहा: 'मैंने तो कुछ भी त्याग नहीं किया है—त्याग तो तुमने किया है। तुम एक महान आदमी हो।'

उस आदमी ने कहा, 'मैंने त्याग किया है?' आप भी मजाक कर रहे है। मैं तो एक सांसारिक आदमी हूं—मैं चीजों में लिप्त हूं, हजार लालच मेरे मन में है। मैं बड़ा ही महत्वकांक्षी आदमी हूं। मैं बहुत धन-उन्मुख हूं। मैं कैसे महान कहा जा सकता हूं? नहीं, नहीं—आप मजाक कर रहे हैं?'

और रामकृष्ण ने कहा: 'नहीं, मेरे सामने भी दो संभावनाएं थी और तुम्हारे सामने भी दो संभावनाएं थी। तुमने संसार को चुन लिया और मैंने ईश्वर को चुन लिया। तुमने ईश्वर को त्याग दिया और मैं संसार को त्याग दिया। असली त्यागी कौन सा है? मैं या आप। तुमने तो अधिक त्याग किया है। अधिक मूल्यवान त्याग किया है, अर्थहीन को चुना लिया। और मैंने अर्थहीन को त्याग दिया और मूल्यवान को चुन लिया। यदि कोई बड़ा हीरा और पत्थर हो, तो तुमने तो पत्थर को चुन लिया और हीरे को त्याग दिया। मैंने तो फिर भी हीरे को चुन लिया है। और पत्थर को त्याग दिया है। भला आप ही बतलाओं की अब बड़ा त्यागी आप है या मैं किसने बड़ा त्याग किया है। तुम तो मुझसे बहुत ही महान त्यागी हो? एक महान त्यागी? क्या तुम पागल हो गए हो? मैं ईश्वर में लिप्त हूं। मैंने जो बहुमूल्य है उसे चुन लिया है।'

हां, मैं भी रामकृष्ण से सहमत हूं। महावीर, बुद्ध, जीसस, मौहम्मद, सराह...इन्होंने त्याग नहीं किया है। वे लिप्त हुए है, वे सच में ही भोग-लिप्त हुए है। उन्होंने सच में ही आनंद उठाया है—उन्होंने अस्तित्व का उतसव मनाया है। हम जो साधारण पत्थरों के पीछे दौड़ रहे हैं, महान त्यागी ही हो सकते है।

केवल दो ही संभावनाएं हैं: या तो मन को त्याग दो और प्रकाश को चुन लो या प्रकाश को त्याग दो और मन को चुन लो—यह तुम्हारे ऊपर है।

जो कोई भी सोचता-विचारा है

मन को एक या अनेक, फेंक देता है

वह प्रकाश को और प्रवेश करता है संसार में

जो चलता है (प्रचण्ड) अग्नि मे खुली आंख

तब किस और होगी करूण की आवश्यकता अधिक...

सराह कहता है: हे राजन, तुम मेरी सहायता करने यहां आए हो। तुम सोचते हो तुम मेरे प्रति करूणावान हो। निश्चय ही तुम्हारा सारा राज्य भी यही सोचता है—कि राजा श्मशान भूमि में गया है: सराह के लिए उसमें कितनी करूणा है। तुम सोचते हो कि तुम करूणा के कारण यहां आए हो? लोग मुझ पर हंसते है...सच तो यह है कि यह मैं हूं जो तुम्हारे लिए करूणा अनुभव कर रहा हूं, तुम नहीं। यह मैं हूं जो तुम्हारे लिए खेदपूर्ण अनुभव कर रहा हूं—तुम मुर्ख हो।

प्रचण्ड अग्नि में वह चलता है खुली आँख...

तुम्हारी आंखें खुली हुई जान पड़ती है, पर खुली वे है नहीं। तुम अंधे हो! तुम्हें पता नहीं कि तुम क्या कर रहे हो...संसार में रहकर, क्या तुम सोचते हो कि तुम आनंद मना रहे हो? तुम बस जलती हुई प्रचंड अग्नि में हो।

ठीक यही बात हुई जब बुद्ध ने अपना राजमहल छोड़ा, और अपने राज्य की सीमाएं छोडी, उन्होंने अपने सारथी से कहा, 'अब तुम वापस जाओ—मैं जंगल में जा रहा हूं। मैंने सब त्याग दिया है।'

बूढ़े सारथी ने कहा: 'श्री मान, मैं बूढा हो गया हूं, मैं आयु में आपके पिता से भी बड़ा हूं—मेरी सलाह सुनिए। आप एकदम मूढतापूर्ण काम कर रहे हैं। इस सुंदर राज्य, इस महल, एक सुंदर स्त्री, वे सब वैभव जिनकी हर मनुष्य लालसा करता है। आप इस सब को छोड़ कर कहां जा रहे है, और किसलिए?'

बुद्ध ने मुड़कर उस संगमरमर के राजमहल को देखा और कहां: 'मैं तो वहां केवल अग्नि देखता हूं और कुछ भी नहीं, एक धधकती हुई अग्नि। सारा संसार जल रहा है। आप सोच रहे है कि मैं इस त्याग रहा हूं, मैं इसे त्याग नहीं रहा हूं। क्योंकि इसमें त्यागने को कुछ है ही नहीं। मैं तो बस अग्नि से बचने की चेष्टा कर रहा हूं। न तो मुझे वहां कोई महल दिखाई दे रहा है, और न ही वहाँ पर कोई सुख या आनंद देख पा रहा हूं।'

सराह राजा को कहते है:

जो चलता है (प्रचण्ड) अग्नि मे खुली आंख

तब किस और होगी करूण की आवश्यकता अधिक...

तुम सोचते हो, हे राजन! तुम करूणावश मेरीसहायता करने के लिए यहां आए हो? नहीं, स्थिति ठीक इसके विवरीत है। मैं तुम्हारे लिए करूणा अनुभव कर रहा हूं। तुम एक प्रचंड अग्नि में जी रहे हो। सावधान रहो। सजग रहो। जागरूक रहो। और जितना जल्दी हो सके, इस (अग्नि) से दूर निकल जाओ क्यों जो कुछ भी सुंदर है, जो कुछ भी सत्य है, जो कुछ भी शुभ है, वह सब केवल अ-मन द्वारा ही जाना और अनुभव किया जा सकता है।

तंत्र तुम्हारे भीतर अ-मन निर्मित करने की एक प्रक्रिया है। अ-मन द्वार है निर्वाण का।

आज इतना ही।

दसवां प्रवचन

हिंगल डे जिबिटी डांगली जी

(दिनांक-30 अप्रैल 1977 ओशो आश्रम पूना)

पहला प्रश्न: यह प्रभा का प्रश्न है: प्रिय ओशो, हिंगल डे जे, विपिटी डांग जांग—डो रन नन, डे जुन बुंग। हिंगल डे जिबिटी डांगली जी?

यह अत्यंत सुंदर है, प्रभा! यह सौन्दर्य पूर्ण है। यह बहुत बढियां है, बच्ची। मैं तुम्हें स्थिर बुद्धि बनाए जा रहा हूं। बस एक कदम और...और संबोधि।

दूसरा प्रश्न: क्या प्रार्थना उपयोगी है? यदि हां, तो मुझे सिखादें कि कैसे करूं। मेरा तात्पर्य है, प्रार्थना ईश्वर के प्रेम को प्राप्त करने के लिए, उसके प्रसाद को अनुभव करने के लिए।

पहल बात, प्रार्थना उपयोगी नहीं है—जरा भी नहीं। प्रार्थना का कोई उपयोग, कोई उपयोगिता नहीं है। यह कोई वस्तु नहीं है। तुम इसका उपयोग नहीं कर सकते हो। यह कोई चीज नहीं है। यह किसी अन्य चीज का साधन नहीं है—इसका उपयोग तुम कैसे कर सकते हो?

प्रश्नकार्ता के मन को में समझ सकता हूं। तथाकथित धर्म लोगों को यही सिखाते आए हैं कि प्रार्थना परमात्मा तक पहुंचने का एक साधन है। यह साधन नहीं है। प्रार्थना ही परमात्मा है। यह किसी चीज का साधन नहीं हो सकती। प्रार्थना अपने में परिपूर्ण है। अपनी पूर्णता में समाहित है। जब तुम प्रार्थनापूर्ण होते हो, तुम दिव्य होते हो। ऐसा नहीं कि प्रार्थना तुम्हें दिव्य की और ले जाती है, प्राथनापूर्ण होने में ही तुम अपनी दिव्यता को अन्वेषित करते हो।

प्रार्थना साधन नहीं हे। यह स्वयं ही अपना साध्य है।

परंतु यह झूट सदियों से मनुष्य के मन में घर किए रहा है। प्रेम भी साधन है, प्राथना भी साधन है। वैसे ही ध्यान भी साधन है—वह सब जिसको साधन में घआया जा सकना असंभव है उस सबको घटा दिया गया है। और यही कारण है कि सौंदर्य खो जाता है।

प्रेम उपयोगहीन है, ऐसे ही प्रार्थना है, ऐसे ही ध्यान है।

जब तुम पूछते हो: 'क्या प्रार्थना उपयोगी है? तुम समझते नहीं कि प्रार्थना शब्द का क्या अर्थ है। तुम लालची हो। तुम परमात्मा को चाहते हो, तुम परमात्मा को पकड़े रखना चाहते हो; अब तुम परमात्मा को पकड़ रखने के साधन और उपाय खोज रहे हो। और ईश्वर को पकड़ा नहीं जा सकता।'

तुम ईश्वर पर मालकियत नहीं कर सकते। तुम ईश्वर को अपने पास रख नहीं सकते हो। तुम ईश्वर की व्याख्या नहीं कर सकते हो। तुम ईश्वर का अनुभव नहीं कर सकते हो। तब ईश्वर के बारे में तुम क्या कर सकते हो? केवल एक बात: तुम ईश्वर हो सकते हो। इस बारे में और कुछ नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि ईश्वर तुम हो। इस बात को तुम पहचानो या न पहचानो, इसको तुम अनुभूत करो या न करो, पर ईश्वर तुम हो; केवल वहीं तो किया जा सकता है जो हो ही चुका हो। कुछ नया जोड़ा नहीं जा सकता...केवल प्रकटन, केवल अन्वेषण।

इसलिए पहली बात: प्रार्थना कोई उपयोगिता नहीं हे। जिस क्षण तुम प्रार्थना का उपयोग करते हो, तुम इसे कुरूप बना देते हो। यह एक अधर्म है। प्रार्थना का उपयोग करना। और जिस किसी ने भी तुम्हें प्रार्थना का उपयोग करने को कहा है वह न केवल अधर्मिक ही है बल्कि धर्म-विरोधी भी है। वह समझता ही नहीं कि वह क्या कर रहा है। वह बकवास कर रहे है।

प्रार्थनापूर्ण होओ इसलिए नहीं कि इसकी कोई उपयोगिता है, बल्कि इसलिए क्यों कि यह एक आनंद है। प्रार्थनापूर्ण होओ इसलिए नहीं कि इसके द्वरा तुम कहीं पहुंच जाओगे, बल्कि इसके द्वारा तुम उपस्थित होते हो, इसके बिना तुम अनुपस्थित होते हो। यह भविष्य में कहीं कोई लक्ष्य नहीं है, यह उस वर्तमान का अन्वेषण है जो कि है ही, जो कि पहले से ही है।

और वस्तुओं के अर्थ में मत सोचो वर्ना प्रार्थना अर्थशास्त्र का अंग बन जाती है। धर्म का नहीं। यदि यह एक साधन है तब तो यह अर्थशास्त्र का एक अंग हो गई। सभी साधन अर्थशास्त्र के ही अंग है। साध्य अर्थशास्त्र के पार की बात है। धर्म का संबंध साध्य से है। साधन से नहीं। धर्म का कहीं पहुंचने से कोई भी संबंध नहीं है। धर्म का संबंध बस एक बात जानने से है: यह जानना कि हम कहां है।

इस क्षण का उत्सव मनाना प्रार्थना है। यहां-अभी में होना प्रार्थना है। इन पक्षियों को सुनना प्रार्थना है। तुम्हारे चारों और बैठे लोगों की उपस्थिति को महसूस करना प्रार्थना है। एक वृक्ष को प्रेम से स्पर्श करना प्रार्थना है। एक बच्चे की और प्रेम से देखना, गहन स्नेह से आदर से जीवन के प्रति सम्मान से, सब प्रार्थना ही तो है।

इसलिए पहली तो बात: मत पूछो, 'क्या प्रार्थना उपयोगी है?'

और फिर दूसरी बात तुम कहते हो: 'यदि ऐसा है, तो मुझे प्रार्थना करना सिखा दें।'

यदि तुम 'यदि' से प्रारंभ करते हो, प्रार्थना नहीं सिखाई जा सकती है। 'यदि' से किया गया प्रारंभ ही संदेह का प्रारंभ होता है। 'यदि' प्रार्थनापूर्ण मन का भाग नहीं हैं। यह ऐसा है। यह पूर्णत: ऐसा ही है।

जब तुम भरोसा करते हो अज्ञात पर, अदृश्य पर अप्रकट पर, तब वहां प्रार्थना है। यदि तुम 'यदि' से प्रारंभ करो तो प्रार्थना अधिक से अधिक एक परिकल्पना होगी। तब प्रार्थना एक सिद्धांत होगी और प्रार्थना सिद्धांत नहीं है। प्रार्थना कोई वस्तु नहीं है। प्रार्थना कोई सिद्धांत नहीं है—प्रार्थना तो एक अनुभव है। तुम 'यदि' से प्रारंभ नहीं कर सकते।

वह प्रारंभ ही गलत हो जाता है। तुमने गलत दिशा में कदम उठा लिया। 'यदियों' को छोड़ो और तुम प्रार्थना में होगे। सब यदियों को छोड़ो, जीवन को परिकाल्पनिक चीजों द्वारा मत जियो: 'यदि ऐसा है, यदि ईश्वर है, तब मैं प्रार्थन करूंगा।' पर तुम प्रार्थना कैसे कर सकते हो यदि ईश्वर एक यदि हो? यदि ईश्वर केवल 'जैसे कि' हो, तो तुम्हारी प्रार्थना भी बस जैसे की होगी। यह एक रिक्त संकेत होगी। तुम झुकोगे तुम कुछ शब्द उच्चारित करोगे, पर तुम्हारा हृदय वहां नहीं होगा। हृदय कभी यदियों के साथ नहीं होता। विज्ञान यदियों से काम करता है; धर्म कभी यदियों से काम नहीं करता।

तुम पूछ रहे हो, 'यदि प्रेम है, तो मुझे प्रेम सिखा दें।' यदि प्रेम है? तब तुम्हारे हृदय में कुछ भी मंथन नहीं हुआ है, तब बसंत नहीं आया है, और उस समीर ने, जिसे कि प्रेम कहा जाता है, तुम्हें स्पर्श नहीं किया है। तुमने शायद किसी अन्य को प्रेम के विषय में बात करते हुए सुन लिया है। तुमने शायद किसी पुस्तक में प्रेम के विषय में पढ़ लिया है। तुम शायद रोमांटिक कविताएं पढ़ते रहे होगे। शब्द 'प्रेम' तो तुम तक आया है, पर प्रेम के अनुभव का एक क्षण भी नहीं घटा है...इसलिए तुम पूछते हो: यदि प्रेम है, तब हमें सिखाएं, परंतु यदि के साथ नहीं सिखाया जा सकता है।

क्या तुमने कभी भी प्रेम का, प्रार्थना का, सौन्द्रर्य का कोई एक क्षण भी अनुभव नहीं किया है? मैं आज तक एक भी ऐसे व्यक्ति से नहीं मिला हूं जो कि इतना अभागा हो। क्या तुमने कभी भी रात्रि के मौन को नहीं सुना है? क्या तुम कभी भी इसके द्वारा रोमांचित नहीं हुए हो? क्या तुमने कभी क्षितिज पर उगते सूरज को नहीं देखा है? क्या तुमने कभी भी उगते सूरज के साथ एक गहन अर्न्तसंबंध अनुभव नहीं किया है? क्या तुमने सूरज की किरणों को हर तरफ से और अधिक जीवन के अपने पर उंडलते अनुभव नहीं किया है? हो सकता है तुमने उसे एक क्षण के लिए ही किया हो? क्या तुमने कभी किसी इंसान का हाथ अपने हाथ में थामा है और कुछ तुम में प्रवाहित होने लगा हो उस और से तुम्हारे अंतस में। क्या तुमने उस एकात्मकता को अनुभव नहीं किया है कभी? क्या तुमने यह अनुभवन नहीं किया है कि जब दो मनवीय-अवकाश एक दूसरे को आच्छादित कर लेते है? और एक दूसरे में प्रवाहित हो जाते हैं? क्या तुमने कभी किसी गुलाब के फूल को नहीं देखा है और उसकी सुगंध को नहीं सूंधा है?—और अचानक तुम किसी अन्य ही जगत में स्थानांतरित हो गए हो?

ये प्रार्थना के क्षण हैं। यदि से प्रारंभ इसे कृपा मत करो। जीवन के उन सब क्षणों को इकट्ठा कर लो जो कि सुंदर थे—वे सब प्रार्थना के क्षण थे। अपने प्रार्थना के मंदिर को उन क्षणों पर आधारित करो। उसे आधार बनने दो, यदि को नहीं। यदि की ईंटे झूठी है। वो आधार तो सुनिश्चिताओं से निर्मित करो। पूर्ण सुनिश्चितताओं से—केवल तभी, केवल तभी इस बात की संभावना है कि तुम प्रार्थना के जगत में प्रवेश कर सको। यह एक महान जगत है। इसका प्रारंभ तो है पर इसका कोई अंत नहीं है। यह महासागर जैसा है।

इसलिए कृपया मत कहो कि 'यदि ऐसा है तो' ऐसा ही है। और यदि अभी तुमने इसे ऐसा महसुस नहीं किया है, तब झांको अपने जीवन में और सौन्दर्य के, प्रेम के अनुभव में उतरो उसमें झांको-कुदो सुनिश्चितताओं को ढूंढो जो मन के पार जाती हों। उन सब को इकट्ठा कर लो। मन की सामान्य आदते तो यह है कि उन्हें इकट्ठा न करे क्योंकि वे तार्किक मन के विपरीत होती है। इसलिए हम कभी उन पर ध्यान ही देते। ये घटनाएं घटती हैं, ये हर किसी को घटती हैं। मुझे यह बात दोहराने दो: कोई भी इतना अभागा नहीं है। वे सबसे अभागे व्यक्ति को घटती हैं। आदमी बना ही इस ढंग से, आदमी का होना ही ऐसा है—वे घटने के लिए वाध्य हैं। पर हम उन पर ध्यान ही नहीं देते क्योंकि वे क्षण खतरनाक होते है, मन के लिए। यदि वे सच हैं तो हमारे तार्किक मन का फिर क्या होगा? वे तो बड़े अतर्किक क्षण है।

अब एक पक्षी को सुनते हुए और कोई चीज तुम्हारे भीतर भी गाने लगती है—यह बड़ी अतर्कपुर्ण बात है। तुम पता नहीं लगा सकते हो कि ये कैसे हो रहा है, यह क्या हो रहा है? क्या ऐसा होना चाहिए? इस सब का क्या कारण है? क्यों होता है ऐसा? इन सब बातों को मन समझ नहीं सकता तब वह क्या करे अपने बचाव के लिए, क्योंकि चीजें तो घट रही है। तब मन इसे समझ नहीं पा रहा होता है। मन के पास बस एक ही उपाय बचता है इस पर ध्यान ही मत दो, वह इस बात को असर्मण कर दे। भूला दे याद ही न करे। और एक तर्क खड़ा कर दे कि यह सब एक बहम है ऐसा कैसे हो सकता है? ये एक पागल पन है, तुम पगल हो गए थे कुछ क्षणों के लिए। तब मन इन सब की ऐसी व्याख्या करता है जो उसके पक्ष में होती है। अपने बचाने के वह नए-नए तरिके खोजता ही रहता है। एक पक्षी ही तो गा रहा था...ये क्या खास बात थी। इस लिए इतना झक्कीपन ठीक नहीं है, कोई क्या कहेगा? तुम तो कितने बौधिक हो समझदार हो ऐसा तुम कैसे कर सकते हो। तुम एक बहाव में बह गए थे, तुम जरा भावुक हो गए थे, इस तरह की भावुकतापुर्ण बात ठीक नहीं है, तुम्हें थोड़ा सावधान रहना चाहिए...ये कोई प्रामाणिक बात नहीं है...ये तुम्हारा बहम मात्र है।

यह मन के नकारने का एक ढंग हो सकता है। एक बार तुम नकारना प्रारंभ कर दो तो तब भी तुम्हारे पास कोई ऐसा क्षण तुम्हारे पास आता है जिस पर तुम अपनी प्रार्थना का आधार खड़ा कर सको...मन उस सब के लिए एक प्रश्न चिन्ह खडा कर देता है। यदि ऐसा है तो...।

मेरा पहला सुझाव है: अपने जीवन में जाओ। उन सब क्षणों को स्मरण करो। तुम एक छोटे बच्चे रहे होगे, समुन्द्र तट पर सीपियां इकट्ठे करते हुए, और दूर सूरज की स्वर्णिमकिरणें तुम पर बरस रही होगी। हवा में मधुरता तुम को छू रही होगी, समुंद्रिय नमकीन उस हवा और गंध के साथ तुम्हारे नथुनो में प्रवेश कर रहा होगा। एक अनछुया आंनद तुम पर बरस रहा होगा। तुम एक परिपूर्णता से लवरेज हो रहे होगे। समपूर्ण आस्तित्व तुम से होकर बह रहा होगा। तब तुम इतने आंनद विभोर हो रहे होगे कि कोई राजा महाराज भी तुम्हारे इस क्षण के आगे फिका पड़ गया होगा। तुम करीब-करीब संसार के सर्वोच्च शिखर पर थे—तुम सम्राट बन गए थे कुछ क्षणों के लिए। यह वह क्षण है, यहीं है वो आनंद की ईंटे जिससे तुम इस मंदिर का आधार रख सकते हो।

तुम एक छोटे बच्चे थे एक तितली के पीछे दौड़ते फिर रहे थे, वही क्षण था प्रार्थना का। पहली बार जब तुम किसी स्त्री के या किसी पुरूष के प्रेम में पड़े हो, तुम्हारा हृदय आनंद से हिलोरे ले रहा है, एक मंथन हो रहा है, तुम्हारी समपूर्ण ऊर्जा आंदोलित हो रही है और तुम एक नए ढंग के स्वप्न देखने लग जाते हो...तुम्हारे आंखों मे एक रंगिनता छा जाती है, वही क्षण होता है प्राथना का, तुम्हारा प्रथम प्रेम, तुम्हारी प्रथम मैत्र ही उस प्रथाना की उतुंग उंचाई है, वहां मंदिर बन सकता है प्रार्थना को।

अपने अतीत से किसी ऐसी चीज के विषय में कुछ सुनिश्चितताओं को एकत्रित करो जो कि मन के पार की हो। जिसकी कि मन व्याख्या न कर सके। जिसका की मन चिर-फाड़ न कर सके, उसकी समझ के पार की कुछ विष्मयकारी घड़िया। जो केवल होना मात्र हो, वहा पर कोई व्याख्या करने वाला न हो। उन कुछ क्षणों को इकट्ठा करो, थोड़े से क्षणों से भी काम चल सकता है। परंतु एक बात का ध्यान रखो उनमें कोई यदि न हो? फिर तुम सुनिश्चिता के साथ चल सकते हो। तब यह एक परिकल्पना नहीं होती। तब वहां भरोसा होता है। एक निजिता शाश्वता।

यदि यह बात तुम्हारे साथ तब हो सकती थी जबकि तुम एक बालक थे, तो यह तुम्हें अब क्यों नहीं हो सकती? जरा सोचो...क्यों? विस्मय के वे क्षण को एकत्रित करो! जबकि तुम रोमांचित हो उठे थे। समपूर्ण विस्यम से भर गए थे।

अभी उस दिन मैं एक व्यक्ति के विषय में पढ़ रहा था, एक बहुत सरल व्यक्ति, एक बहुत बूढ़ा व्यक्ति। और एक अंग्रेज दार्शनिक, चिंतक डॉक्टर जॉनसन उस बूढ़े व्यक्ति के साथ ठहरा हुआ था। और एक दिन सुबह, जब वे दोनों चाय पी रहे थे, उस बूढ़े व्यक्ति ने कहा, 'डॉ जानसन आपको जानकर हैरानी होगी कि जब मैं जवान था तो मैंने भी दार्शनिक बनने की चेष्टा की थी।'

डॉ जॉनसन ने पूछा, 'फिर क्या हुआ? आप दार्शनिक क्यों नहीं बन पाए?'

वह व्यक्ति हंसा और उसने कहा, 'परंतु प्रसन्नचित्तता बार-बार मेरे जीवन में फूट पड़ी-प्रफुल्लता। उसी प्रसन्नचित्तता के कारण मैं एक दार्शनिक न बन सका। बार-बार मैंने इसे दबाने की बड़ी चेष्टा की।'

इसलिए तो जीसस कहते हैं: केवल वे लोग जो छोटे बच्चों जैसे हैं, केवल वे ही मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे—वे जिनकी आंखें विस्मय से भरी हैं, जिनके हृदय रोमांचित हो जाने के लिए अभी भी खुले हैं, केवल वे ही।

इसलिए पहले तो यदि को छोड़ो और कुछ सुनिश्चितताओं को इकट्ठा करो—यह पहला पाठ है प्रार्थना के विषय में।

दूसरी बात, तुम कहते हो: 'मुझे सिखा दें कि प्रार्थना कैसे करूं।'

कोई कैसे नहीं है। प्रार्थना कोई तकनीक नहीं है। ध्यान सिखाया जा सकता है, यह एक तकनीक है। यह एक विधि है। प्रार्थना विधि नहीं है—यह तो एक प्रेम-संबंध है! तुम प्रार्थना कर सकते हो पर प्रार्थना सिखाई नहीं जा सकती।

ऐसा एक बार हुआ: जीसस के कुछ शिष्यों ने उनसे पूछा, 'मास्टर, हमें प्रार्थना सिखाएं और यह भी सिखाऐं कि कैसे?' और जानते हो जीसस ने क्या उत्तर दिया? तुम जानते हो? उन्होंने ठीक वैसा ही काम किया जिसकी आशा तुम एक झेन मास्टर से करते हो: वह बस पृथ्वी पर अपने घुटनों के बल गिर गए और प्रार्थना करने लगे। शिष्य तो हैरान रह गए। उनकी समझ में कुछ नहीं आया सब इधर-उधर देखने लगे। उन्होंने अपने कंधे उचकाए होंगे कि 'हमने तो उन्हें सिखाने के लिए कहा और वह क्या कर रहे है?' वह तो प्रार्थना कर रहे हैं—पर उनकी प्रार्थना हमारी सहायता कैसे कर सकती है? बाद में उन्होंने पूछा होगा और जीसस ने कहा होगा, 'परंतु यहीं तो एक मात्र उपाय है, इसके लिए कोई विधि नहीं बन सकती।'

जीसस ने प्रार्थना की—और तुम क्या कर सकते हो? यदि वे कुछ अधिक सजग रहे होते, वे जीसस के पास ही बैठ गए होते। उनके हाथों को पकड़ लिया होता, उनके वस्त्रों को छू लिया होता...उनके सम्पर्क बनाने के लिए उनके हृदय में डूब गए होते। सब उनमें बह गए होते। तब शायद वहां कोई घटना घट सकती थी।

मैं तुम्हें प्रार्थना सिखा नहीं सकता, पर मैं प्रार्थना हूं। और प्रार्थना के लिए मुझे अपने घुटनों पर गिरने की आवश्यकता नहीं—मैं प्रार्थना में ही हूं। तुम बस मेरे अस्तित्व को अंतग्रर्हण को विलय हो जाने दो। मुझे ग्रहण कर लो, मुझमें बह रहे उन रस धार को पी लो, मुझे अपने में कुछ बहने दो, खोल दो अपने हृदय के पाट। और सच यही तुम्हें सिखाएगी की प्रार्थना क्या है? प्रत्येक सुबह मैं तुम्हें सिखा रहा हूं कि प्रार्थना क्या है? मैं प्रार्थना में हूं शायद ऐसा कहना भी कुछ गलत होगा मैं खुद में एक प्रार्थना हूं...ये शायद उसके ज्यादा नजदीक है। खोले अपने वातायान, गुजरने दो वहां पर थोड़ी सी मधुर सुवास, यह एक संक्रमणता है—यह एक रोग है जो फैलता है, आप पल भर के लिए मेरे संग-साथ हो लो। और सच में रोज मैं यही तो चाहता हूं।

मैं तुम्हें यह तो नहीं सिखा सकता कि प्रार्थना कैसे की जाए पर मैं तुम्हें प्रार्थनापूर्ण होना जरूर सिखा सकता हूं। मेरी उपस्थिति के साथ और अधिक लय में हो जाओ।

और इन प्रश्नों को अपने मन में मत रखो क्योंकि ये ही बाधाएं बन जाऐंगी। बस मेध बन जाओ, मेध होते ही यह घटना घट जाएगी। एक दिन अचानक तुम पाओगे कि हृदय गीत गा रहा है, और कोई चीज तुम्हारे भीतर अचानक नाच रही है। कोई उर्जा तुम्हें घेरे हुए है, एक नई उर्जा तुम्हारें अंदर के अंधकार को छंदविछिन्न कर जाऐगी। वह प्रवेश के इंतजार में खडी है कब खुले वातायान ओर प्रवेश करूं। खोल दो अपने हृदय के द्वार और बह जाने दो परमात्मा को अपने अंतस में। कर लेने दो अस्तित्व को अपने अंदर प्रवेश।

सच में यहीं तो प्रार्थना है। तुम इसे कर नहीं सकते—तुम बस इसे होने दो। ध्यान किया जा सकता है, प्रार्थना की नहीं जा सकती। उस ढंग से तो ध्यान कुछ अधिक विज्ञानिक है। इसे सिखाया जा सकता है। लेकिन प्रार्थना? प्रार्थना तो पूरी तरह से अवैज्ञानिक है; यह तो हृदय का मामला है।

मुझे महसूस करो और तुम प्रार्थना को महसूस करोगे। मुझे स्पर्श करो और तुम प्रार्थना को स्पर्श कर लोगे, मुझे सुनों और तुम उन शब्दों को छू रहे होते हो जो प्रार्थना से भरपूर हैं।

और फिर, कभी-कभी मौन बैठे-बैठे, एक वार्तालाप चलने दो एक वार्तालाप अस्तित्व के साथ। तुम अस्तित्व को ईश्वर या पिता या माता कह सकते हो...हर नाम सही है। पर किसी कर्म-कांड को मत दोहराओं। न ईसाइयों की प्रार्थना, न हिन्दु, न मुस्लमान, न बोद्ध, न ही किसी मंत्र का उच्चारण करो। कोई भी नहीं चाहे

तिब्बती हो या चीनी, या भारतिय, या जेनी, सब मंत्र अवरोध है, अंतस तक डूबने में। इसे दोहराओं मत। अपने मंत्र निर्मित करो: तोता मत बनो। क्या तुम ईश्वर से कोई अपनी ही हृदय की बात नहीं कह सकते हो, केवल होने की इसका अभ्यास मत करो। इसके लिए कोई तैयारी मत करो। क्या तुम उसी तरह से सीधे ईश्वर का सामना नहीं कर सकते हो जैसे की एक बच्चा अपने माता-पिता के सामने जाता है? उनकी गोद में छुप जाता है, मां के आंचल को आढ़ लेता है। उसके पास कोई शब्द नहीं होते, परंतु वह होता है, और मां उसे अपने में समेट लेती है। क्या तुम जब कुछ कह रहे होते हो...नहीं वहां शब्दों की जरूरत नहीं होती, तुम केवल हृदय से वहां जाओ तब देखों परमात्मा कैसे तुम्हें अपने में समेट लेता है।

प्रार्थना को घटने दो! इसके लिए तैयारी मत करो, एक तैयार की हुई प्रार्थना है। और एक दोहराई गई प्रार्थना तो बस एक यंत्रिक होती है। तुम ईसाई प्राथना को दोहरा सकते हो—तुम इसे रट सकते हो। बस वहां कुछ भी नहीं होगा एक मद होगा, एक नींद होगी तुम कुछ क्षण के लिए उसमें गिर सकते हो। और कुछ भी नहीं...। यह तुम्हें जागरूक नहीं बना सकती। क्योंकि इसे प्रतिकर्म के रूप में किया जा रहा होता है। वहां पर क्रिया का होना ही उसकी मृत्यु है, उस संवेदना का ह्रास है।

मैंने एक महान गणितज्ञ के विषय में सुना है जो हर रात केवल एक शब्द की प्रार्थना किया करता था। वह आकाश की और देखता और कहता 'वही' (डिट्टो) जो कल भी कि थी, उसी को रोज क्या दोहरना? इतना बुद्धिमान परमात्मा को होना ही चाहिए। परंतु नहीं हम दोहराए ही जाते है रोज-रोज वहीं प्रार्थना। और गर्व से फूले नहीं समाते...क्यों नहीं कह देना चाहिए फिर से 'डिटो' क्योंकि शायद परमात्मा एक ही प्रार्थना को रोज-रोज सून कर परेशान जरूर हो गया होगा। उसे भी तो कुछ विश्राम चाहिए। यदि तुम्हें कुछ नहीं कहना तो बस इतना ही कहो, 'आज मेरे पास कहने को लिए कुछ भी शब्द नहीं है? मैं खाली आपके द्वार आया हूं। शायद ये कहीं बेहतर तरिका है प्रार्थना का?'

या बस मौन रहो...कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है? परंतु सच्चे तो रहो—कम से कम अपने व समस्त के बीच में तो सत्य को ही रहने दो। यही तो प्रार्थना है। अपने हृदय को खोल दो।

मैंने सुना है: मोजेज़ एक जंगल से गुजर रहे थे और उन्हें एक आदमी मिला, एक गड़रियां, एक गरीब आदमी, एक गंदा निर्धन आदमी जिसके कपड़े चीथड़े हो गए थे। और वह प्रार्थना कर रहा था, यह प्रार्थना का समय था और वह प्रार्थना कर रहा था। मोजेज़ उसके पीछे उत्सुकतावश खड़ा हो गया। और उसकी प्रार्थना को सुनने लगा। उसे तो विश्वास ही नहीं हो रहा था कि इस तरह की भी प्रार्थना कोई कर सकता है। वह गरीब गड़रिया कह रहा था: 'परमात्मा, जब मैं मरूं, मुण्े अपने स्वर्ग में आने देना—मैं तेरी देखभाग करूंगा, यदि तेरे शरीर में जूएं पड़ गई होंगी तो उन्हें मे बहुत ही जतन से निकालुंगा, देखो यह तो मेरा अनुभव है, मैं तुम्हे मल-मल कर नेहला दूंगा। जिस तरह से मैं अपनी भेड़ो को नहलाता हूं, उनकी जूंए निकलता हूं। वह कितनी प्रसन्न हो जाती है, नहाने पर, मैं तेरे लिए गर्म दुध करूंगा...मेरी भेड़ो का दुध बहुत ही मीठा और सुस्वादिष्ठ है। और मुझे मालिस भी बहुत ही अच्छी आती है, जब तुम थक जाएगा तो तेरे, शरीर की मालिस करूंगा, तेरे पैरो को गर्म, पानी से धौकर उन्हें तेल की मालिस करूंगा ताकि तेरी इतनी भागदौड़ के कराण थकावट कम हो जाए। जब तु थक कर अपने बिस्तरे पर लेट जाऐगा तो तेरे पैर भी दबा दूंगा।'

अब तो हद हो गई मोज़ेज़ से रहा न गया, तु परमात्मा की जूंए निकलेगा....क्या बकवास करे जा रहा है, और मोज़ेज़ ने उस आदमी को जोर से हिलाया और कहा, 'तु ये क्या बकवास किए जा रहा है, भला ये भी कोई प्रार्थना है? किस तरह की ये बकवास है, परमात्मा और गंदा, उसे जूंए...कुछ अजीब सी बात है तेरा दिमाग तो ठीक है?'

उस गरीब व्यक्ति को बाधा पड़ी। उसने कहा, 'जब उसने आंखें खोल कर देखा एक, महापुर्ष उसके सामने खड़ा है, उसे कुछ झेप भी आई, और उनके चरणों मैं गिर कर माफी मांगते हुए उसने कहां की मैने कभी उसे देखा तो नहीं है, इसलिए मुझ से कुछ गलत हो गया तो मुझे माफ कर दो।'

मोज़ेज़ ने कहा, 'रूक जा! फिर से इस तरह की प्रार्थना कभी मत करना। यह तो प्रार्थना न होकर पाप हो रहा था। तू तो अपने लिए खुद एक नर्क निर्मित कर रहा था। अच्छा हुआ की मैं यहां से गुजर रहा था। अब इस तरह की प्रार्थना भुल कर भी मत करना।'

वह गरीब आदमी तो डर के मारे थर-थर कांपने लगा। उसे तो पसीना आ गया। तब उसने कहा: 'पर मैं तो अपनी सारी जिंदगी इसी तरह की प्रार्थना करता रहा हूं, अब क्या होगा मेरा? मुझसे अंजाने में बहुत भूल हो गई, मेरे मन में जो आता था वहीं में कहता था, परंतु मेरा भाव व प्रेम परमात्मा की तरफ सच्चा था मैं उनकी सेवा करना चाहता था। आप मुझ कृपा सही प्रार्थना सिखा दिजिए।'

मोज़ेज़ को लगा कि आज उसने एक नेक कार्य किया है, एक भटके हुए को सही मार्ग बता दिया है। और वह उसे सही ढंग की प्रार्थना सिखाने लगा। बचारो गडरियां इतनी बड़ी प्राथना को नहीं समझ पाता। और उदास हो जाता है। और इसके बाद मोज़ेज़ आगे बढ़ जाता है, वह चार कदम भी नहीं चला होता कि उनके सामने परमात्मा की उपस्थिती महसूस होती है मानों कोई उन्हें कहा रहा है, एक आवाज जंगल में गूंज उठती है, 'हे मोज़ेज़, सुन मैंने तुझे इस संसार में इस लिए भेजा है कि तु मेरे लोगों को मुझ से मिलाए, मेरे पास लाए। और तु ये क्या कर रहा है? तु तो मेरे लोगों को मुझ से दूर कर रहा है। उन्हें भटका रहा है। वह मेरा कितना प्यारा था, उसका हृदय कितना कोमल और र्निकलुष था। उसकी प्रार्थना कितना सच्ची और प्रेम से भरी थी। मेरी सर्वश्रेष्ठ प्रार्थनाओं में एक थी। उसमें कोई दिखावा या छलावा नहीं था, न ही वह निर्मित थी। एक ह्रदय की आवाज थी जो मुझ तक बह रही थी। और तुने तो उसका दिल ही तोड़ दिया। तू जा और उससे अभी माफी मांग, और जो तुने उसे अपनी प्रार्थना सिखाई है उसे वापस ले, अपने उन थोथे शब्दों को उन मुर्दा शब्दों को वापस ले ले।'

मोज़ेज जाते है उस गड़रिए के पास और उनके पैरों में गिर कर माफी मांगते है, कहते है, 'मुझे माफ कर दो, मैं गलता था और आप सही थे। परमात्मा तुम्हारी बात सून रहा था। मेरी ही प्रार्थना वापस लोटाई जा रही थी।'

ठीक ऐसा ही होना भी चाहिए। अपनी प्रार्थना को उगने दो। इसे घटने दो। हां, जब कभी भी तुम परमात्मा से कुछ गपशप करने जैसा महसूस कर रहे हो, उन क्षणों की प्रतीक्षा करो। और इस हर रोज दोहराने की कोई भी जरूरत नहीं है। ऐसी भी कोई प्रार्थना की आवश्यकता नहीं है, जो बनी-बनाई हो। जब तुम्होरे अंदर से कोई भाव उठे, कोई तरंग उठे, हृदय अल्हादित हो रहा हो, प्रेम का सागर मचल रहा हो, तब आप उसके संग साथ हो सकते हो। वहीं है प्रार्थना सच्ची। बाकी तो सब कर्म-कांड ही है।

कभी-कभी स्नान करते समय, फैवारे के नीचे बैठे-बैठे, अचानक प्रार्थना करने की एक उत्कण्ठा उठ खड़ी हो तो वह क्षण अति महत्वपूर्ण है उसे मत जाने दो और डूब जाओं उस क्षण में। उतर जाओं उस प्रार्थना में। अब यही जगह है, सही समय है प्रार्थना का उसे मंदिर तक ले जाकर खंडित मत करो। किसी वृक्ष के नजदीक घट रही है तो वहीं बैठ जाओ। जिस क्षण में कोई उत्कण्ठा उठ खडी हुई है, वहीं तो घट गई प्रार्थना। और तुम यह देख कर हैरान होगे कि वह कितनी सुंदर है। जब वह हृदय की गहराईयों से उठ कर बहती है। सच में वही सूनी भी जाती है। और उसका जवाब भी आता है।

कभी अपनी स्त्री को प्रेम के क्षण में जब एक दूसरे का हाथ थामें हो, अचानक प्रार्थना करने की एक लालसा उठती हैं—उसी क्षण प्रार्थना में उतर जाना। फिर उस से बेहतर प्रार्थना का क्षण तुम्हें नहीं मिलेगा। वो समय प्रेम का परम सुख होता है जब अपनी प्रिय के संग-साथ उस समय परमात्मा हमारे बहुत ही नजदीक होता है। नजदीक भी नहीं कहना चाहिए हम उससे लवरेज होते है, हम उसमें डूबे ही हुए होते है। वह हम पर उस समय बरस रहा होता है। जब चरम सुख तुम पर बरसे, उस समय प्रार्थना में डूबों। पर रूकों—इसे एक कर्मकांड़ न बनाओं। यही तो तंत्र की दृष्टि है। चीजों को स्वस्फूर्त होने दो।

और आखिरी बात तुम कहते हो: 'मेरा तात्पर्य है प्रार्थना ईश्वर के प्रेम को प्रात्त करने के लिए, उसके प्रसाद को अनुभव करने लिए।'

फिर तुम्हारा प्रश्न गलत है: 'मेरा तात्पर्य है प्रार्थना ईश्वर के प्रेम को प्राप्त करने के लिए।' तुम लालची हो! प्रार्थना तो प्रभु को प्रेम करने के लिए होती है। हां, प्रेम प्रभु से हजार गुना होकर आता है, पर आकांक्षा वह नहीं है, वह तो बस उसका निष्कर्ष है; उकसा परिणाम नहीं, निष्पति है। हां, प्रेम आएगा एक बाढ़ की तरह, तुम परमात्मा की और एक कदम उठाते हो और परमात्मा तुम्हारी तरफ हजार कदम उठता है। तुम उसे प्रेम की एक बूंद देते हो वह हजार बूंदों में लोटा देता है। वह आप पर बरस उठता है, एक सागर की तरह उपलब्ध हो जाता है। हां, यह होता है, पर यह तुम्हारी आकांक्षा नहीं होनी चाहिए। यह आकांक्षा गलत है। यदि तुम बस परमात्मा का प्रेम चाहते हो और इसलिए तुम प्रार्थना कर रहे होते हो। तब तुम्हारी प्रार्थना एक सौदा है। तब यह एक व्यापार है। और व्यापार से सावधान रहना।

अमरीका में कहीं किसी छोटे से स्कूल में अध्यापिका बच्चों से पूछती है: 'मनुष्य के इतिहास में महानतम व्यक्ति कौन हुआ है?' निश्चय ही, एक अमरीकन कहता है, 'अब्राहम लिंकन' एक भारतिय कहता हे, 'महात्मा गांधी' और एक अंग्रेज बालक कहता है, 'विंसटन चर्चिल' और इसी तरह से दूसरे बच्चे भी कहते है। और तब एक छोटा सा यहूदी बालक खड़ा होता है और कहता है, 'जीसस' और वह जीतता है, पुरस्कार उसी को मिलता है। लेकिन अध्यापिका उससे पूछती है, पुरस्कार उसी को मिलता है। लेकिन अध्यापिका उससे पूछती है, 'तुम तो यहूदी हो, तुमने जीसस क्यों कहा?'

उस बालक ने कहा: 'अपने ह्रदय में तो मैं सारे समय जानता ही हूं कि यह मोजेज है, पर व्यापार अखिरकार व्यापार ही है।'

प्रार्थना को व्यापार मत बनाओ। इसे शुद्ध आहुति ही रहने दो; बस अपने हृदय से ही अर्पण करो बदले में कोई चीज मत मांगो। तब बहुत कुछ आता है...हजार गुणा, लाख गुणा...परमात्मा तुम्हारी और बहता है। पर, पुन:, समरण रखना कि यह एक परिणति है। परिणाम नहीं।

तीसरा प्रश्न: आपने जुंग का विचार, कि पुरूषों को दो तरह की स्त्रियां चहिए का वर्णन किया। एतिहासिक रूप से बहुत से पुरूष ऐसा ही महसूस करते जान पड़ते है। जबकि बहुत कम स्त्रियों को एक बार में एक से अधिक पुरूष की आवश्यकता जान पड़ती है। क्या पुरूष के मनोविज्ञान में ही इस विचार जैसा कुछ है? यदि हां, तो क्यों?

प्रश्न आनंद प्रेम का है। पहली बात, वह कहती है, 'एतिहासिक रूप से बहुत से पुरूष ऐसा ही महसूस करते जान पड़ते है...।' इतिहास मात्र बकवास है। और इतिहास रचा ही पुरूषों द्वारा जाता है। किसी स्त्री ने

इतिहास नहीं लिखा है। यह पुरूषोन्मुख है, यह पुरूष-अधिरोहित है, यह पुरूष-व्यवस्थापित है। यह एक झूटा इतिहास हे।

पुरूष ने स्त्री को इस ढंग से संस्कारित करने की चेष्टा की है कि वह सरलता से उसका शोषण कर सके और स्त्री विद्रोह भी न कर सके। गुलामों को सदा इसी तरह से सम्मोहित करे रखा जाता है कि वे विद्रोह न कर सकें। पुरूष ने स्त्री के मन को इस तरह से संस्कारित किया है कि वह उसी ढंग से सोचती है जिस ढंग से पुरूष चाहता है कि वह सोचे।

तुम कहती हो: 'ऐतिहासिक रूप से, बहुत से पुरूष ऐसा ही महसूस करते जान पड़ते है...।' क्योंकि पुरूष अधिक स्वतंत्र हैं। वे मालिक हैं। स्त्रियां गुलामें की भांति जीती आई हैं, उन्होंने गुलामी को स्वीकार कर लिया है। तुम्हें इस गुलामी को पूरी तरह से उतार फेंकना है। तुम्हें इससे बाहर निकल आना है।

अभी उस रात मैं पढ़ रहा था कि छठी शताब्दी में सब महान ईसाई नेताओं का एक बड़ा ईसाई सम्मेलन आयोजित किया गया। और यह निर्णय करने के लिए कि स्त्रियों में आत्मा होती है या नहीं। सौभाग्य से उन्होंने निर्णय लिया कि स्त्रियों में आत्मा होती है। लेकिन केवल एक के बहुमत से—बस एक वोट कम हुआ होता तो ऐतिहासिक रूप से तो तुम्हारे पास कोई आत्मा नहीं होती। यह भी कुछ अधिक नहीं है, यह आत्मा।

पुरूष ने स्त्रियों के समस्त मनोविज्ञान को कुचल डाला है। और जो कुछ भी तुम देखती हो वह सच में स्त्रियों का मनोविज्ञान नहीं है—यह स्त्रियों में पुरूषों द्वारा बनाया गया, पुरूषों द्वारा निर्मित मनाविज्ञान है। जितनी अधिक स्वतंत्र तुम होओगी, उतना ही तुम भी वैसा ही (पुरूषों जैसा) महसूस करोगी—क्योंकि सच में तो पुरूष और स्त्री उतने भिन्न नहीं है जितना भिन्न कि उन्हें सोचा गया है। भिन्न वे हैं। उनकी जैविकी भिन्न है और निश्चय ही उनका मनोविज्ञान भी भिन्न है—पर वे असमान नहीं हैं। असमानताओं की अपेक्षा उनमें समानताएं अधिक हैं।

जरा सोचो: एक पुरूष रोज-रोज वही चीज खाते-खाते ऊब जाता है। और एक स्त्री? वह इससे ऊबेगी, अथवा नहीं। वह भी ऊब जाएगी। दोनों के बीच अंतर क्या है? ऊब जाना स्त्री के लिए भी उतना ही स्वाभाविक है जितना कि पुरूष के लिए। और जब तक कि काम-संबंध एक आध्यात्मिक संबंध में विकसित न हो जाए ऊब रहेगी ही।

इस बात को एकदम स्पष्ट हो जाने दो: एक काम-संबंध स्वयं में चिरस्थायी संबंध नहीं हो सकता क्योंकि जहां तक काम का संबंध है, यह क्षणिक सुख है। एक बार तुम एक स्त्री से संभोग कर चुके, तुम्हारा मामला सच में उससे खत्म हो जाता है। तुम उसमें और उत्सुक नहीं रहते। जब तक कि काम संबंध से अधिक कोई चीज तुम दोनों के बीच में पैदा न हो, कोई अधिक ऊंची चीज, कोई आध्यात्मिक संबंध न बने—इसे काम द्वारा बनाया जा सकता है, इसे बनाया जाना ही चाहिए, वरना काम संबंध मात्र शरीरिक बना रहता है—यदि कोई आध्यात्मिक चीज, आध्यात्मिक-विवाह जैसे कोई चीज घटे, तब कोई समस्या न होगी। तब तुम साथ-साथ रह सकते हो। और तब चाहे तुम पुरुष हो या स्त्री, तुम दूसरी स्त्रियों या पुरुष के विषय में सोचोगे ही नहीं। बात ही सामप्तहो गई। तुम्हें अपनी आत्मा का साथी मिल गया।

लेकिन संबंध यदि शारीरिक मात्र है, तब शरीर थक जाता है, ऊब जाता है। शरीर को आवश्यकता होती है रोमांच की, शरीर को आवश्यकता होती है नए की, शरीर को आवश्यकता होती है सनसनी की। शरीर सदा नए की लालसा करता रहता है।

एक ए. टी. एस. ड्राईवर, सेलिसबरी प्लेन की अपनी लम्बी यात्रा के उपरांत अपने गंतव्य स्थल, एक दूरस्थ शिविर में, अर्द्धरात्रि को पहुंची। सुरक्षा सार्जेंट ने उसे बताया कि वह अपनी गाड़ी कहां छोड़ सकती थी और फिर उससे पूछा, 'आज रात तुम कहां सोओगी?'

लड़की ने उसे समझाया कि उसकी गाड़ी ही वह एक मात्र जगह थी जहां कि वह नींद ले सकती थी। यह एक ठंडी रात थी, और सार्जेंट ने एक क्षण सोचा और फिर कहा, 'यदि तुम चाहो तो मेरे बंकर में सो सकती हो—मैं फर्श पर सो जाऊंगा।'

प्रस्ताव स्वन्यवाद स्वीकार कर लिया गया। अंदर आ जाने के बाद, लड़की को यह सोचकर बड़ा अफसोस हुआ कि बेचारा सार्जेंट बाहर ठंडे, कड़े फर्श पर पड़ा हुआ है। और बाहर की और झुककर, उसने कहा, 'यह ठीक नहीं है—क्यों नहीं तुम यहीं आ जाते और जगह बनाकर यहीं मेरी बगल में सो जाते?'

यह कर चुकने के उपरांत, 'सार्जेंट' ने कहा, ठीक है, तो अब कैसे रहेगा? क्या तुम क्वांरी सोना चाहती हो या विवाहिता? लड़की खिलखिलाई और बोली, 'मेरे ख्याल में यही अच्छा रहेगा की हम विवाहित सोए, क्या तुम ऐसा नहीं चाहते हो?'

'ठीक है, मैं झमेला करना नहीं चाहता, हम फिर विवाहित ही सोऐंगे, उसने लड़की की तरफ अपनी पीठ करते हुए कहां और सो गया।'

विवाह उबाता हे। यही कारण है कि तुम संसार में चारों तरफ इतने सारे ऊबे हुए चेहरे देखते हो। विवाह भयानक ऊब है। जब तक कि कुछ आध्यात्मिक बात इसमें न घटे...जो कि दुर्लभ बात है। इसलिए पुरूष बाहर की और देखने लगते हैं। स्त्रियां भी बाहर की और देखेंगी पर वे स्वतंत्र नहीं है। यह कारण है कि इतनी स्त्री-वेश्याएं तो पाते हो पर पुरूष-वेश्याएं नहीं पाते। हां, लंदन में, वे हैं, मैं सोचता हूं थोड़े से...परंतु पुरूष वेश्याऐं करीब-करीब न के बराबर हैं। क्यों?

वेश्यावृति विवाह का उप-उत्पाद है, और जब तक कि विवाह ही अदृश्य न हो जाए, वेश्यावृति रहेगी ही—यह एक उप-उत्पाद है। यह केवल विवाह के साथ ही जाएगी। अब, तुम्हारे तथा-कथित महात्मागण वेश्यावृति को तो रोकने की चेष्टा करते रहते हैं और यही वे लोग हैं जो विवाह को लादते जाते हैं। और वे इस बात की व्यर्थता को नहीं देखते। वेश्यावृति का अस्तित्व विवाह ही के कारण है। पशुाओं में तो कोई वेश्यावृति नहीं होती है। क्योंकि वहां विवाह नहीं है। क्या तुमने कभी किसी पशु को वेश्यावृति करते देखा है? यह समस्या वहां है ही नहीं। वेश्यावृति होती ही क्यों है?

इस कुरूप चीज का अस्तित्व एक अन्य कुरूप चीज, विवाह के कारण है। परंतु पुरूष वेश्याओं की संख्या अधिक नहीं है। क्योंकि स्त्रियां स्वतंत्र नहीं रही हैं। उन्हें पूरी तरह से दबा दिया गया है। उन्हें काम का आनंद भी लेने नहीं दिया गया है। उनसे यह आनंद लेने की आशा भी नहीं की जा सकती है। केवल बुरी स्त्रियों से सेक्स का आनंद लेने की आशा की जाती है। भली स्त्रियों से नहीं; महिलएं नहीं, केवल स्त्रियां। महिलाओं से कोई आनंद उठाने की आशा नहीं की जाती—वे तो कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

यह सच्चा इतिहास नहीं है। यह प्रबंधित इतिहास है, यह व्यवस्थापित इतिहास है। और यदि हजारों वर्षों तक तुम किसी विचार को आरोपित किए चले जाओ, यह करीब-करीब वास्तविक हो जाता है। यह सच्चा मनोविज्ञान नहीं है। सच्चे मनोविज्ञान को जानने के लिए तुम्हें स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता देनी ही होगी—और तब तुम देखोगे। और तुम हैरान हो जाओगे: वे पुरूषों से कही आगे रहेंगी।

तुम उन्हें देख सकते हो: पुरूष सदैव करीब-करीब वही सलेटी पोशाक पहने चला जाता है—स्त्रियां? हर रोज उन्हें एक नई साड़ी चाहिए। मैं उनके मन का निरीक्षण करता हूं। यदि उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता दे दी जाए, वे

पुरूषों से बहुत आगे निकल जाएगी। पुरूष वैसे का वैसा रह सकता है, तुम देख सकते हो, उनके वस्त्र बहुत रंगीन नहीं होते। और जहां तक पुरूष का संबंध है, फैशन जैसी कोई चीज उसके लिए होती ही नहीं। कैसा फैशन? वही की वही सलेटी पैंट रोज, औपचारिक सूट, वही टाई, और दूसरी और स्त्रियों के कपड़ो की अलमारी भरी होती है, पुरूष के पास कोई खास कपड़े वही गिने चुने। परंतु स्त्रियां को देखो? सारा बाजार उन्हीं की जरूरत के लिए सज़ा है। वहीं तो असली उपभोक्ता है।

पुरूष तो उत्पादक है, स्त्रियां उपभोक्ता है। बाजार में नब्बे प्रतिशत चीजें स्त्रियों के लिए बनी होती है। क्यों? उन्हें नई चीजें पुरूष से अधिक चाहिए। क्योंकि उसकी कामुकता को दबा दिया गया है। यह एक परावर्तन है, उनकी ऊर्जा का—चूंकि एक नया पति तो वे रख नहीं सकतीं। एक नई साड़ी एक परिपूरक है। एक नया घर एक परिपूरक है। वे अपनी ऊर्जा कहीं और लगा देती है...पर सच्चाई यह नहीं है। स्त्रियों को इतना भ्रष्ट और इतना नष्ट किया गया है कि यह निर्णय करना अत्यंत कठिन है कि उनका सच्चा मनोविज्ञान क्या है। इतिहास की मत सुनो: इतिहास तो एक कुरूप लेखा-जोखा है। यह लेखा-जोखा एक लम्बी गुलामी है। कम से कम स्त्रियों को तो इतिहास की नहीं ही सुननी चाहिए; उन्हें इतिहास की सब किताबे जला देनी चहिए। उन्हें तो कहना चाहिए कि इतिहास को फिर से लिखा जाए।

तुम यह जान कर हैरान होओगे कि जब तुम एक विचार-विशेष को आरोपित करते हो, तो मन भी उसी के ढंग से कार्य करना प्रारंभ कर देता है। मन भी विचारों की नकल करने लग जाता है। यह एक लम्बा सम्मोहन है, जिसमें स्त्रियां आज तक उलझी हुई है।

लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूं कि समाज को ठीक पशुओं जैसा होना चाहिए। मैं तो कह रहा हूं कि काम को एक छलांग-लगाने वाले तख्ते की भांति होना चाहिए। यदि तुम्हारा संबंध बस काम द्वारा ही परिभाषित होता है और इसमे और अधिक कुछ न हो, तब विवाह वेश्यावृति को निर्मित करेगा। पर यदि विवाह तुम्हारे शरीर से गहरा तब इसकी कोई आवश्यकता न होगी।

प्रत्येक अकेला इंसान, पुरूष या स्त्री, इतना अनंत अवकाश है...तुम जांच-पड़ताल किए जा सकते हो, तुम खोज-बीन करते चले जा सकते हो। इसका कोई अंत नहीं है। हर इंसान, स्त्री हो या पुरूष, इतना जीवंत है, और इतना नया है—नए पत्ते आते ही रहते है। नए फूल आते ही रहते है। नई जलवायु, नए मनोभाव—यदि तुम प्रेम करते हो, यदि तुम सच में ही घनिष्ट हो, तुम्हें कभी नहीं लगेगा कि यह वही पुरानी स्त्री है जो तुम्हारे साथ है, कि यह वही पुराना पुरूष है जो सालों से तुम्हारे साथ है। जीवन इतना महान गत्यात्मकता है।

पर प्रेम तो तुम करते नहीं! तुम तो शरीर पर ही अटके रहते हो। भीतर तो तुम देखते ही नहीं। आंतरिक आकाश को तो तुम देखते ही नहीं जो कि निरंतर परिवर्तित होता आ रहा है। ....और क्या परिवर्तन तुम्हें चाहिए? पर उस और तो तुम देखते ही नहीं। निश्चय ही, शरीर तो वहीं है। फिर यह उद्दीपन खो देता है। जब उद्दीपन खो जाता है, तुम्हारा जीवन ऊबपूर्ण होने लग जाता है। तुम फिर से सहायता खोजने लग जाते हो क्योंकि तुम पगला रहे होते हो। तुम मनोविश्लेषक के पास जाते हो, तुम सहायता मांगते हो। कुछ बात बड़-बड़ हो रही है। तुम जीवन का आनंद नहीं ले पाते हो, वहां अब कोई उल्लास नहीं हाता। तुम आत्महत्या करने की सोचने लगते हो।

यदि तुम उद्दीपन के साथ चलते हो, तब तुम अपराधी बन जाते हो। यदि तुम समाज के साथ ठहरते हो, वैधानिक संस्थापन सामाजिक व्यवस्था के साथ ठहरते हो, तब तुम ऊब जाते हो। यह एक बड़ा ही धर्म-संकट है: तुम्हें कहीं गति करने की अनुमति नहीं दी जाती। इन दो सींगों के बीच तुम कुच्ल डाले जाते हो, मार डाले जाते

हो या तो सामाजिक व्यवस्था के साथ रहो, तब तुम एक उबाऊ जीवन जीते चले जाते हो। या समाज विरोधी हो जाओ, पर तब तुम अपराधी जैसे दिखते हो, तब तुम अपराध-भाव अनुभव करना शुरू कर देते हो।

स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता तक आना ही होगा। और स्त्रियों की स्वतंत्रता के साथ पुरूष भी स्वतंत्र होंगे—क्योंकि सच में तुम स्वतंत्र नहीं रह सकते यदि तुम किसी को गुलाम बनाए हुए होते हो। मालिक तो गुलाम का भी गुलाम होता है। पुरूष सच में स्वंत्रत है नहीं क्योंकि वह हो सकता है: आधी मनुष्यता गुलाम बनी रहने पर विवश हैं—कैसे पुरूष स्वतंत्र हो सकता है? उसकी स्वतंत्रता बस यूं-ही है, बस ऊपरी दिखाई देती है। स्त्री की स्वतंत्रता के साथ-साथ पुरूष भी स्वतंत्र हो जाएगा।

और स्वतंत्रता के साथ संभावना हैएक गहन संबंध में प्रवेश करने की—और यदि यह घटना न भी घटे, तब ऊबे हुए रहने की कोई आवश्यकता नहीं है। तब एक दूसरे सक बंधे रहने की कोई आवश्यकता नहीं है।

एक आदमी जो कुछ समय से अस्वास्थ अनुभव कर रहा था अपने डॉक्टर के पास गया और जांच के लिए कहा। डॉक्टर न उसकी जांच की और कहा, 'या तो तुम धूम्रपान, शराब और सेक्स से बाज आओ या बारह महीने के भीतर ही तुम मर जाओगे।'

कुछ समय बाद वह आदमी वापस डॉक्टर के पास गया और उसने कहा, 'देखो, मैं इतना दुखी महसूस कर रहा हूं कि इससे तो बेहतर है कि मैं मर ही जाऊं—कृपया, क्या मैं बस जरा सा धूम्रपान कर सकता हूं?'

'ठीक है, बस पांच फिल्टर सिगरेट प्रति दिन,' डॉक्टर ने कहा।

कुछ सप्ताह बाद वह आदमी फिर से दोबारा वापस आया और कहा: 'देखो, मुझे अपने पेग (शराब) की बहुत याद आती है, कृपया मुझे पीने की कुछ तो इजाजत दें।'

'ठीक है, बस दो पेग रोज, और अधिक शरीब नहीं।'

समय गुजतरा गया लेकिन रोगी फिर एक दिन आया और कहने लगा, उसे देखते ही डॉक्टर ने तपाक से कहां हां, हां मैं तुम्हारी बात समझ गया, केवल अपनी पत्नी के साथ, और अधिक उत्तेजना नहीं।

जीवन को आवश्यकता होती है उत्तेजना की सनसनाहट की। यदि तुम इसे आध्यात्मिक उत्तेजना नहीं बना लेते, उसे केवल शरीर की की मांग बनाए रखते हो, उसे कुछ उंचे उतंग उठने दो उस में गहरा डूबों। शरीर के अंदर ही वह सागर है, वरना तुम जीवन भर निचले उद्दीपन में ही जीते रहे जाओगे। जैसे ही आप उच्च उत्तेजना की और हम गति करते है, निचले उद्दीपन स्वत: ही समाप्त हो जाते है। उनकी फिर आवश्यकता ही नहीं पड़ती। इसे कोई उच्चकोटि का उतंग सन-सनाहट एक उत्तेजना तुम नहीं देते तो वह जीवन भर निचलीकोटि का उद्दीपन ही बना रहा जाता है।

पुरूष ने स्वयं को खुला रखा है। जुंग चालबाज है, और जुंग जो कह रहा है वही पुरानी बकवास है। पुरूष ने यह बात सदा ही कहीं है कि एक पुरूष को कम से कम दो स्त्रियों की आवश्यकता है, तो स्त्रियों को भी दो पुरूषों की आवश्यकता होगी ही। या तो पिता किस्म की या प्रेमी किसम की।

लेकिन मैं जो कहने की चेष्टा कर रहा हूं वह यह है कि बीसवी सदी में भी फ्रायड और जुंग जैसे लोग उतने ही उत्कट पुरूषवादी हैं, जितना कि कोई कभी रहा है—कोई विशेष अंतर नहीं आया है। स्त्रियों को स्वयं अपने विषय में सोचना है, पुरूष अधिक सहायक नहीं हो सकते। उन्हें अपनी स्वयं की समझ तक पहुंचना है—और अब यह अवसर है कि वे अपनी समझ तक पहुंच सकें।

लेकिन आनंद प्रेम का प्रश्न मूलत: स्त्रियों के बारे में नहीं है, यह उनके मन के विषय मे है। वह अनुरक्त किस्म है, और यह अनुरक्तता भी ऐतिहासिक संस्कारिता के कारण ही है। स्त्री अधिक अनुरक्त होती है, क्योंकि वह भयभीत रहती है, असुरक्षा से, सुरक्षा के विषय में, धन के विषय में, इस विषय में, उस विषय में। वह इतनी

भयभीत रहती है। उसे भयभीत किया जाता है। यह पुरूष की तरकीब है, स्त्री को भयभीत कर देना। जब स्त्री भयभीत होती है उस पर आसानी से अधिकशासन किया जा सकता है, उस पर अपना अधिकार जमाया जा सकता है। तुम किसी ऐसे व्यक्ति पर अधिकार नहीं कर सकते जो भयभीत नहीं हो। इसलिए भय निर्मित किया जाता है। अधिकार करने के लिए।

पहले तो पुरूष स्त्रियों में उनके कौमार्य के प्रति भय निर्मित करता है—वह बड़ा भारी डर पैदा कर देता है कि कौमार्य कोई बहुत बड़ी बहुमूल्य बात है। सदियों-सदियों से उसने यह भय निर्मित कर रखा है, इसलिए हर लड़की भयभीत हैं, यदि उसका कौमार्य खो गया, सब कुछ खो जाएगा। इस भय के कारण वह लोगों से संबंधित नहीं हो सकती, वह मित्र नहीं बना सकती, वह स्वतंत्रता में गति नहीं कर सकती। इससे पहले कि वह निर्णय ले कि किस को चुना जाए, वह थोडे से अनुभव नहीं ले सकती। वह भय...उसे कुमारी रहना सिखा देता है।

इस अंतर को देखो: वे तो कहते हैं, 'लड़के तो लड़के हैं।' और क्या लड़कियां-लड़कियां नही है? लड़कियां भी लड़किया है! लड़के ही लड़के क्यों हैं? क्योंकि लड़को से कौमार्य नहीं मांगा जाता। उन्हें स्वतंत्रता दी जाती है।

कौमार्य के द्वारा एक बड़ा संस्कार डाल दिया जाता है। और एक बार स्त्री अपना कौमार्य खोने के प्रति बहुत भयभीत हो जाए...सोचो, बीस बर्ष की आयु तक, बीस वर्ष तक तो वह अपना कौमार्य बचाती आई है। बीस वर्ष के उस दबाव के कारण उस मानसिकता के कारण, उस संसकार के कारण। वह एक बुझ जाती है, ठींडी होत जाती है। वह बुझ जायेगी। फिर शायद वह कभी सेक्स का आनंद नहीं उठा पायेगी। तब प्रेम उससे कभी प्रभावित नहीं हो पायेगा। वह कभी परंम आनंद के सुख को प्राप्त नहीं कर पायेगी। सब मर जाएगा। वह जान ही नहीं पायेगी की परम आनंद भी कुछ होता है। वह बस एक यंत्र बन जायेगी, बच्चे पैदा करेगी, कष्ट झेलेगी। वे केवल पुरूष के लिए एक साधन बन कर रह जाऐगी। यह बड़ा पदावनतन है।

लेकिन यदि कौमार्य बहुत महत्वपूर्ण हो, और बीस वर्ष का संस्कार हो कि लड़की को क्वारी रहना है। और सदा रक्षा के लिए तत्पर रहना है, तो उस आदम को छोड़ पाना बहुत कठिन होगा। कैसे तुम बीस वर्ष के संस्कार के पश्चात, अचानक इसे छोड़ सकती हो? बए एक दिन हनीमून आता है और तुम्हें इसे छोड़ना होता है—कैसे तुम इसे छोड़ सकती हो? तुम दिखाव मात्र कर सकती हो। परंतु भीतर कहीं गहरे में तुम अपने पति को एक अपराधी, एक जानवर, एक कुरूप व्यक्ति हमझती हो क्योंकि वह कुछ ऐसा काम कर रहा है। जिसे तुम पाप समझती हो। वह शादी के नाम से भला पवित्र कैसे हो सकता है। किसी और पुरूष को तुमने वह काम करने से रोका, समाज ने तुम्हें बंधान डाले। प्रेम तो पाप है, और यह आदमी आज वही काम कर रहा है।

कोई भी पत्नी अपने पति को क्षमा करने में समर्थ नहीं हो पाती। सच तो यह है कि, विशेष रूप से भारत में, कोई पत्नी अपने पति का सम्मान नहीं करती, कर सकती ही नहीं। सम्मान प्रदर्शित वह जरूर करती है। पर सम्मान कर वह नहीं सकती—भीतर गहरे में तो वह इस पुरूष से नफरता करती है क्योंकि यही तो वह आदमी है जो उसे पाप में घसीट रहा है। कैसे फिर कोई पति का सम्मान कर सकता है। यदि वह उसे पाप में ले जा रहा हो, वह तो पापी है। उसके बिना तुम कंवारी थी; उसके साथ तुम्हारा पतन हो गया है। इसीलिए तो समाज इतना अधिक सिखाता है: पति का सम्मान करो! क्योंकि समाज जानता है कि प्राकृतिक रूप से तो स्त्री उसका सम्मान करपाएगी नहीं, इस लिए सम्मान को लादना पड़ता है...पति का सम्मान करो क्योंकि चीजें यदि स्वाभाविक ढंग से ही हो, तब तो वह इस आदमी से नफरत करेगी। यही तो वह आदमी है जो उसके लिए नर्क तैयार कर रहा है।

और इसी पाप से फिर बच्चे पैदा हो जाते हैं—कैसे तुम अपने बच्चों को प्रेम कर सकती हो? पाप से पैदा हुए बच्चे, गहन अचेतन में तो तुम इनसे भी नफरत करोगी ही। बच्चों की उपस्थिति मात्र तुम्हें बार-बार उस पाप की याद दिलाएगी मात्र जो तुमने इन्हें पैदा करने के लिए किया था।

इस मूर्खता के कारण सारे समाज ने दुःख उठाये हैं। प्रेम पुण्य है, पाप नहीं। और अधिक प्रेम के लिए समर्थ हो पाना अधिक पुण्यात्मा होना है। प्रेम का आनंद उठाने में सक्षम हो पाना एक धार्मिक व्यक्ति का मूलभूत गुण है—ये मेरी परिभाषाएं हैं।

आनंद प्रेम बड़ी अनुरक्तिपूर्ण है—और वह सोचती है कि जो कुछ भी उसके विषय में सच है वही सभी स्त्रियों के विषय में सच है? एक तरह से वह सही भी है, क्योंकि बाकी सब स्त्रियां भी इसी ढंग से संस्कारित की गई है। पर यह बात सत्य है नहीं। न दूसरी स्त्रियों के विषय में न तुम्हारे विषय में, आनंद प्रेम, यह बात सत्य है नहीं।

व्यक्ति बनने में समर्थ होओ तब तुम्हें स्वतंत्रता का कुछ स्वाद मिलेगा। एक स्त्री को कभी एक व्यक्ति की भांति सोचा ही नहीं गया है। जब वह छोटी होती है, वह एक पुत्री होती है। वह पत्नी होती है। जब थोड़ी सी वृद्धा हो जाती है, वह मां होती है, थोड़ी सी और वृद्धा तब वह दादा, नानी होती है—पर स्वयं वहा कहीं भी नहीं होती। सदा दूसरों से जूड़ी होती है।

वैयक्तिता की आवश्यकता है एक मुलभूत जरूरत के रूप में। स्त्री-स्त्री है। उसका पुत्री होना गौण है। उसका पत्नी होना गौण है, उसका पत्नी होना गौण है, उसका मां होना गौण है, स्त्री-स्त्री है। उसका स्त्रैणपन प्रमुख बात है। और जब स्त्रियां व्यक्ति होना प्रारंभ कर देंगी, वह एक बिलकुल भिन्न ही संसार होगा—अधिक सुंदर, अधिक आनंदपूर्ण।

अब तो बस ऊब और ईष्या है, और कुछ भी नहीं। तुम स्त्री से ऊबे हुए हो, स्त्री तुमसे ऊबी हुई है। तुम ईर्ष्यालु हो, वह ईर्ष्यालु है। यह ईर्ष्या ऊब की छाया की भांति क्यों आती है? ऊब इसे लाती है। बहुत से लोग मेरे पास आते है और वे चाहते है कि वे ईर्ष्यालु न होंएं, पर वे समझ नहीं पाते कि ईर्ष्या क्यों आती है, वे इसकी कार्यविधि को नहीं जानते।

सुनो: जब तुम किसी स्त्री से ऊबते होते हो, भीतर गहरे में तुम जानते हो कि वह भी तुमसे ऊबी हुई होगी। यह स्वाभाविक है। यदि वह तुमसे ऊबी हुई है, तब वह भी कहीं किसी अन्य पुरूष को खोज रही होगी—कोई दूधवाला, डाकिया, ड्राईवर—जो कोई भी उपलब्ध हो, वह कहीं खोज में लगी होगी। तुम जानते हो जब तुम ऊबे होते हो, तुम दूसरी स्त्रियों की और देखना शुरू कर देते हो। इसलिए तुम जानते हो। यह एक स्वाभाविक निष्कर्ष है। ईर्ष्या जगती है। इसलिए तुम ईर्ष्यालु हो जाते हो—वह भी देख रही होगी। फिर तुम यह देखने के उपाय खोजने लगते हो कि वह देख रही है अथवा नहीं। और स्वाभाविक है कि वह देखना कैसे बंद कर सकती है? इतने सारे पुरूष है और तुमसे वह ऊबी हुई है। यह उसकी जिंदगी है, उसकी सारी जिंदगी दाव पर लगी है।

स्त्री ईर्ष्यालु है; वह जानती है कि पति ऊबा हुआ है। अब वह उतना प्रफुल्लित नहीं रहता जितना कि वह पहले रहा करता था, अब वह आनंद से दौड़ता हुआ घर नहीं आता। अब वह बस उसे बर्दाश्त करता है। सच तो यह है कि अब वह उस (स्त्री) की जगह अपने समाचार पत्र में अधिक उत्सुक रहता है। वह जल्दी से चिड़चिड़ा हो जाता है। छोटी-छोटी बातें और वह बड़ा क्रोधित और रूखा हो जाता है। वह सारी सौम्यता, वह सारी हनीमून वाली सौम्यता जा चुकी होती है। वह जानती है कि वह ऊब गया है। अब वह उस में उत्सुक नहीं है।

तब अचानक, निश्चित रूप से वह जान जाती है, उसकी अन्तर्संवेदना जान लेती है कि वह कहीं और उत्सुकता ले रहा होगा—ईर्ष्या फिर वह यदि किसी दिन आनंदित होता हुआ घर आता है। वह चिंतित हो जाती है: वह किसी अन्य स्त्री के साथ रहा होगा वरना वह इतना प्रसन्नचित क्यों दिखाई दे रहा है? यदि वह कहीं छुट्टी पर जाता है, या कहीं किसी व्यपार संबंधी यात्रा पर जाता है, वह चिंतित हो जाती है। यदि वह व्यापार संबंधी यात्राओं पर अधिक जाना प्रारंभ कर दे, यह बात और भी सुनिश्चित हो जाती है...ईर्ष्या संबंधों में जहर घोल देती है। पर यह ऊब का ही एक हिस्सा होती है। यदि तुम उस व्यक्ति से ऊबे हुए न होओ, तुम ईर्ष्यालु भी न होओगे। क्योंकि वह ख्याल ही तुम्हारे मन में नहीं आएगा। सच तो यह है कि यह किसी और की दूसरे में उत्सुकता के कारण नहीं बल्कि यह तुम्हारी किसी और में उत्सुकता के कारण है कि तुम ईष्यालु होते जा रहे हो, कि तुम्हारे अंदर ईर्ष्या जगती जा रही है।

निश्चय ही, स्त्रियां अधिक ईर्ष्यालु हैं, क्योंकि वे कम स्वतंत्र होती है। उनकी ऊब अधिक सुस्थपित है। वे जानती हैं, कि पुरूष बाहर जाता है; उसे अधिक संभावनाएं हैं, अधिक अवसर हैं। वे घर में पिंजड़े में बंद रहती हैं, बच्चों के साथ घर में कैद रहती है। उनके लिए अधिक स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। वे ईर्ष्या अनुभव करती हैं। जितनी अधिक ईर्ष्या वे अनुभव करती हैं, उतनी ही वे और अधिक अनुरक्त होती है। भय उत्पन्न होता है। यदि पुरूष उन्हें छोड़ दे, तब क्या होगा। एक गुलाम अपनी स्वतंत्रता के स्थान पर अपनी सुरक्षा से अधिक आसक्त हो जाता है। एक गुलाम अपनी मुक्ति से ज्यादा अपनी सलामती से आसक्त हो जाता है। यही तो हुआ है। इसका स्त्री-मनोविज्ञान से कुछ लेना देना नहीं है। प्रेम! हां, मैं समझता हूं: यह घटना स्त्री के ही साथ घटी है, यह एक कुरूप घटना है। इसे छोड़ा जाना है। यदि पुरूष और स्त्री थोड़े से भी अधिक सजग हो जाएं तो भविष्य में ऐसा नहीं होना चाहिए। और दोनों ही नर्क में जी रहे हैं।

जागीरदार साहब और जागीरदारनी साहिबा कृषि प्रदर्शनी के प्रमुख संरक्षक थे, और उद्घाटन समारोह के उपरांत वे कर्तव्यपरायण ढंग से किसानों और अन्या प्रजा से भेंट करते, प्रदर्शनी में रखी बस्तुओं को देखते वहां घूम रहे थे।

लेकिन श्रीमंत जी ने बियर तम्बू में इतना समय लगाया कि जागीरदारनी जी पुरस्कृत सांड को प्रशंसा भरी नजरों से देखने चली गयी। किसी नर पशु को इतना सुसज्जित उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था।

'तुम्हारे पास तो बड़ा ही अच्छा जानवर है, गाइल्स,' उन्होंने पशुरक्षक से कहा।

'जी हां, मालकिन, वह स्वयं भी योद्धा है और योद्धाओं का पिता भी है।'

'मुझे इसके बारे में और बताओ।'

'मालकिन, पिछले वर्ष उसे वंशवृद्धि के लिए तीन सौ बार पशुजनन केन्द्र पर भेजा गया।'

'क्या यह सच हैं? अच्छा, जरा जागीरदार साहब के पास चले जाओ और उन्हें बता दो कि यहां एक ऐसा सांड है जो एक वर्ष में तीस सौ बार पशुजनन केन्द्र पर गया है। बता दोगे न।'

गाइल्स कर्तव्यतापूर्ण ढंग से जागीरदार साहब के पास गया और संदेश उन्हें दिया—'यह तो बड़ी रोचक बात है,' उसने टिप्पणी की, 'मेरे ख्याल में उसकी गाय के साथ?'

'बिलकुल नहीं श्रीमान जी, तीन सो अलग-अलग गायों के साथ।'

'अच्छा-अच्छा, जाओ और जागीरदारनी साहिबा को यह बात बता दो, बता दोगे न।'

पशु इतने आनंदित हैं—क्योंकि रहने के लिए उनके पास कोई संस्थाएं नहीं है। और ध्यान रखना, मैं विवाह के विरोध में नहीं हूं, मैं तो एक उच्च विवाह के पक्ष में हूं। हां इस तरह के विवाह के मैं विरोध में जरूर हूं, क्योंकि इस विवाह ने ही तो वेश्यावृति को निर्मित किया है। मैं उच्च विवाह के पक्ष में हूं।

यदि तुम किसी स्त्री या किसी पुरूष के साथ में घनिष्टता पा सको, एक आध्यात्मिक घनिष्टता, तब एक स्वाभविक संग-साथ निर्मित होगा—इसे बाध्य करने के लिए किसी कानुन की आवश्यकता नहीं होगी। तब साथ-साथ रहने में एक स्व:स्फूर्त आनंद होगा। जब तक यह बना रहे, शुभ है; जब यह विलीन हो जाए, तब साथ-साथ रहने का कोई अर्थ नहीं है—कोई भी प्रयोजन नहीं है। तब तुम एक दूसरे को कुचल रहे होते हो, एक दूसरे को मार डाल रहे होते हो; तब तुम या तो एक स्वयंपीड़क हो या परपीड़क—तुम विक्षिप्त हो।

यदि मेरा विचार किसी दिन प्रचलित हो जाए—जो कि बहुत कठिन जान पड़ता है क्योंकि मनुष्य मृत भूमिकाओं का इतना आदि हो गया है कि वह यह भूल ही गया है कि जीवन जिया कैसे जाए—यदि किसी दिन जीवन का वर्चस्व हो जाए और मनुष्य इतना साहसी हो जाए कि खतरनाक ढंग से जी सके। तब असली विवाह हुआ करेंगे। तब तुम बहुत से आत्मिक-संगियों को साथ-साथ पाओगे। तब कोई वेश्यावृति न होगी।

निश्चय ही मनुष्य का एक बड़ा भाग अपने संगियों को बदलता रहेगा, पर इसमें भी कुछ गलत नहीं है। एक मात्र समस्या जो बार-बार पुरूषों और स्त्रियों के मन में उठती रहती है, वह है: बच्चों का क्या होगा? यह कोई बड़ी समस्या नहीं है। मेरी धारणा कम्यून की है, परिवार की नहीं। परिवारों को तो अदृश्य होना है—कम्यून ही बचने चाहिए।

उदाहरण के लिए यह एक कम्यून है। बच्चे कम्यून के होने चाहिए और कम्यून को बच्चों की देखभाल करनी चाहिए। मां का तो पता होना चाहिए, मां कौन है, पर पिता का पता नहीं होना चाहिए—उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। यही तो मनुष्यता की प्रारंभिक अवस्था थी: मातृप्रधान बाद में समाज, पितृप्रधान हो गया। बाद में समाज पितृप्रधान होने के कारण महत्वपूर्ण हो गया। और पिता के साथ ही हजार विकृतियां उस में प्रवेश कर गई। सबसे बड़ी विकृति हुई है निजि संपत्ति, यह पिता के साथ आई। और समाज तब तक निजी संपति से पीडित रहेगा जब तक कि पिता अदृश्य न हो जाता।

एक कम्यून—जहां बच्चे कम्यून के हों, जहां कम्यून बच्चों का पालन-पोषण कर सके। मां उनकी देखभाल तो करेगी पर एक बात पर मां भरोसा कर सकती है, कि वह एक पुरूष से दूसरे पुरूष के पास जा सकती है—उसमें कोई समस्या नहीं है। बच्चों की देखभाल होती रहेगी, यदि वह मर भी जाए, कम्यून तो है।

और जब सम्पति कम्यून की हो, किसी व्यक्ति की न हो, तब सच्चा कम्यूनिस्म (सम्यवाद) आएगा। अभी तो सोवियत संध में भी सच्चा साम्यवाद नहीं आया है। पिता के साथ, इसका अस्तित्व हो भी नहीं सकता, यह असंभव बात है। निजी संपत्ति और परिवार के साथ आणविक परिवार के साथ--पिता,माता, बच्चे-फिर आई निजी संपत्ति। निजि संपत्ति केवल तभी जा सकती है जब यह आणविक परिवार विलीन हो जाए और एक दम वह वह धारणा एक दम भिन्न है। इस की जगह कम्यून आ जाएगा। अब यह संभव है। संसार अब चेतना की उस अवस्था तक पहूंच गया है। जहां पर कम्यून हो सकता है। कौन किसी तरीके से नहीं। ऐसा नहीं कि पहले कम्युनिज्म आ जाए—यह संभव नहीं है। यदि कम्युनिजम पहले आ जाए यह केवल तानाशाही लाएगा, यह केवल कुरूपता ही देगा समाज को। जैसे की आज सोवियत संध में हो रहा है। या जैसा की चीन में हो रहा है।

पहले तो, जहां तक सेक्स का संबंध है, कम्यून का जीवन होने दो, तब संपति विलीन हो जाएगी। संपति काम-संबंधी मालकियत का ही एक अंग है। जब एक स्त्री तुम्हारी होती है, जब एक पुरूष तुम्हारा होता है, संपत्ति तुम्हारी होती है—संपत्ति तुम्हारी होगी ही। जब तुम किसी मनुष्य की ही मालकियत नहीं करते, संपत्ति पे मालकियत करने की चिंता कौन करता है? तब संपत्ति केवल उपयोग करने के लिए ही रह जाती है। उस पर मालकियत करने की आवश्यकता नहीं होती। और जब मालकियता नह हो तब इसे उपयोग करना अधिक सरल होता है, जिन लोगों की मालकियत होती है, वे तो उपयोग कर नहीं पाते—वे सदा भयभीत ही रहते है, वे

कंजूस हो जाते हैं। संपत्ति का उपयोग अधिक स्वतंत्रतापूर्वक किया जा सकता है। जब मालकियत न हो तो। लेकिन पहले तो परिवार को विलीन होना होगा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सारे परिवार अदृश्य हो जाएंगे। लेकिन यह ठीक ही है, क्योंकि जो भी लोग पर्याप्त रूप से अध्यात्मिक नहीं है। उन्हें क्यों ऊबते रहने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए। उन्हें क्यों ऐसे सम्बंध में रहने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए जो कि किसी आनंद की और न ले जाता हो? क्यों? यह तो अपराध है।

चौथा प्रश्न: मैं सोचा करता था कि मैं काफी जागरूक हूं, काफी समर्पित हूं। वह प्रतिरूप अब भी मेरे मन मे कौंध जाता है पर अब सच में मैं इस पर विश्वास नहीं करता। और इस सब से में कभी-कभी सोच में पड़ जाता हूं, कि कहीं ऐसा तो नहीं कि जागरूकता और समर्पण की आपकी सारी बातचीज हमें बस पागल बना देने के लिए हो। जैसे कि गधे के सामने लटकी हुई गाजर और वास्तव में इस सब का कोई अस्तित्व न हो—और यह बात मुझे एक साथ क्रोधित, मूढ़ और उदासीन बना जाती है?

गाजर का तो आस्तित्व है...और गधे का नहीं अब यह तुम्हासरे ऊपर है कि तुम क्या चुनते हो: तुम गधे हो जा सकते हो, तब गाजर नहीं होती। यदि तुम गाजर की तरफ देखो, तब गाजर तो होती है और गधा वहां से अदृश्य हो जाता है। सवभावत: यदि तुम सोचो कि गाजर तो है नहीं, तुम क्रोधित, मूढ़ और उदासीन महसूस करोगे ही। तब तुम गधे हो गये हो। इसलिए गाजर नहीं है यह सब की जगहर तुम अपने भीतर क्यों नहीं झांकते-क्या तुम हो?

मेरा कुल जोर इतना है: संबोधि है, तुम नहीं हो, जागयकता ता है—अहंकार नहीं है, यही सब बात पर मेरा ही नहीं हजारों साल सक सब संत कहते चले आ रहे है। उनका जोर इसी बात पर है।

पर फिर भी, चुनाव तुम्हारा ही है, यह तुम पर निर्भर करता है। यदि तुम दुख को चुनना चाहो तब दुख तो बस अहंकार को चुनना होगा, फिर तो तुम्हें गधे को चुनना होगा। फिर तो तुम्हें यही विश्वास किए जाना होगा कि गाजर होती ही नहीं। परंतु सच तो यह है कि यह होती है। एक बार तुम गाजर को अनुभव करना प्रारंभ कर दो, तुम देखने लगोगे कि गधा अदृश्य होता जा रहा है। यह तो मात्र एक विचार था।

गाजर के साथ आनंद है। अहंकार के साथ केवल नर्क है। तुम तो कुछ भी चुनना चाहो, तुम स्वतंत्र हो जिसे चाहे चुन लो।

पांचवा प्रश्न: आपसे मिलने से पहले मैं बहुत दूखी था और पूर्णत: अ-जागरूक था। अब मैं दुखी हूं थोड़ी सी जागरूकता के साथ। इसमें नया क्या है?

क्या तुम इसे देख नही सकते हो? यह जो थोड़ी सी जागरूकता—क्या तुम सोचते हो कि यह मूल्य हीन है? यह तो पहलली किरण है...और सूरज बहुत दूर नहीं है। यदि तुम किरण को पकड़ लो, यदि तुम किरण की दिशा में चल पड़ो तो। जाहां से किरण आ रही है। तुम प्रकाश के स्त्रोत तक ही पहुंच जाओंग।

यदि अंधकार में एक किरण भी चम जाए, यह पर्याप्त सबूत है कि प्रकाश का होना...परमात्मा का होना। इसे बस थोड़ी सी जागरूकता मत कहो।

पर मैं समण्ता हूं। हम इतने लम्बे समय से अ-जागरूकता में जिए है। हम इतने समय से मूर्च्छा मे जिए है, हम इतनी समय से यंत्र-समान जीए है। कि जब थोड़ी सी जागरूकता आती भी है, हमारी पुरानी आदतें इतनी भारी पड़ जाती है कि हम......।

एक बार की बात है एक नवयुवती ए.टी.एस में भर्ती हुई और डॉक्टरी जांच के लिए गई। डॉक्टर ने उसके कपड़े उतरवाए और फिर अपने सहायक को बुलवाया। 'इस तरफ देखो: सबसे बड़ी नाभि जो मैंने अपने डॉक्टरी जीवन मे देखी है।'

नवयुवक डॉक्टर ने देखा और कहा, 'ज्यार्ज की कसम, लड़की, यह तो एक विशाल नाभि है—क्या में चिकित्सा पत्र के लिए इसका एक चित्र खींच सकता हूं?'

लड़की तो अब थक चुकी थी और उसकी समझ में नही आ रहा था कि यह सब किस की सहायता के लिए था, 'यदि तुम भी मुक्ति सेना में उतने ही वर्ष हरे होते जितने की मैं रही हूं तो तुम्हारी नाभि भी बड़ी होती।'

इससे तो रहस्य और भी गहरा गया। 'मुक्ति सेना?' उसका इस बात से क्या लेना देना है?

'मैं दस वर्ष तक उसका झंडा उठाती रही हूं।'

और तुम तो झंड़ा लाखों जन्मों से उठाते चले आए हो—इसलिए नाभि बहुत बड़ी हो गई है।

मूर्च्छा ही तुम्हारी सारी जीवन कथा है; अपने विषय मे तुम जो कुद भी जानते हो वह कुछ और नहीं बस मूर्च्छा ही है। इसलिए जब प्रकाश की एक किरण प्रवेश करती भी है, पहले तो तुम इस पर भरोसा ही नहीं करते। शायद तुम देख रहे हो कि शायद यह एक सपना है? कोई इंद्रजाल है? कोई सम्मोहन है? शायद प्रक्षेपण हो? हो सकता है इसमें कोई धोखधड़ी हो। यदि तुम इस पर भरोसा कर भी लो, यह तुम्हारे समस्त अतीत के सामने इतनी छोटी दिखाई देती है कि तुम्हें यह विश्वास नहीं होता कि किस तरह से यह तुम्हारी सहायता कर सकती है। छोटा सा दीया एक दीपक?

परंतु एक बात मैं तुमको बता दूं: उसे ध्यान से समझ लेना एक छोटा सा दीया भी समस्त घर में छाए गहरे अंधकार को पल में विलिन कर जाता है। उसके उस छोटेपन पर मत जाओ। वह बहुत ही शक्तिशाली है। अंधकार में कुछ भी शक्ति नहीं होती, अंधकार एक नपुसंगता है। एक छोटा सा दीपक बहुत ही पुंसग होता है—क्योंकि यह है तो! अंधकार तो एक अनुपस्थिति का नाम है। वह है नहीं केवल भाषता है।

एक व्यक्ति खून और खरोंचों से ढका अस्पताल पहुंचा। 'क्या बात हुई है?' डॉक्टर ने पूछा।

'यह मेरी पत्नी के कारण हुआ है—उसका एक और दुख स्वप्न।'

मुर्खता की बात मत करो! हो सकता है उसने तुम्हें एक लात जमाई हो, उसी कारण ये चोटे तुम्हें लग गई हो।

'सुनो, डॉक्टर-उसे एक दुखस्वप्न आया: वह जोर-जोर से चिल्लाई, भाग जाओ, जल्दी से—मेरा पति घर आ रहा है।' और उस समय मैं आधा जाग रहा था, स्वभावकत: मैं खिड़की से नीचे कुद गया।

मूर्च्छित रहने की आदम लम्बी है। पुरानी है। पर उस थोड़ी सी जागरूकता की और देखो, स्वयं को उस पर केन्दित करो—यही तुम्हारी आशा है। उस छोटी सी किरण से ही द्वार खुल जाता है।

क्या ये सब तुम देख नहीं सकते हो? जो तुम मुझसे पूछते हो: 'इसमें नया क्या है?'

छट्ठा प्रश्न: मैं एक कैथोलिक ईसाई हूं। आपने प्रवचनों को मैं पसंद करता हूं लेकिन जब आप कोई ऐसी बात कहते हैं जो मेरे धर्म के विपरीत जाती हो, तब मैं बहुत उद्विग्न हो जाता हूं। मैं क्या करूं?

तीन चीजें हैं: पहली, केवल वही सुनो जो तुम्हारे अनुकूल हो; उसे सुनो हीमत जो तुम्हारे विपरीता हो। यही काम तो बहुत से लोग कर रहे है वर्ना तो यात्रा बड़ी ऊबड़-खाबड़ हो जाएगी। लेकिन जब तुम यहां होते हो, सुनते हुए, यह कठिन होता है—उससे बचे कैसे जाए? सच तो यह है कि इससे पहले कि तुम यह जानो कि यह तुम्हारे विपरीत है, तुम इसे सुन ही चुके होते हो।

फिर तो तुम्हें कुछ ऐसा काम करना चाहिए जो कि प्रोफेसर लोग जानते हैं कि कैसे किया जाए, जो कि पंडित लोग, विद्वान लोग जानते है कि कैसे किया जाए। जब तुम कोई ऐसी बात सुनो जो तुम्हारे विपरीत जाती हो, पहले तो: यह सोच लो कि यह तो तुच्छ बात है; इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता, यह कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है। इससे तुम्हारा मन नहीं बदलता! यह तो एक मामूली सी बात है। शायद विस्तार में थोड़ी सी भिन्न हो पर मूलत: तो ओशो तुमसे सहमत हैं ही। यह बात मन में रखो।

ऐसा हुआ:

एक स्त्री डॉक्टर के पास गई, और उससे शिकायत की कि वह कामोवेशित नहीं हो पाती। डॉक्टर ने उसकी जांच की और उसे बताया कि यउदि वह डॉक्टर की बताई हुई खुराक खाती रहेगी, वह बहुत कामातुर हो जाएगी। वह महिला इस बात पर सहमत हो गई। और कुछ सप्ताह बाद वह वापस आई और अपने डॉक्टर से कहा, -'कोई गड़बड हो गई है। पिछली रात मैं इतनी कामातुर हो गई की अपने पति का कान चबा गई।'

'ओह, तुम क्षुद्र बातों की चिंता बिलकुल भी मत करो,' डॉक्टर ने कहा है, 'इसमें बस प्रोटीन होता है—कार्बोहाईड्रेट नहीं।'

यह पहला उपाय है। कि बस छोटे-छोटे विस्तारों में...यह कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है। तुम्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। इससे तुम्हें सहायता मिलेगी और तुम इतने उद्विग्न न होओगे।

दूसरा उपाय है: इसकी व्याख्या कर लो—यही तो सराह बार-बार कहता जाता है। व्याख्याकार हो जाओ! इसकी व्याख्या इस ढंग से करो कि यह तुम्हारे विचार के समीप आ जाए। यह सदा किया जा सकता है; बस थोड़ी सी क्रीड़ा—बस इतना ही। यह कोई बड़ी समस्या नहीं है; यह तो तुम आसानी से कर सकते हो। यदि तुम सच ही में एक कैथोलिक रहे हो, यह बात जरा सी भी कठिन नहीं होगी।

तुम एक कहानी सुनो:

आइरिश खुदाई मजदूर रंगीन लड़कियों से भरे उस घर के सामने की सड़क खोद रहे थे। एक पादरी(प्रोटेस्टेंट) वहां पहुंचा, अपना टोप नीचे झकाया और घर के अंदर घुस गया। पैट माइक से कहता है, 'तुमने देखा?' इन पादरियों से तुम और क्या उम्मीद कर सकते हो?'

थोड़ी देर बाद एक रबाई वहां पहुंचा, अपना कॉलर उल्टा किया, और भीतर घुस गया। माइक पेट से कहता है, 'यह क्या इतनी खराब बात नहीं है कि 'खुद के अपने लोगों' का पुरोहित को ऐसी जगह पर जाना चाहिए।'

आखिर में एक कैथोलिक पादरी वहां आ पहुंचा, अपने चोगे को अपने सिर के चारों तरफ लपेटा और घर के भीतर घुस गया।

'पैट, कितना अफसोस होता है यह सोचकर कि यहां की कोई लड़की बीमार पड़ गई होगी।'

यह एक व्याख्या है। जब रबाई भीतर जाता है, बात कुछ और होती है; जब पादरी भीतर जाता है तब बात भिन्न होती है। और जब कैथोलिक पादरी वहां पहुंचता है...तुम व्याख्या बदल ले सकते हो। इसमें कोई समस्या नहीं है। अब कोई लड़की बीमार जान पड़ती है।

यह दूसरा उपाय है मुझसे बचने को।

अब तीसरा उपाय सून लो: सोच लो कि यह आदमी तो पागल है। यह सबसे अधिक सुनिश्चित उपाय है —यदि कोई और उपाय काम नहीं करता, यह करता है। बस सोच लो कि यह आदमी तो पागल हो गया है। एक पागल आदमी की बात को अधिक महत्व नहीं देना चाहिए, वह भी कैथोलक वाद के खिलाफ जब कुछ कोई बोल रहा हो। यह बात तुम्हारी बहुत ही सहायता कर सकती है। और फिर देखना तुम जरा भी उद्विग्न नहीं होओगे।

नव-नियुक्त पादरी ने सोचा कि वह इस विशाल इलाके में पैदल ही घूमेगा-फिरेगा और अपने अनुयायी-समुदाय से भेंट करेगा। एक दिन धूल भरी पगडंडी पर मीलों तक चलते रहने के उपरांत उसे चौदह बच्चों वाला एक धर्मनिष्ठ परिवार मिला।

शुभ-दिवस करने के बाद, तुम तो आयरलैंड के लिए गौरव की बात हो—इस इलाके का सबसे बड़ा परिवार।

तभी उस परिवार के एक सदस्य ने कहा शुभ सुबह, फादर, परंतु आप गलत है, इस इलाके का सबसे बड़ा परिवार यह नहीं है—वह तो डोयलन का है, पहाड़ी के ऊपर।

यह एक थका हुआ पादी था जिसने डोयलन और उसके सोलह बच्चों का अभिवाद किया—'ईश्वर इन सोलह नन्हें बच्चों का भला करे,' उसने कहा।

क्षमा करे फादर, 'पर एक प्रोटेस्टेंट परिवार है।'

'तब में तुरंत यहां से जाना चाहुंगा,' पादरी ने कहा, 'क्योंकि एक गंदे कामुक पागल के अतिरिक तुम और कुछ नहीं हो।'

यदि में तुमसे सहमत नहीं होता, 'यह आदमी तो पागल है--' कहने से तुम्हें सहायता मिलेगी।

यही वे तरकीबें है जो दूसरे लोग भी उपयोग में लाते है। और उद्विग्न नहीं होते। अब तो रहस्य तुम्हें पता चल गया...तुम भी यह कर सकते हो।

लेकिन यदि तुम्हारा कुल प्रयास यही है कि उद्विग्न न हुआ जाए, तब तुम यहां हो ही क्यों? मेरा तो कुछ प्रयास ही यह है कि तुम्हें जितना अधिक हो सके उत्तेजित करूं, क्रोधित कुरू। तब मेरे पास आया ही क्यों जाए? जब तक कि मैं तुम्हें परेशान न करू, परेशान न कंरू तब तक तुम्हारा रूपांतरित होना अति कठिन होता है। जब तक कि मैं बहुत ठोर चोट तुम्हारे अहंकार पर तुम्हारी धारणाओं पर नहीं करता तुम जागते ही नहीं। तुम्हारे लिए मेरे पास और कोई उपाय नहीं है, कोई आशा नहीं होती।

यह मेरी करूणा ही है कि मैं तुम्हारी खोपड़ी को ठोके चला जा रहाह हूं—क्योंकि यही एकमात्र उपाय है। और मुझे बहुत अधिक ठोकना पड़ता है: मैं भी क्या कर सकता हूं? तुम्हारे पास खोपडियां ही इतनी मोटी है, कोई बात तुम्हे उत्तेजित करती ही नहीं तुम जरा टस से मस नहीं होते। जब कोई सच्ची बात तुम्हारी दृष्टि में आ जाती है, वरना तो यह तुम्हें कैसे हिला झकझोर सकती है।

सदा स्मरण रखना: कोई भी चीज जो तुम्हें आधारहिन बना दे, तुम्हें डावाडोल कर दे। तुम्हारे धरातल को झकझोर दे। वही मूल्यवान है। उसे से तुम्हारा परिवर्तन हो सकता है। तुम्हारी खोपड़ी इतनी मोटी है, उसे तोड़े बिना हृदय का द्वार खूल ही नहीं सकता। इस बात पर चिंतन-मनन करो। इसे अपने अस्तित्व में लम्बे सयम तक रहने दो ताकि तुम सब संभव कोणों से इसे देख सको—क्योंकि कोई चीज तुम्हें उद्विग्न करती क्यों है? इसका सीधा सा अर्थ है कि यह चीत तुम्हारी नींद को तोड़ रही है, तुम विश्राम मेंएक खलल पड़ रही है। तुम्हें जागरूक बना रही है। अब तक नींद में तुम जो भी विश्वास करते आ रहे थे, वह मात्र एक झूठ था। केवल सत्य ही उद्विग्न करता है। केवल सत्य ही नष्ट करता है क्योंकि सत्य ही निर्माण भी कर सकता है।

मैं एक विप्लव हूं....और यदिसच में ही तुम्हें मेरे साथ होना है, तुम्हें एक अराजकता से गुजरना ही होगा। यही तो सराह कह रहे है। यही तो सब कुछ तंत्र है...अनाकृतिकरण तुम्हारे चरित्र को अलग ले जाना, तुम्हारी चिंतना को अलग ले जाना, तुम्हारे मन को अलग ले जाना। यह शल्यचिकित्सीय प्रणाली है, तंत्र की।

मैं असहाय हूं। मुझे यह करना ही है। और मैं जानता हूं कि यह एक बहुत अकृतज्ञ काम है।

अंतिम प्रश्न: संसार क्या है?

संसार यह कहानी है:

लंदन का कोहरा थेम्स नदी के ऊपर मंउरा रहा था जबकि उस नौजवान आवारगर्द ने रात बिताने के लिए नदी तट पर के अपने ठिकाने को व्यवस्थित करना शुरू किया। अचानक एक मृदु आवाज ने उसे जगाया और नजर उठा कर उसने देखा, एक शोफर द्वारा चलाई जा रही कार से उतरते हुए एक अनिंध सुंदरी को आते हुए।

'मेरे गरीब मित्र,' उसने कहा: 'तुम बहुत ठंडे ओर गीले हो रहे होओग। चलो मैं तुम्हें अपने घर ले चलूं और रात तुम वहीं बिताना।'

निश्चय ही वह आवारागर्द उस निमंत्रण को ठुकरा नहीं सकता था और वह कार में चढ़कर उसके बगल मं बैठ गया। थोड़ी ही दूर चलने के बाद एक बड़े विकटोरियन प्रासाद के सामने कार रूकी, और उस आवारागर्द को अपने पीछे-पीछे आने का इशारा करती वह सुंदरी कर से नीचे उतरी। द्वार एक बटलर ने खोला जिसको निर्देश दिया की इस व्यक्ति को स्नान और भोजन कर दिया जाए। और नौकरों के एक क्वार्टर में एक आरामदायक बिस्तर भी दे दिया जाए।

कुछ समय के उपरांत वह सुंदरी सोने जाने की तैयारी कर रही थी, उसे अचानक यह ख्याल आया कि उसके मेहमान को किसी चीज की आवश्यकता पड़ सकती है, इसलिए नाईटी पहनकर वह नौकरों के क्वार्टरों की और आई। जब वह एक कोने से मुड़ी ही थी, प्रकाश की एक किरण उसकी आँख पर पड़ी जिससे उसे लगा कि उसका मेहमान अभी सोया नहीं था। द्वार पर धीरे से दस्तक देकर वह भीतर घुसी और नौजवान से पूछा कि वह सौ क्यों नहीं रहा था।

'निश्चय ही, तुम भूखे तो नहीं हो?'

'तब शायद तुम्हारा बिस्तर आरामदायक नहीं होगा?'

'लेकिन यह तो आराम दायक है—एक दम मुलायम और गर्म।'

'तब तो तुम्हें संग-साथ की आवश्यकता है। थोड़ा सा उस तरफ खिसको....'

नौजवान, आनंद-मगन, उस तरफ खिसका.....(और थेम्स नदी में जा गिरा.....)

आज इतना ही